Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132

Supported by:
Ksaan Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत कृषक भारती

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

गौरवपूर्ण प्रकाशन-द्वितीय दशक की ओर अग्रसर

ISSN-2582-5976

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-20 अंक-11 ग्वालियर, फरवरी -2026 मूल्य 30 रुपए

कर्तव्य पथ पर दिखा अहिल्या सुशासन

नई दिल्ली के कर्तव्य पथ पर आयोजित गणतंत्र दिवस समारोह में देवी अहिल्याबाई पर केन्द्रित आकर्षक झांकी निकली।

मध्यप्रदेशः मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने उज्जैन में फहराया राष्ट्रीय ध्वज

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने 77वें गणतंत्र दिवस पर उज्जैन के कार्तिक मेला ग्राउंड में राष्ट्रीय ध्वज फहरा कर नागरिकों का अभिवादन किया।

छत्तीसगढ़ः गणतंत्र दिवस पर सीएम साय ने फहराया झंडा

छत्तीसगढ़ में गणतंत्र दिवस पर मुख्यमंत्री विष्णुदेव साय ने बिलासपुर में झंडा फहराया। इस दौरान उन्होंने सभी को गणतंत्र दिवस की बधाई दी एवं कार्यकम में संबोधन भी दिया।

श्री गणेशाय नमः

श्री सॉवलिया सेठ

किसान कृषि सेवा केन्द्र

Gmail
Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com

7692967419 9109726855

हमारी सेवाऐं:-

सभी तरह के उन्नत बीज- अश्वगंधा, अकरकरा, कलौंजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौंप, सर्पगंधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फुलो के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलो के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल ग्रेडर,कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।

कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजियन किए जाते है।

उन्नत किस्म के नर्सरी के पोधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।

स्थान- पुराना टॉकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मनासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110

An ISO 9001:2008 Certified Company

कृषि दर्शन®

खेत-खलिहान का राजा

1988 से भारतीय किसानों की सेवा में

थ्रेशर 35HP हापर मॉडल

हडम्बा कटर थ्रेशर

ऑटोफीडिंग थ्रेशर

मक्का थ्रेशर

मिनी कम्बाईन थ्रेशर

रेज बेड सिड ड्रील

स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल

मोटर लिफ्टर

कृषि दर्शन® सुदर्शन इण्डस्ट्रीज

विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882

वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

रोजगार सृजन से संभव विकसित भारत का संकल्प

केंद्रीय सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय की हालिया रिपोर्ट चिंता बढ़ाने वाली है, जिसमें गत दिसंबर में बेरोजगारी दर बढ़कर 4.8 फीसदी होने की बात कही गई है। भारत दुनिया में युवाओं के देश के रूप में जाना जाता है। लेकिन हम इस युवा शक्ति का भरपूर उपयोग राष्ट्र विकास में नहीं कर पा रहे हैं। चिंता की बात यह भी है कि देश के शहरी क्षेत्र में पंद्रह वर्ष से अधिक आयुवर्ग के युवाओं में बेरोजगारी की दर गांवों के मुकाबले ज्यादा है। जहां शहरों में यह प्रतिशत बढ़कर 6.7 फीसदी हुआ है, वहीं ग्रामीण क्षेत्र में यह 3.9 फीसदी स्थिर है। हाल ही के वर्षों में बेरोजगारी देश में बड़ा मुद्दा रहा है, जो भारत जैसे विकासशील देश के हित में नहीं है। किसी भी अर्थव्यवस्था में विकास दर तभी सार्थक होगी, जब रोजगार के नये मौके उपलब्ध हो रहे हों। नीति-नियंताओं को आत्ममंथन करना होगा कि दुनिया में सबसे तेज गति से बढ़ती अर्थव्यवस्था में रोजगार के नये अवसर क्यों नहीं बन रहे हैं। सरकारें सुनिश्चित करें कि युवाओं को देश की तरक्की में योगदान देने का अवसर मिले। यदि बेरोजगारी की दर बढ़ रही है तो इसके मायने हैं कि संगठित और असंगठित क्षेत्र में नौकरी के मौके बढ़ नहीं रहे हैं। कहा जा रहा है कि औद्योगिक क्षेत्रों में एआई और डिजिटलीकरण के चलते भी नौकरियां घटी हैं। तो क्या हम इस चुनौती के लिये अपने युवाओं को तैयार कर रहे हैं?

निश्चित रूप से देश के नीति-नियंताओं को मंथन करना चाहिए कि 'आत्मनिर्भर भारत' और 'स्किल इंडिया' जैसे अभियानों के जमीनी परिणाम उत्साहवर्धक क्यों नहीं हैं? युवाओं की कौशल विकास कार्यक्रमों में भागीदारी के बावजूद रोजगार के मौके क्यों नहीं बढ़ रहे हैं? क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था समय के साथ कदमताल नहीं कर पा रही है? विडंबना यह भी है कि बढ़ती आबादी के बावजूद सरकारी क्षेत्र की नौकरियां कम हो रही हैं। युवाओं की शिकायत होती है कि सरकारी नौकरियों में भर्ती प्रक्रिया में तमाम तरह की विसंगतियां व्याप्त हैं। वे परीक्षा प्रणाली पर भी सवाल उठाते रहे हैं। निस्संदेह, बढ़ती बेरोजगारी हमारे विकास के मापदंडों पर भी सवाल खड़ी करती है। निश्चित रूप से संतुलित आर्थिक विकास की सार्थकता के लिए जरूरी है कि देश में प्रति व्यक्ति आय बढ़े तथा आर्थिक असमानता भी दूर हो। तेज विकास दर के साथ लोगों के जीवन में खुशहाली भी आनी चाहिए। रोजगार के अवसर बढ़ने से ही समाज में खुशहाली आ सकती है। जब देश में रोजगार के मौके बढ़ेंगे तो समाज में वास्तविक समृद्धि आ सकती है। रोजगार के अवसर बढ़ने से उत्पादकता बढ़ेगी और महंगाई पर नियंत्रण पाने में भी मदद मिलेगी। निस्संदेह, बढ़ती क्रय शक्ति भी अर्थव्यवस्था को गति देती है। निर्विवाद रूप से बेरोजगारी कम किए बिना हम देश के सौ साल पूरे होने तक विकसित भारत का लक्ष्य मुश्किल से हासिल कर पाएंगे।

सफलता की कहानी : फेरोमोन ट्रेप तकनीक ने बदली किसान सतवीर की किस्मत

राजस्थान के झुन्झुनू जिले में चिड़ावा तहसील के चनाना गांव निवासी सतवीर खेती में कुछ नया करने का जज्बा रखते थे। इसी सोच के साथ उन्होंने पारंपरिक फसलों के मोह से निकलकर अपनी आय बढ़ाने के उद्देश्य से मौसमी का उद्यान लगाया। लेकिन बागवानी की राह उनके लिए शुरुआत में इतनी आसान नहीं रही। पहले ही साल उनकी मेहनत पर उस समय पानी फिर गया जब फलमक्खी के भीषण प्रकोप ने उनके बाग पर हमला कर दिया। जहां सतवीर को अपने बाग से 80 से 100 क्विं. उत्पादन की उम्मीद थी, वहीं कीटों की वजह से यह घटकर मात्र 40 क्विं. पर सिमट गया। इस भारी नुकसान ने सतवीर को गहरी चिंता में डाल दिया।

अपनी मेहनत को बर्बाद होता देख सतवीर ने समाधान की तलाश शुरू की और राम कृष्ण जयदयाल डालमिया सेवा संस्थान के कृषि समन्वयक शुभेन्द्र भट्ट से मार्गदर्शन लिया। संस्थान के माध्यम से उन्हें समेकित कीट प्रबंधन की एक बेहद सरल और प्रभावी तकनीक 'फेरोमोन ट्रेप' के बारे में जानकारी मिली। उन्हें बताया गया कि यह विधि न केवल रासायनिक कीटनाशकों से सस्ती है, बल्कि पर्यावरण और मित्र कीटों के लिए भी पूरी तरह सुरक्षित है। इस तकनीक की सबसे बड़ी खूबी यह है कि किसान इसके लिए आवश्यक सामग्री खाद-बीज की दुकानों से खरीदकर इसे स्वयं भी तैयार कर सकते हैं। फेरोमोन ट्रेप के काम करने का तरीका भी बड़ा दिलचस्प है। इसमें मादा कीट की एक कृत्रिम गंध वाला 'ल्यूर' लगाया जाता है, जिससे बाग के नर कीट आकर्षित होकर ट्रेप में खिंचे चले आते हैं और अंततः वहीं फंसकर नष्ट हो जाते हैं। इससे कीटों की प्रजनन प्रक्रिया पूरी तरह बाधित हो जाती है और उनकी आबादी बढ़ने से पहले ही खत्म हो जाती है। जब सतवीर ने अपने मौसमी के बाग में इस तकनीक को लागू किया, तो इसके परिणाम जादुई रहे। अगले ही सीजन में उनके फलों की संख्या में भारी बढ़ोतरी हुई और उत्पादन 40 क्विं. से बढ़कर सीधा 80 क्विं. तक पहुच गया। सतवीर की इस सफलता ने चनाना गांव के अन्य किसानों का ध्यान भी अपनी ओर खींचा। देखते ही देखते गाँव के दूसरे किसानों ने भी इस कम लागत वाली वैज्ञानिक पद्धति को अपनाना शुरू कर दिया और उन्हें भी अपनी फसलों में सीधा लाभ दिखाई देने लगा। आज सतवीर की यह पहल पूरे क्षेत्र के लिए एक मिसाल बन चुकी है, जिसके परिणाम स्वरूप अब इलाके में मौसमी के नए उद्यान लगाने के प्रति किसानों का रुझान काफी बढ़ा है। यह तकनीक न केवल किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत कर रही है बल्कि पर्यावरण को भी जहरीले रसायनों से बचाने में मददगार साबित हो रही है।

लेखक: रामचरण धाकड़, भरतपुर (राजस्थान)

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)
रामप्रकाश रघुवंशी
98272-78063

***

नरसिंहपुर (म.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330

मुंगावली (म.प्र.)
भगवानदास चौबे
96854-88453

बलिया (उ.प्र.)
आर.एन. चौबे-94535-77732

पश्चिम बंगाल
राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा
समीर रंजन नायक
70422-31678

***

हापुड़ (उ.प्र.)
मयंक गौड़: 83848-66823

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/ लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है।

–संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें
0751-4070802

- वार्षिक ₹ 400
- द्विवार्षिक ₹ 750
- पंचवार्षिक ₹ 1800

वर्ष 20 ■ अंक 11 ग्वालियर, फरवरी 2026 मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया
कृषि विश्वविद्यालय
***
डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
(Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
***
डॉ. आर.के.एस. तोमर
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि.
ग्वालियर (म.प्र.)
***
डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),
डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय
पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले
विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)
***
डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा
उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय (नालन्दा), बिहार
कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर
***
डॉ. भागचन्द जैन
प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि
विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
***
डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना
कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)
***
तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और
कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि
और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
***
बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस
हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)
***
श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542
***
डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन
महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

अंदर के पन्नों पर

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

- पाकचोई: आईटीएम विश्वविद्यालय में उभरती विदेशी पत्तेदार सब्जी.. 08
- सर्दियों में मिलेट्स का महत्व और उपयोग 09
- सर्दी के मौसम में नवजात बछड़ों की देखभाल 10
- गेहूँ सुधार में आनुवंशिक रूपांतरण ... 11
- पीपीआर रोग क्या है? लक्षण, उपचार एवं रोकथाम 12
- सुखाड़ और बाढ़- ग्रामीण कृषि पर प्रभाव एवं उपग्रह... 13
- अध्ययन में किसानों के बदलते रुझान का खुलासा ... 14
- चिया सीड की वैज्ञानिक खेती:.. 15
- आजीविका सुदृढ़ीकरण में कृषिवानिकी की भूमिका 16
- आम के पेड़ का पुनरुद्धार 17
- 21वीं सदी में भारतीय कृषि विपणन सुधार पर एक आत्मनिरीक्षण 18
- गाय-भैंसों में लम्पी रोग: एक गंभीर विषाणुजनित बीमारी 19
- पशुओं में क्षयरोग (टीबी): किसानों के लिए सरल जानकारी 20
- मुर्गियों में कोक्सीडियोसिस 21
- सब्जी में अंतवर्तीय फसलों का महत्व 22
- ग्रीष्म मूँग की वैज्ञानिक तकनीकी से खेती 23
- जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग और टिशू कल्चर 24

उत्तर प्रदेश

- कृषि विस्तार सेवाएं: खेत और प्रयोगशाला के बीच की सबसे ... 25
- माइक्रोग्रीन्स: पोषण से भरपूर सुपरफूड 26
- वैज्ञानिक नैतिकता को मजबूत करने और कृषि विज्ञान को आगे बढ़ाने.. 27
- कम ज़मीन, अधिक मूल्य: खेती की सोच में ... 28
- उत्पादन से मूल्य तक: फसल उगाने से आगे की सोच 29
- सूक्ष्म पोषक : मृदा उर्वरता में सूक्ष्म पोषक तत्वों ... 30
- 'ग्रामीण विकास में नए प्रयोग' 31
- शून्य बजट प्राकृतिक खेती: एक आत्मनिर्भर... 32
- विकसित भारत गारंटी फॉर रोजगार एंड आजीविका मिशन ... 33
- काशीफल की उन्नत खेती 34
- जलवायु परिवर्तन और वैश्विक खाद्य उत्पादन... 35
- क्या भारत अपनी पारंपरिक सर्दी खो रहा है? 36
- अर्ध-शुष्क एवं शुष्क क्षेत्रों में कृषि प्रबंधन ... 37
- वर्मीवॉश: मिट्टी और फसल सुधार का प्राकृतिक उपाय 38
- रोबोटिक्स और ऑटोमेशन के माध्यम से बागवानी में नवाचार 39
- पनीर: परंपरा, पोषण और आधुनिक डेयरी का उद्योग 40
- मौसम फसलों व सब्जियों के लिए अनुकूल समय 41
- जलवायु परिवर्तन और कीट प्रजातियों .. 42
- समेकित पोषक तत्व प्रबंधन 43
- बायोफेंसिंग: फसल सुरक्षा का एक विकल्प 44
- विंग्ड बीन: एक चमत्कारी फसल 45
- जलागम प्रबंधन : एक समग्र दृष्टिकोण 46
- खरपतवार प्रबंधन और उत्पादक उपयोग: 47
- खेती में बढ़ती लागत और उसका समाधान 48
- भारतीय त्योहारों का बदलता स्वरूप: ... 49
- परंपरा, प्रौद्योगिकी और परिवर्तन: भारतीय कृषि .. 50
- कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता: भविष्य की खेती की नई दिशा 51
- कृत्रिम गर्भाधान और सरकारी योजनाएं 52
- 'मक्का: महत्वपूर्ण अनाज, उगाने की विधि, पोषण ... 53
- फालसा की वैज्ञानिक खेती, लाभ एवं कीट, रोग प्रबंधन 54
- पराली: खेत की समस्या या राष्ट्रीय चुनौती? 55

राजस्थान

- समन्वित खेती आधारित कम लागत कृषि-सवाई माधोपुर .. 56
- फसल बीमा कानून और कानूनी सुरक्षा 57
- लो-टनल तकनीक द्वारा ऑफ सीजन में सब्जियों... 58
- राजस्थान की रबी फसलों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव,... 59
- कृषि में एआई और मशीन लर्निंग का उपयोग.. 60
- सरसों में प्रमुख रोग एवं कीट प्रबंधन 61
- ड्रैगन फ्रूट व खजूर की खेती की संभावनाएं: ... 62

हरियाणा

- भारतीय देशी गौवंश में परजीवी प्रतिरोध: ... 63
- हरियाणा में महिलाओं की पारिवारिक आय बढ़ाने ... 64
- कीट एवं रोग प्रबंधन में सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों ... 65

पंजाब

- शीतकालीन सब्जियों में कम लागत वाली कटाई ... 66

बिहार

- नवजात गाय के बछड़ों में संक्रमण एवं उनकी समुचित देखभाल 67
- माह फरवरी में होने वाली कृषि की मुख्य क्रियाएं 68
- कम्प्लीट फीड ब्लॉक तकनीक-एक लाभकारी नवाचार 69
- प्राकृतिक खेती: अवधारण और परिदृश्य 70
- तेल निष्काशन मशीन अपनाने में बाधाएं ... 71

उत्तराखण्ड

- क्रैब एप्पल (जंगली सेब):... 72

हिमाचल प्रदेश

- जैविक खेती बनाम प्राकृतिक खेती-क्या बेहतर? 73
- रसोई बागवानी: सीमित स्थान में सब्जियां उगाना 74

नई दिल्ली

- प्राकृतिक खेती के अग्रदूत: .. 75

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

गणतंत्र दिवस के अवसर पर आयोजित मुख्य समारोह में कृषि विभाग द्वारा निकाली गई विभिन्न योजनाओं से संबंधित झांकी

प्राकृतिक खेती से संबंधित कृषि विभाग छिंदवाड़ा की झाँकी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ

छिन्दवाड़ा। 77वें गणतंत्र दिवस के पावन अवसर पर पुलिस परेड ग्राउंड छिन्दवाड़ा में आयोजित मुख्य समारोह में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी एवं मुख्यमंत्री डॉ.मोहन यादव के सपनों को साकार करती हुई कृषि विभाग की झांकी निकाली गई, जिसमें प्राकृतिक खेती, पर्यावरण संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य एवं जनस्वास्थ्य के लिए वरदान मानी जा रही प्राकृतिक खेती का बहुत ही सजीव चित्रण सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया। एक देशी गाय से 21 एकड में प्राकृतिक खेती की जाकर खेती को लाभ का धंधा बनाकर किसानों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ बनाया जा सकता है। कृषि विभाग की इस झांकी में वर्तमान समय की आवश्यकता प्राकृतिक खेती, जिसके द्वारा जहर मुक्त अनाज, सब्जियाँ, स्वस्थ पर्यावरण एवं स्वस्थ धरा की परिकल्पना का चित्रण किया गया । प्राकृतिक खेती से समृद्ध किसान, समृद्ध मध्यप्रदेश की थीम पर बनी कृषि विभाग छिंदवाड़ा की इस झाँकी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। उल्लेखनीय है कि मध्यप्रदेश शासन के निर्देशानुसार प्रदेश के लोक निर्माण विभाग मंत्री एवं छिन्दवाड़ा जिले के प्रभारी मंत्री श्री राकेश सिंह द्वारा जिले में साप्ताहिक प्राकृतिक/ जैविक हाट बाजार का गुरैया सब्जी मंडी में साप्ताहिक जैविक हाट का शुभारंभ किया गया है, ताकि शहरवासियों को जहर मुक्त जैविक उत्पादों को उपलब्ध कराया जा सके। जिले के प्राकृतिक खेती करने वाले कृषक भी साप्ताहिक प्राकृतिक जैविक हाट बाजार प्रारंभ होने से उत्साहित हैं एवं जिले के सम्मानीय किसान ट्रेक्टर में बैठे हुए शासन, प्रशासन का अभिवादन कर रहे हैं, जिसका सजीव चित्रण झांकी के माध्यम से किया जा रहा हैं। झांकी में जिले के आदिवासी अंचल के किसानों द्वारा प्राकृतिक कृषि से खुशहाली का प्रतीक गायन एवं नृत्य प्रस्तुत करते हुए प्रदर्शित किए गए। छिन्दवाड़ा जिले को प्राकृतिक खेती में मध्यप्रदेश में अव्वल स्थान का गौरव प्राप्त है। प्राकृतिक खेती से किसानों की लागत मे कमी लाकर जहाँ खेती को लाभ का धंधा बनाया जा सकता है, वहीं पर्यावरण, मृदा स्वास्थ्य एवं जनस्वास्थ्य के लिए वरदान साबित हो सकती हैं।

झांकी के अंतिम में नरवाई प्रबंधन के उन्नत कृषि यंत्रों का प्रदर्शन

छिंदवाड़ा। उप संचालक कृषि जितेंद्र सिंह ने बताया कि बढ़ती जनसंख्या एवं खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बनाने को दृष्टिगत रखते हुए प्रारंभ की गई हरितक्रान्ति से रसायनिक उर्वरक एवं कीटनाशकों का असंतुलित उपयोग भी हुआ, जिससे कैंसर जैसी घातक बीमारी जन सामान्य में बढ़ती जा रही है। परिणाम स्वरूप कई राज्यों में मरीजों के लिए कैंसर ट्रेन तक चलानी पड रही हैं, इससे निजात पाने का एक मात्र उपाय प्राकृतिक खेती है। झांकी के अंतिम में नरवाई प्रबंधन के उन्नत कृषि यंत्रों का प्रदर्शन, जिसमें सुपर सीडर हैप्पी सीडर, स्ट्रा रीपर, रीपर कम्बाईन्डर, स्व चलित स्ट्रा रीपर का प्रदर्शन दिखाया गया। लोक निर्माण विभाग मंत्री एवं छिन्दवाड़ा जिले के प्रभारी मंत्री श्री सिंह एवं कलेक्टर हरेंद्र नारायन के नेतृत्व में छिंदवाडा जिले में नरवाई प्रबंधन में सर्वश्रेष्ठ कार्य किये जा रहे हैं। नरवाई प्रबंधन प्राकृतिक खेती का प्रमुख स्त्रोत है जिससे मिट्टी की उर्वरक शक्ती बढ़ती हैं। इस प्रकार शासन की मंशानुसार प्राकृतिक खेती के माध्यम से कृषकों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर समृद्ध मप्र की निर्माण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कडी साबित होगी, इस तरह कृषि विभाग की झांकी द्वारा जीवंत प्रदर्शन किया गया।

नगर पालिक निगम छिंदवाड़ा (म.प्र.)

26 जनवरी 2026 गणतंत्र दिवस राष्ट्रीय पर्व के पुनीत अवसर पर नगरवासियों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

''एक कदम स्वच्छता की ओर''

स्वच्छ भारत अभियान

▪ जल ही जीवन है इसका अपव्य न करें। ▪ नगर पालिक निगम को देय समस्त करों का भुगतान समय पर करें। ▪ नगर को स्वच्छ और सुन्दर बनाए रखने में अपना योगदान दें। ▪ अपने शहर को सुन्दर बनाओ, गीला कचरा, सूखा कचरा, कचरा गाड़ी आने पर उसके निर्धारित खण्ड में ही डालें।

आयुक्त	धर्मेन्द्र सोनू मागो	विक्रम अहके
नगर पालिक निगम	अध्यक्ष	महापौर
छिंदवाड़ा	नगर पालिक निगम छिंदवाड़ा	नगर पालिक निगम छिंदवाड़ा

निवेदकः माननीय सभापतिगण/पार्षदगण एवं समस्त अधिकारी/कर्मचारी, नगर पालिक निगम छिन्दवाड़ा

नरसिंहपुर : ग्राम करकबेल के पशुपालक विजय शुक्ला ने डेयरी को बना फायदे का सौदा

सक्सेस स्टोरी

नरसिंहपुर। जिले की जनपद गोटेगांव के अंतर्गत आने वाले ग्राम करकबेल के प्रगतिशील पशुपालक श्री विजय शुक्ला ने अपनी मेहनत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से डेयरी फार्मिंग को एक सफल व्यवसाय का रूप दिया है। पशुपालक श्री शुक्ला के डेयरी फार्म में 10 उन्नत मुर्रा नस्ल की भैंस, 14 संकर व भारतीय देशी नस्लों की गाएं हैं। उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता के लिए मुर्रा नस्ल भैंस जानी जाती है, जो उनके डेयरी फार्म की मुख्य ताकत है। साथ ही भारतीय नस्लों के गोवंश के संरक्षण और संवर्धन पर भी विशेष ध्यान दे रहे हैं। इससे 120 लीटर प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन कर उन्हें करीब 30 हजार रुपये की मासिक आय प्राप्त हो रही है। पशुपालक शुक्ला बताते हैं कि पशुपालन में आने वाली सबसे बड़ी समस्या हरे चारे की उपलब्धता होती है, वे स्वयं ही इस समस्या का समाधान करते हैं। उन्होंने अपने खेतों में उन्नत चारा फसलों का उत्पादन किया, जिससे उनके पशुओं को पौष्टिक और हरा चारा मिलता है। इसके अलावा दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए वे संतुलित पशु आहार और मिनरल मिश्रण का नियमित उपयोग करते हैं।

पशुपालक श्री शुक्ला बताते हैं कि नस्ल सुधार के लिए वे कृत्रिम गर्भाधान- एआई जैसी आधुनिक तकनीकों का सहारा ले रहे हैं। श्री शुक्ला केवल कच्चा दूध बेचने तक सीमित नहीं हैं। उन्होंने दूध की प्रोसेसिंग-प्रसंस्करण शुरू कर बाजार में अपनी अलग पहचान बनाई है। दूध से शुद्ध पनीर, दानेदार खोवा, ताजी क्रीम, मठा जैसे अन्य उत्पाद तैयार कर रहे हैं, जो सीधे ग्राहकों तक प्रसंस्करण उत्पाद पहुंचाने से उन्हें दूध के मुकाबले कहीं अधिक मुनाफा मिल रहा है। पशुपालक श्री शुक्ला ग्राम करकबेल क्षेत्र के अन्य पशुपालकों व किसानों के लिए प्रेरणास्रोत बन चुके हैं। उनका मानना है कि यदि पशुपालन को पारंपरिक तरीके के बजाय वैज्ञानिक और व्यावसायिक तरीके से किया जाए, तो यह अर्थव्यवस्था को बदलने की ताकत रखता है।

'सफलता की कहानी' आजीविका मिशन ने बदली गुलाबवती दीदी की किस्मत

मजदूर से सफल कृषक उद्यमी बन गुलाबवती दीदी

छिन्दवाड़ा। पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग के अंतर्गत संचालित मध्यप्रदेश राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन, छिंदवाड़ा जिले की ग्रामीण महिलाओं को अभी आत्मनिर्भर और सशक्त बनाने में मील का पत्थर साबित हो रहा है। ग्रामीण आजीविका मिशन से जुड़कर छिंदवाड़ा जिले के हर्रई विकासखंड के ग्राम परणभटा की गुलाबवती धुर्वे, आज आत्मनिर्भरता और महिला सशक्तिकरण की एक सशक्त पहचान बन चुकी हैं। कभी मजदूरी और सीमित संसाधनों में जीवन यापन करने वाली गुलाबवती दीदी आज सफल कृषक उद्यमी बनकर न केवल अपने परिवार, बल्कि पूरे गाँव की महिलाओं के लिए प्रेरणा स्रोत बन गई हैं।

संघर्षों से भरा रहा प्रारंभिक जीवन - गुलाबवती धुर्वे का जन्म एक साधारण एवं गरीब परिवार में हुआ। विवाह के बाद भी आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। सीमित आय, खेती के लिए पूंजी की कमी, बीजङ्खाद समय पर न मिल पाना और सरकारी योजनाओं की जानकारी के अभाव में परिवार की मासिक आय मात्र 8 हजार रुपये तक सीमित थी। बच्चों की पढ़ाई, घर की जरूरतें और भविष्य की चिंता उनके जीवन का हिस्सा बन चुकी थी। स्व-सहायता समूह से जुड़कर बदली दिशा - 28 फरवरी 2022 को गुलाबवती दीदी आजीविका मिशन के अंतर्गत "दुर्गावती महारानी आजीविका स्व-सहायता समूह" से जुड़ीं। समूह से जुड़ने के बाद उन्हें न केवल वित्तीय सहयोग मिला बल्कि आत्मविश्वास और नेतृत्व की भावना भी विकसित हुई। समूह के माध्यम से बैंक से मिले ऋण में से 40,000 रुपये लेकर उन्होंने गेहूं, चना, मक्का और धान की व्यवसायिक खेती शुरू की।

खेती बनी आत्मनिर्भरता का माध्यम - आधुनिक और योजनाबद्ध खेती से गुलाबवती दीदी की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। आज वे हर्रई विकासखंड के विभिन्न ग्रामों में अपने कृषि उत्पादों का विक्रय कर रही हैं, जिससे उनकी परिवार की मासिक आय 20,000 रुपये तक पहुँच गई है। इतना ही नहीं, अतिरिक्त आय से उन्होंने कृषि भूमि भी खरीदी है, जिस पर कृषि कार्य द्वारा भी 1 से 2 लाख की अतिरिक्त आमदनी हो जाती है।

12/2025-26

खेती में विज्ञान की दस्तक: कोठी मे रावे कार्यक्रम के कार्यों का डीन द्वारा अवलोकन

रीवा। ग्राम कोठी में कृषि शिक्षा और ग्रामीण विकास का सशक्त संगम देखने को मिला, जब कृषि महाविद्यालय रीवा के अधिष्ठाता माननीय डॉ एस के त्रिपाठी ने विद्यार्थियों द्वारा किए गए रावे (ग्रामीण कृषि कार्य अनुभव) कार्यक्रम के अंतर्गत संचालित कार्यों का स्थल पर अवलोकन कर उनका मूल्यांकन किया तथा भविष्य हेतु मार्गदर्शन प्रदान किया। साथ ही उन्होने किसानो को प्राकृतिक खेती के लाभ बताए तथा इसे अपनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया। इस अवसर पर ग्राम पंचायत के सरपंच श्री शिव कुमार तिवारी जी, रावे कार्यक्रम के समन्वयक श्री संजय सिंह जी तथा रिलायंस फाउंडेशन के अधिकारी श्री पुष्पेंद्र पांडेय की गरिमामयी उपस्थिति रही। कार्यक्रम में काफी संख्या में स्थानीय कृषकों ने सहभागिता की और प्रस्तुत तकनीकी जानकारियों को उपयोगी व व्यवहारिक बताया। माननीय अतिथियों के अभिनंदन के उपरांत कार्यक्रम के दौरान छात्रा अलीजा, वैष्णवी, गुंजा, कविता, मोना, राधा, संध्या, तनिष्का एवं अंजलि ने ड्रिप सिंचाई प्रणाली पर आधारित कार्यशील मॉडल के माध्यम से जल उपयोग दक्षता, सूक्ष्म सिंचाई के वैज्ञानिक सिद्धांत, इससे जुड़ी सरकारी योजनाओं एवं अनुदान लाभों आदि की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की। इस प्रस्तुति ने आधुनिक कृषि में संसाधन संरक्षण और उत्पादन वृद्धि की संभावनाओं को प्रभावी रूप से रेखांकित किया।

इसी क्रम में दूसरे समूह मे छात्रा अनामिका, खुशी, अग्रांशी, रानू, खुशबू ,सपना, दिव्या एवं आरती द्वारा कीट प्रबंधन से संबंधित विभिन्न ट्रैप तकनीकों – जैसे येलो स्टिकी ट्रैप, ब्लू ट्रैप, लाइट ट्रैप एवं फेरोमोन ट्रैप – की चार्ट आधारित प्रस्तुति दी, जिसके माध्यम से कृषकों को कम लागत एवं पर्यावरण-अनुकूल विकल्पों की वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त हुई। कार्यक्रम के पश्चात डीन महोदय ने रावे अवधि के दौरान विद्यार्थियों द्वारा चयनित एवं प्रबंधित कृषि क्षेत्रों तथा किचन गार्डन का निरीक्षण किया, जहाँ किए गए फसल हस्तक्षेप, प्रबंधन सुधार एवं नवाचारों का प्रत्यक्ष अवलोकन किया गया। उन्होंने इन प्रयासों की सराहना करते हुए कहा कि इस प्रकार की फील्ड-आधारित शिक्षा ही कृषि छात्रों को वास्तविक समस्या-समाधानकर्ता बनाती है। समग्र रूप से यह कार्यक्रम इस तथ्य को रेखांकित करता है कि रावे केवल पाठ्यक्रम की औपचारिकता नहीं, बल्कि वैज्ञानिक सोच, ग्रामीण सहभागिता और टिकाऊ कृषि के निर्माण की एक प्रभावशाली प्रक्रिया है, जो किसानों और भावी कृषि वैज्ञानिकों–दोनों के लिए दीर्घकालिक लाभकारी सिद्ध होती है।

प्रदेश में पर्यटन के माध्यम से नए रोजगार सृजन हो रहे है

भोपाल। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने उज्जैन इंदौर रोड स्थित महालोक होटल एंड रिसॉर्ट का शुभारंभ कर कहा कि प्रदेश विकास के नवीन कीर्तिमान रच रहा है। श्री महाकाल महालोक के बाद उज्जैन की अर्थव्यवस्था और विकास को पंख लग गए है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि अच्छा संस्थान विनम्रता से गुणवत्तापूर्वक सेवा प्रदान कर नाम बनाते है। उज्जैन में होटल, रिसॉर्ट और धर्मशाला सभी श्रद्धालुओं को सुविधा प्रदान कर रहे है। हमारे यहां अतिथि देवो भव की परंपरा है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि सिंहस्थ 2028 में श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए इंदौर-उज्जैन रोड को 6 लेन किया जा रहा है साथ ही भविष्य में मेट्रो कनेक्टिविटी भी प्राप्त होगी। इंदौर , उज्जैन, देवास, धार, रतलाम और शाजापुर के क्षेत्रों से नवीन मेट्रोपॉलिटन सिटी बनाई जा रही है। प्रदेश में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए पीएम श्री हेलीकॉप्टर सेवा शुरू की गई है। पर्यटन के माध्यम से नए रोजगार सृजन हो रहे है। उज्जैन को धार्मिक पर्यटन के केंद्र के साथ विकसित करने के साथ औद्योगिक हब साइंस सिटी, नवीन विक्रम उद्योगपुरी फेस2 ,आईटी पार्क, प्लेनेटोरियम आदि के माध्यम से बनाया जा रहा है।

राज्यपाल की ओर से स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का हुआ सम्मान

भोपाल। राज्यपाल मंगुभाई पटेल ने गणतंत्र दिवस के अवसर पर स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को उनके घर पर सम्मानित कराया। राज्यपाल पटेल की ओर से लोकभवन के अधिकारियों ने भोपाल निवासी स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के घर पहुँच कर उनका सम्मान किया। राज्यपाल श्री पटेल की ओर से भोपाल निवासी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री मोहम्मद जमीर, श्रीमती सावित्री देवी वर्मा, श्री देवीशरण, श्रीमती पार्वती देवी, और श्रीमती नारायणी देवी को सम्मान स्वरूप शॉल, श्रीफल, मिठाई, और उपहार भेंट किए गए। इसी प्रकार स्वर्गीय स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्व. श्री हबीब नज़र की पत्नी श्रीमती फिरोज़ जहां और स्व. श्री मोहम्मद मुख्तार खान की पत्नी श्रीमती अख्तर जहां का सम्मान भी उनके निवास पर किया गया।

जैन बीज भण्डार
एवं पशु आहार
मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला–ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510
04/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

पाकचोई : ITM विश्वविद्यालय में उभरती विदेशी पत्तेदार सब्जी की सफल पहल

डॉ. शिप्रा सिंह परमार, डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार
डॉ. रंजीत रेड्डी, डॉ. दिव्या पांडेय
डॉ. वर्तिका सिंह, डॉ. एस. के. शर्मा
बागवानी विभाग, कृषि विद्यालय, आईटीएम विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

पाकचोई की खेती

फसल विविधीकरण, पोषण सुरक्षा एवं जलवायु-सहिष्णु कृषि पर बढ़ते जोर के साथ, भारत में बागवानी उत्पादन प्रणालियों को सुदृढ़ करने हेतु विदेशी एवं उच्च-मूल्य वाली सब्जियों का समावेशन एक महत्वपूर्ण रणनीति बन गया है। कोल फसलों के अंतर्गत आने वाली पत्तेदार सब्जियाँ अपनी अल्प अवधि, उच्च पोषण मूल्य तथा बढ़ती उपभोक्ता माँग के कारण विशेष ध्यान आकर्षित कर रही हैं। इन्हीं में से पाकचोई (Brassica rapa var. chinensis) एक ऐसी विदेशी सब्जी है, जो पूर्वी एशियाई व्यंजनों में अत्यधिक लोकप्रिय होने तथा शहरी बाजारों में बढ़ती स्वीकार्यता के बावजूद मध्य भारतीय मैदानी क्षेत्रों में अभी भी कम प्रचलित है।

इसकी संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए, उद्यानिकी विभाग, कृषि संकाय, आईटीएम विश्वविद्यालय, ग्वालियर द्वारा स्थानीय कृषि-जलवायु परिस्थितियों में पाकचोई की अनुकूलता, उत्पादकता तथा बीज उत्पादन की संभावनाओं के मूल्यांकन हेतु व्यवस्थित प्रयास किए गए। इन प्रयासों का उद्देश्य किसानों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना है, ताकि ऐसी नई फसलों की पहचान की जा सके जो आय में वृद्धि के साथ-साथ क्षेत्र में गुणवत्तायुक्त बीज की उपलब्धता सुनिश्चित कर सकें।

उद्यानिकी विभाग, कृषि संकाय, आईटीएम विश्वविद्यालय, ग्वालियर द्वारा पाकचोई (Brassica rapa var. chinensis) की लगातार दूसरे वर्ष सफलतापूर्वक खेती की गई है। यह विदेशी पत्तेदार सब्जी उच्च पोषण एवं आर्थिक महत्व रखती है। फसल ने ग्वालियर क्षेत्र की कृषि-जलवायु परिस्थितियों में उत्कृष्ट अनुकूलन क्षमता प्रदर्शित की है, जिससे यह स्थानीय किसानों के लिए एक उभरती हुई फसल के रूप में सामने आई है।

पाकचोई पोषण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है, जिसमें विटामिन A, C एवं K, कैल्शियम, आयरन, पोटैशियम, आहार रेशा तथा एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह गुण इसे पोषण सुरक्षा बढ़ाने एवं स्वस्थ आहार को प्रोत्साहित करने वाली महत्वपूर्ण सब्जी बनाते हैं। इसकी तीव्र वृद्धि दर तथा उच्च बाजार माँग इसके व्यावसायिक महत्व को और अधिक बढ़ाती है।

पाकचोई में बीज अवस्था

सफल खेती हेतु पाकचोई की बुवाई शीत ऋतु की शुरुआत में की जानी चाहिए, जिससे फसल की वृद्धि एवं परिपक्वता ठंडे मौसम में हो सके। बीजों की सीधी बुवाई की जा सकती है अथवा नर्सरी में पौध तैयार कर शीघ्र रोपाई की जा सकती है, जिससे समय पर फसल स्थापना सुनिश्चित हो। यह फसल शीघ्र परिपक्व हो जाती है और लगभग 40 दिनों में संपूर्ण पौधे को मिट्टी की सतह के ठीक ऊपर से काटकर कटाई की जा सकती है।

पाकचोई में फूल खिलना

विभाग की एक प्रमुख उपलब्धि पिछले वर्ष पाकचोई का सफल बीज उत्पादन रहा, जो मैदानी क्षेत्रों में एक दुर्लभ उपलब्धि मानी जाती है, क्योंकि कोल फसलों का बीज उत्पादन सामान्यतः पर्वतीय क्षेत्रों तक सीमित रहता है। वर्तमान मौसम में भी पाकचोई की फसल में फूल आना प्रारंभ हो गया है, जिससे इस वर्ष भी सफल बीज उत्पादन की प्रबल संभावनाएँ हैं।

आईटीएम विश्वविद्यालय, ग्वालियर में पाकचोई की सफल खेती एवं बीज उत्पादन क्षेत्र के किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण प्रदर्शन मॉडल के रूप में कार्य करता है, जो फसल विविधीकरण, उच्च-मूल्य सब्जी उत्पादन तथा स्थानीय बीज उत्पादन को बढ़ावा देकर सतत बागवानी विकास की दिशा में एक सशक्त पहल है।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

सर्दियों में मिलेट्स का महत्व और उपयोग

डॉ. वर्षा मोरे प्रक्षेत्र विस्तार अधिकारी
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय

भारत में "श्रीअन्न" के रूप में पहचाने जाने वाले मिलेट्स (मोटा अनाज) पोषक तत्वों से भरपूर, पाचन में आसान और शरीर को गर्म रखने वाले अनाज हैं। ठंड के मौसम में शरीर को अधिक ऊर्जा, गर्माहट और रोग प्रतिरोधक क्षमता की आवश्यकता होती है। ऐसे में मिलेट्स सर्दियों के लिए एक आदर्श, पारंपरिक और स्वास्थ्यवर्धक विकल्प साबित होते हैं।

सर्दियों में मिलेट्स क्यों ज़रूरी हैं?

1. शरीर को प्राकृतिक गर्माहट देते हैं

बाजरा, रागी और ज्वार जैसे मिलेट्स गर्म तासीर वाले होते हैं, जो ठंड के मौसम में शरीर की गर्मी बनाए रखने में मदद करते हैं।

2. रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं

मिलेट्स में प्रचुर मात्रा में होता है– * आयरन * कैल्शियम * जिंक* विटामिन B समूह

ये सभी तत्व सर्दी-जुकाम, खाँसी और वायरल संक्रमण से बचाव में मदद करते हैं।

3. पाचन में सुधार

सर्दियों में पाचन धीरे होने लगता है। मिलेट्स में मौजूद उच्च फाइबर पाचन को मजबूत बनाता है, कब्ज से राहत देता है और पेट को देर तक भरा रखता है।

4. लंबी अवधि तक ऊर्जा प्रदान करते हैं

मिलेट्स का स्लो-रिलीज कार्बोहाइड्रेट पूरे दिन लगातार ऊर्जा देता है, जिससे ठंड में सुस्ती दूर रहती है।

सर्दियों में प्रमुख मिलेट्स और उनके उपयोग

1. बाजरा (Pearl Millet)–सर्दियों का सुपरफूड

बाजरा आयरन, फोलिक एसिड और मैग्नीशियम का बेहतरीन स्रोत है।

सर्दियों में उपयोग:

* बाजरे की रोटी + घी
* बाजरे की खिचड़ी
* बाजरे के लड्डू
* बाजरे का दलिया

ये शरीर को गर्म रखते हैं और हड्डियों को मजबूत बनाते हैं।

2. रागी (Finger Millet): कैल्शियम का बादशाह

रागी में कैल्शियम, एंटीऑक्सीडेंट और प्रोटीन भरपूर मात्रा में होते हैं।

सर्दियों में उपयोग:

* रागी माल्ट (गुनगुना पेय) * रागी रोटी/दोषा
* रागी हलवा * रागी सूप

यह प्रतिरक्षा बढ़ाता है और त्वचा को भी स्वस्थ रखता है।

3. ज्वार (Sorghum) : ऊर्जा का बेहतरीन स्रोत

ज्वार फाइबर, खनिज और पौध-प्रोटीन से भरपूर होता है।

सर्दियों में उपयोग:

* ज्वार की भाखरी
* ज्वार की खिचड़ी
* ज्वार का उपमा
* ज्वार आटे से रोटियाँ

यह पाचन मजबूत करता है और ठंड में एक्टिव रहने में मदद करता है।

4. कांगनी, साँवा और कुटकी

ये हल्के लेकिन पौष्टिक मिलेट्स हैं, खासकर मधुमेह रोगियों के लिए उपयुक्त।

सर्दियों में उपयोग:

* मिलेट खिचड़ी
* मिलेट पोंगल
* गरम मिलेट सलाद
* मिलेट इडली/डोसा

ये दिल को स्वस्थ रखते हैं और वजन नियंत्रित करने में मददगार हैं।

सर्दियों में मिलेट्स के स्वास्थ्य लाभ

* **खून की कमी रोकने में मदद**

आयरन युक्त मिलेट्स जैसे रागी व बाजरा एनीमिया में लाभकारी हैं।

* **हड्डियों को मजबूत बनाते हैं**

कैल्शियम की अधिक मात्रा जॉइंट पेन से राहत देती है।

* **शुगर नियंत्रित रखते हैं**

लो ग्लाइसेमिक इंडेक्स वाले मिलेट्स डायबिटीज रोगियों के लिए अच्छे हैं।

* **त्वचा और बालों के लिए लाभकारी**

एंटीऑक्सीडेंट्स व विटामिन श्च सर्दियों की रूखी त्वचा को सुधारते हैं।

सर्दियों के आहार में मिलेट्स को शामिल करने के आसान तरीके

* गेहूँ की रोटी की जगह बाजरा/ज्वार की रोटी खाएँ
* सुबह गर्म रागी माल्ट पिएं
* मिलेट का चीला, पराठा या दलिया बनाएँ
* खिचड़ी या पोंगल में मिलेट का उपयोग करें
* सलाद में पॉप्ड/रोस्टेड मिलेट्स मिलाएँ

निष्कर्ष

सर्दियों में मिलेट्स का सेवन शरीर को गर्म रखता है, प्रतिरक्षा बढ़ाता है और ऊर्जा प्रदान करता है। यह न केवल स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं, बल्कि किसानों और पारंपरिक कृषिणियों को भी बढ़ावा देते हैं। सर्दियों में यदि अपने भोजन में मिलेट्स को नियमित रूप से शामिल किया जाए, तो स्वास्थ्य और पोषण दोनों का लाभ मिलता है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

सर्दी के मौसम में नवजात बछड़ों की देखभाल

डॉ.अलका सुमन, डॉ. एस. के. गुप्ता
डॉ. योगिता पांडेय, डॉ. डिम्पी सिंह
डॉ. अंचल केशरी, डॉ. शशि टेकाम
डॉ. रश्मि कुलेश
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय महू (म.प्र.)

नवजात बछड़े किसी भी पशुपालक के लिए अत्यंत मूल्यवान होते हैं, क्योंकि यही आगे चलकर दूध उत्पादन, प्रजनन क्षमता और पशुधन की गुणवत्ता को निर्धारित करते हैं। जन्म के तुरंत बाद पहला महीना विशेष रूप से संवेदनशील होता है, और यदि यह समय ठंड के मौसम में आए, तो देखभाल की आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है। कम तापमान, ठंडी हवा, नमी और संक्रमण–ये सभी कारक नवजात बछड़े के जीवन के लिए चुनौती बन सकते हैं। इसलिए सर्दियों में बछड़ों की उचित देखभाल एवं प्रबंधन बहुत आवश्यक है।

1. नवजात बछड़ों पर ठंड का प्रभाव

ठंड का मौसम नवजात बछड़ों के लिए इसलिए अधिक खतरनाक माना जाता है क्योंकि:

1. शरीर का तापमान नियंत्रित करने की क्षमता कम होती है।
2. जन्म के बाद 'इम्यून सिस्टम' पूरी तरह विकसित नहीं होता।
3. ठंड लगने से ऊर्जा की खपत बढ़ जाती है, जिससे वजन बढ़ने की गति कम हो जाती है।
4. सर्दी में निमोनिया, डायरिया जैसी बीमारियाँ तेजी से फैलती हैं।

इन कारणों से ठंड के मौसम में बछड़ों की देखभाल विशेष रणनीति के साथ की जानी चाहिए।

2. जन्म के तुरंत बाद दी जाने वाली देखभाल

(क) शरीर को सुखाना

जैसे ही बछड़े का जन्म होता है, उसके शरीर पर चिपका एम्नियोटिक द्रव ठंड के मौसम में जल्दी ठंडा हो जाता है।

* साफ, सूखे कपड़े या बोरी से शरीर को अच्छे से पोंछकर सुखाना चाहिए।
* सिर, पेट और पैरों को विशेष रूप से सूखा रखना जरूरी है।
* सूखने के बाद उसे तुरंत गर्म, बिना हवा वाली जगह पर रखें।

(ख) नाभि की सफाई

नाभि से संक्रमण होने का खतरा सबसे अधिक रहता है।

* नाभि को 5-7% आयोडीन घोल में डुबोकर साफ करें।
* यह प्रक्रिया 2-3 दिन तक रोज़ दोहराई जा सकती है।

इससे बछड़े को नाभि संक्रमण, बैक्टीरिया, और ब्लड-इनफेक्शन (सेप्टीसीमिया) से सुरक्षा मिलती है।

(ग) पहली दूध (कोलोस्ट्रम) की महत्ता

कोलोस्ट्रम नवजात बछड़े के लिए जीवन रक्षक भोजन है।

* जन्म के 1 घंटे के भीतर इसे अवश्य पिलाएँ।
* पहले 24 घंटे में बछड़े को उसके शरीर के वजन का लगभग 10% कोलोस्ट्रम देना चाहिए।

कोलोस्ट्रम में प्रचुर मात्रा में एंटीबॉडी, प्रोटीन और ऊर्जा होती है जो ठंड में उसके शरीर की प्रतिरक्षा को मजबूत करती है।

3. बछड़ों को गर्म वातावरण उपलब्ध कराना

(क) बिछावन (Bedding)

* फर्श पर मोटी और सूखी बिछावन जैसे भूसा, पुआल या लकड़ी की बुरादा डालें। * बिछावन को दिन में कम से कम एक बार बदलें ताकि नमी न रहे। *ठंड और गीली जगह से बचाना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

(ख) गर्म कपड़े या जैकेट-सर्दियों में बछड़ों को बछड़ा जैकेट, बोरी या मोटा कपड़ा पहनाना बहुत लाभदायक होता है।

यह उनकी शरीर की गर्मी को बनाए रखता है और ठंड से लड़ने में मदद करता है।

(ग) पशुशाला का तापमान * बछड़े को ऐसी जगह रखें जहाँ तेज हवा न आती हो। * खिड़कियों या खुले हिस्सों पर टाट या प्लास्टिक का पर्दा लगाएँ। * पशुशाला को हमेशा सूखा रखें और नमी से बचाएँ। * अत्यधिक ठंड होने पर बाहर हल्की आग (अंगीठी) जलाकर कमरे को हल्का गर्म किया जा सकता है, लेकिन धुआँ अंदर न जाए इसका ध्यान रखें।

4. भोजन और पानी का प्रबंधन

(क) दूध पिलाने का समय

* जन्म के बाद पहले सप्ताह तक दिन में 3- 4 बार दूध पिलाना अच्छा रहता है।
* गाय/भैंस का दूध हल्का गुनगुना करके ही दें।

(ख) पानी

* ठंडी में बछड़े पानी कम पीते हैं, जिससे निर्जलीकरण हो सकता है।
* हमेशा गुनगुना पानी उपलब्ध रखें।

(ग) स्टार्टर फ़ीड

* 10-15 दिन की उम्र से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बछड़ा स्टार्टर देना शुरू कर सकते हैं।
* इससे उनका पाचन तंत्र जल्दी विकसित होता है।

5. बीमारियों से बचाव

निमोनिया-सर्दियों में नवजात बछड़ों में निमोनिया सबसे आम बीमारी है।

इसके लक्षण: * खांसी * तेज सांस * नाक से स्राव * सुस्ती

बचाव: * हवा से बचाएँ * बिछावन सूखी रखें * गीले शरीर या फर्श पर न रहने दें

डायरिया- नवजात डायरिया ठंड में तेजी से फैलता है।

बचाव उपाय: * बछड़े को साफ वातावरण दें * बोतल/फीडर को रोज़ साफ करें * नाभि संक्रमण से बचाएँ डायरिया होने पर तुरंत इलेक्ट्रोलाइट्स दें और पशु चिकित्सक से सलाह लें।

6. स्वच्छता और हाइजीन- स्वच्छता ठंड के मौसम में बीमारी रोकने का सबसे प्रभावी उपाय है। * फर्श, बिछावन और बर्तन साफ रखें। * बछड़े को कीचड़, नमी और गोबर से दूर रखें। * दूध पिलाने से पहले और बाद में हाथ धोएँ।

7. टीकाकरण और डी-वार्मिंग *बछड़ों का टीकाकरण निर्धारित समय पर करवाना जरूरी है। *डी-वॉर्मिंग 15-20 दिन की उम्र के बाद पशु चिकित्सक की सलाह से कराएँ। * सर्दियों में प्रतिरोधक क्षमता कम होती है, इसलिए यह प्रबंधन और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

8. विशेष सावधानियाँ * बछड़े को बारिश, कोहरा या खुली हवा में न रखें। * अगर बहुत ठंड हो तो बछड़े को माँ के पास कुछ समय के लिए रखा जा सकता है ताकि शरीर की गर्मी मिले। * शरीर पर हल्का गर्म सरसों तेल लगाकर मालिश करना भी फायदेमंद है।

निष्कर्ष- ठंड के मौसम में नवजात बछड़ों की देखभाल अत्यंत संवेदनशील और महत्वपूर्ण कार्य है। उचित गर्मी, साफ-सफाई, पोषण, कोलोस्ट्रम, सूखी बिछावन, हवा से सुरक्षा और समय पर बीमारियों की रोकथाम–इन सभी बातों का ध्यान रखकर बछड़ों का स्वास्थ्य सुरक्षित रखा जा सकता है। यदि शुरुआत से ही इन बिंदुओं का पालन किया जाए, तो सर्दी में भी बछड़ों की मृत्यु दर काफी कम की जा सकती है और उनकी वृद्धि बेहतर होगी। स्वस्थ बछड़ा भविष्य में उत्पादक पशु बनकर पशुपालक की आर्थिक स्थिति को मजबूत करता है।

।। श्री गणेशाय नम ।।

फक्कड़ बाबा
खाद बीज भण्डार
खाद बीज एवं कृषि कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता

सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335
01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

गेहूँ सुधार में आनुवंशिक रूपांतरण (GENETIC TRANSFORMATION) की भूमिका

डॉ. रामराज सेन, नरेंद्र सिंह सिपानी
आईसीएआर–आईएआरआई–एसकेएएफ,
सहयोगी बाह्य अनुसंधान केंद्र (CORC),
चांगली, मंदसौर (म.प्र.)

सार (ABSTRACT)–आनुवंशिक रूपांतरण पौध प्रजनकों के लिए नवीनतम उपकरण है, जो ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर) की तकनीकों को विशिष्ट जीनों की प्रत्यक्ष प्रविष्टि के साथ जोड़कर गेहूँ में नए गुण जोड़ने में सक्षम बनाता है। इसमें Puccinia striiformis के विरुद्ध गेहूँ में रोग प्रतिरोध के आनुवंशिक स्रोतों की पहचान की जाती है। Yr26 जीन, Puccinia striiformis के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रमुख स्रोत है। जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग प्रजनन कार्यक्रमों में क्रांति ला सकता है तथा भारतीय गेहूँ के उपयोग, गुणवत्ता और बाजार संभावनाओं का विस्तार कर सकता है। यह लेख आनुवंशिक रूपांतरण तथा गेहूँ के आनुवंशिक संसाधनों में मूल्य संवर्धन हेतु इसके विशिष्ट योगदान का वर्णन करता है।

परिचय (INTRODUCTION)- आधुनिक पौध प्रजनकों के पास गेहूँ सुधार के लिए कई उपकरण उपलब्ध हैं, जिनमें आनुवंशिक संकरण, चयन, उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) और ऊतक संवर्धन शामिल हैं। आनुवंशिक संकरण में दो अभिभावकों से पूर्ण जीन समूहों को एक साथ लाकर नए गुणों के संयोजन तैयार किए जाते हैं। चयन प्रक्रिया के दौरान श्रेष्ठ गुणों वाले पौधों का चयन कर उनके बीज पुनः बोए जाते हैं तथा अवांछनीय गुणों वाले पौधों को हटा दिया जाता है।

कई बार लाभकारी उत्परिवर्तन, जैसे बौनेपन (ड्वार्फिज़्म) के लिए उत्परिवर्तन, आधुनिक गेहूँ किस्मों में गिरने (लॉजिंग) के प्रति प्रतिरोध विकसित करने में उपयोग किए गए हैं। ऊतक संवर्धन का उपयोग तब किया जाता है जब गेहूँ का संकरण किसी दूरस्थ संबंधी घास प्रजाति से किया जाता है, ताकि विशिष्ट कीट या रोग प्रतिरोध जैसे नए गुण प्राप्त किए जा सकें। ऐसे संकरणों से बने कुछ संकर पौधों को प्रयोगशाला में कृत्रिम माध्यम पर पोषित करना आवश्यक होता है, जब तक कि उनके गुणसूत्र संतुलित होकर एक व्यवहार्य पौधे के रूप में विकसित न हो जाएँ। इस प्रकार, ऊतक संवर्धन गेहूँ के जर्मप्लाज्म में नए गुण जोड़ने में सहायक होता है।

गेहूँ में आनुवंशिक रूपांतरण (GENETIC TRANSFORMATION IN WHEAT)- आनुवंशिक रूपांतरण पौध प्रजनन का नवीनतम उपकरण है, जो ऊतक संवर्धन तथा विशिष्ट जीनों की प्रत्यक्ष प्रविष्टि को एक साथ जोड़ता है। यह एक स्थायी प्रक्रिया है, क्योंकि प्रविष्ट किए गए जीन गेहूँ के गुणसूत्रों में स्थायी रूप से समाहित हो जाते हैं और बीजों के माध्यम से अगली पीढ़ियों में स्थानांतरित होते हैं।

यह तकनीक पारंपरिक प्रजनन की कई सीमाओं को दूर करती है। उदाहरण के लिए, किसी अनुकूलित किस्म में बिना बार-बार बैक-क्रॉसिंग किए केवल एक वांछित जीन को जोड़ा जा सकता है। चौड़े संकरण (वाइड क्रॉस) में, जंगली घासों से गुण लाने पर, बार-बार बैक-क्रॉसिंग की आवश्यकता होती है ताकि उच्च उपज और अनुकूलन क्षमता पुनः प्राप्त की जा सके। आनुवंशिक रूपांतरण से यह कार्य एक ही पीढ़ी में संभव हो जाता है।

गेहूँ की हेक्साप्लॉइड प्रकृति (प्रत्येक जीन की छह प्रतियाँ) के कारण लॉस-ऑफ-फंक्शन उत्परिवर्तन को पहचानना कठिन होता है। उदाहरणस्वरूप, मोमी (वैक्सी) गेहूँ का विकास तब संभव हुआ जब ग्रैन्यूल-बाउंड स्टार्च सिंथेज़ को कूटने वाले सभी छह जीनों में उत्परिवर्तन को संयोजित किया गया। आनुवंशिक रूपांतरण द्वारा "एंटीसेन्स" जीनों के उपयोग से किसी जीन की अभिव्यक्ति को लक्षित रूप से घटाया या समाप्त किया जा सकता है। यह विधि दुर्लभ उत्परिवर्तन की प्रतीक्षा किए बिना एक पीढ़ी में उपयोगी परिवर्तन संभव बनाती है।

इसके अतिरिक्त, आनुवंशिक रूपांतरण उन जीनों को भी गेहूँ में प्रविष्ट कर सकता है जो पारंपरिक संकरण से संभव नहीं हैं। इस प्रकार, यह तकनीक गेहूँ प्रजनकों को असीमित जीन पूल तक पहुँच प्रदान करती है।

संक्षेप में, इस प्रक्रिया में अपरिपक्व भ्रूणों (0.5-1.0 मिमी) को बीज से निकालकर एगर माध्यम पर रखा जाता है। जीनों को माइक्रो-प्रोजेक्टाइल बॉम्बार्डमेंट (जीन गन) तकनीक से प्रविष्ट किया जाता है, जिसमें सोने के सूक्ष्म कणों पर डीएनए लादकर हीलियम गैस के दबाव से कोशिकाओं में प्रवेश कराया जाता है। चयन माध्यम पर केवल वही भ्रूण विकसित होते हैं जिनमें जीन सफलतापूर्वक प्रविष्ट हुए हों। बाद में इन्हें जड़ एवं तना विकास हेतु विभिन्न माध्यमों पर स्थानांतरित कर मिट्टी में लगाया जाता है, जहाँ वे बीज बनाकर नई पीढ़ी में जीन स्थानांतरित करते हैं।

जैव प्रौद्योगिकीय सुधार (BIOTECHNOLOGICAL IMPROVEMENTS)

(i) रस्ट (RUST) रोग प्रतिरोध: हाल के वर्षों में रस्ट रोग से हुए भारी उपज व गुणवत्ता नुकसान ने Puccinia striiformis के विरुद्ध प्रतिरोधी जीनों की पहचान पर बल दिया है। Yr26 जीन इस रोग के विरुद्ध प्रमुख प्रतिरोध स्रोत है। आनुवंशिक रूपांतरण द्वारा अन्य पौधों या सूक्ष्मजीवों से ऐसे जीन जोड़े जा सकते हैं, जो कवक के प्रसार को धीमा करें या उसके माइकोटॉक्सिन को निष्क्रिय करें।

(ii) बीज प्रोटीन गुणवत्ता- कुछ ग्लूटेनिन प्रोटीन और आटे की मजबूती के बीच सकारात्मक संबंध पाया गया है। अतिरिक्त ग्लूटेनिन जीन जोड़कर आटे की गुणवत्ता में सुधार संभव है। वहीं नूडल-निर्माण जैसे उपयोगों के लिए कम मजबूती वाले आटे की आवश्यकता होती है, जहाँ एंटीसेन्स जीनों द्वारा ग्लूटेनिन की मात्रा घटाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त, लाइसिन और थ्रेओनिन की मात्रा बढ़ाकर गेहूँ को पूर्ण प्रोटीन स्रोत बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

(iii) स्टार्च संरचना- गेहूँ के बीजों का लगभग 70% शुष्क भार स्टार्च होता है। आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा स्टार्च संश्लेषण से जुड़े एंजाइमों को नियंत्रित कर विभिन्न स्टार्च संरचनाएँ विकसित की जा सकती हैं, जो विभिन्न औद्योगिक और खाद्य उपयोगों के लिए उपयुक्त हों।

निष्कर्ष (CONCLUSION)- आनुवंशिक रूपांतरण के क्षेत्र में और अधिक अनुसंधान एवं विकास की आवश्यकता है, ताकि इस तकनीक की दक्षता बढ़ाई जा सके और इसे अधिक संख्या में गेहूँ किस्मों पर लागू किया जा सके। आनुवंशिक रूप से परिवर्तित गेहूँ किस्में अब धीरे-धीरे प्रजनकों के हाथों में पहुँच रही हैं। इनके द्वारा बीज और पौधों के गुणों में व्यापक परिवर्तन की क्षमता सिद्ध हो चुकी है। अंततः, इन गुणों और इस तकनीक का वास्तविक मूल्य बाजार द्वारा निर्धारित किया जाएगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

पीपीआर रोग क्या है? लक्षण, उपचार एवं रोकथाम

डॉ. राखी गांगिल, डॉ. रवि सिकरोडिया
डॉ. राकेश शारदा, डॉ. दलजीत छाबरा
डॉ. जोयसी जोगी, डॉ. दीपक गांगिल
पशु सूक्ष्मजीव विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय महू- 453446

पीपीआर (Peste des Petits Ruminants) या बकरी प्लेग बकरियों और भेड़ों में होने वाली सबसे घातक वायरल बीमारियों में से एक है, जो पशुपालन व्यवसाय को पूरी तरह तबाह कर सकती है। यह Morbillivirus जीनस का वायरस पैदा करता है, जो रूबेला वायरस से मिलता-जुलता है और मृत्यु दर 70-100% तक पहुंचा देता है, खासकर युवा बकरियों में। भारत में उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में बार-बार महामारी फैलती है, जिससे लाखों बकरियां मर चुकी हैं और किसानों को करोड़ों का नुकसान हुआ है। मानसून व सर्दी के मौसम में नमी व ठंड से वायरस तेजी से फैलता है, इसलिए सतर्कता अत्यंत आवश्यक है।

लक्षण: पीपीआर का इंक्यूबेशन पीरियड 3-14 दिन (औसत 4-6 दिन) होता है। प्रारंभिक चरण (दिन 1-3): अचानक तेज बुखार (41-42°C या 106°F तक), जो उतर-चढ़ाव वाला रहता है, पशु सुस्त हो जाता है, आंखों व नाक से पारदर्शी स्राव बहता है, सांस तेज चलती है। मुख्य चरण (दिन 3-7): मुंह के अंदर सफेद-पीली झिल्ली या नेक्रोटिक छाले (erosions) बनते हैं, जीभ सूजी हुई लाल हो जाती है, लार टपकती है, खाने में दर्द से भूख पूरी तरह बंद। दस्त गाढ़ा, चिपचिपा या रक्तयुक्त (bloody dysentery) होता है, उदर में दर्द, कमजोरी व तेज निर्जलीकरण। उन्नत चरण: निमोनिया (फेफड़ों में संक्रमण), गर्भपात (गर्भवती में 80% केस), नवजात बकरियों में जन्मजात विकृति। गंभीर मामलों में 5-10 दिनों में मृत्यु; जीवित बकरियां 2-4 सप्ताह में रिकवर होती हैं लेकिन वजन 20-30% कम व दूध उत्पादन प्रभावित रहता है। पोस्टमॉर्टम में फेफड़े कंजेस्टेड, आंतों में अल्सर व लिम्फ नोड्स सूजे मिलते हैं।

कारण, प्रसार व जोखिम कारक

पीपीआर वायरस (PPRV) Paramyxoviridae परिवार से है, जो डीएनए आधारित नहीं बल्कि RNA वायरस है और आसानी से उत्परिवर्तित होता है।

प्रसार के तरीके: प्रत्यक्ष संपर्क (नाक-मुंह से सलाइवा, मल-मूत्र), हवा के जरिए श्वसन ड्रॉपलेट्स (2-3 मीटर तक), दूषित चारा-पानी-उपकरण। संक्रमित बकरी 2 सप्ताह पहले से ही संक्रामक होती है।

वेक्टर: कुत्ते, लोमड़ी जैसी जंगली जानवर माध्यम बन सकते हैं।

जोखिम कारक: कुपोषित बकरियां (विटामिन ए/श्व की कमी), भीड़भाड़ भाड़ा, नए पशु बिना क्वारंटाइन, खराब वेंटिलेशन, परजीवी (कीड़े) संक्रमण। भारत में 1990 से दर्ज महामारी, 2025 में बिहार-गोपालगंज जैसे क्षेत्र प्रभावित। वैश्विक रूप से 70+ देशों में मौजूद, अफ्रीका मूल का।

उपचार की विस्तृत व वैज्ञानिक विधियां

कोई विशिष्ट एंटीवायरल दवा नहीं, लेकिन सहायक उपचार से 40-60% बकरियां बचाई जा सकती हैं।

तत्काल कदम: संक्रमित को अलग करें, बाड़ा डिसइन्फेक्ट करें (1% सोडियम हाइपोक्लोराइट)।

दवाएं: एंटीबायोटिक्स - ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन (10-20 mg/kg IM, 3-5 दिन, सेकेंडरी बैक्टीरिया हेतु), लेवोफ्लॉक्सासिन। बुखार-पदार्थ दर्द के लिए मेलॉक्सिकम (0.5 mg/kg)।

स्थानीय उपचार: मुंह धोने हेतु 2-5% बोरोग्लिसरीन या KMnO4 घोल, आंख-नाक पर एंटीसेप्टिक ड्रॉप्स।

पोषण प्रबंधन: ORS इलेक्ट्रोलाइट्स (50-100 ml/kg/दिन), ग्लूकोज-डॉक्सी IV फ्लूइड्स, विटामिन B-कॉम्प्लेक्स (10 ml IM), जिंक-सेलेनियम इंजेक्शन। हरा चारा, जौ-गेहूं दाना, मूंगफली खल।

देसी उपाय: तुलसी-अदरक-हल्दी-काली मिर्च काढ़ा (100 ml, 2 बार), शहद-गिलोय-अश्वगंधा चूर्ण (10-20 ग्राम गुड़ लड्डू), नीम पत्ती लेप छालों पर। निदान: ELISA/PCR टेस्ट पशु चिकित्सालय में; मृत बकरियों को गहरे गड्ढे में जला दें। रिकवरी 10-21 दिन लेती है।

रोकथाम व टीकाकरण की रणनीति

टीकाकरण: भारत में Sungri-96 या Raipur strain vaccine (IVRI द्वारा), 4 माह+ बकरियों को 1 ml SC इंजेक्शन, 3 वर्ष पूर्ण सुरक्षा। मानसून से 1 माह पूर्व लगवाएं; गर्भवती को न दें। डीवर्मिंग (अल्बेंडाजोल 10 mg/kg) टीके से 15 दिन पहले।

उपाय: बाड़ा साफ, सूखा, हवादार (10 वर्गफुट/बकरी); जाली लगाएं। नए पशु 30 दिन क्वारंटाइन + सिरम टेस्ट। पशु बाजार/मेले बंद रखें महामारी में।

पोषण: प्रोटीन 16-20% चारा, मिनरल मिक्स (कैल्शियम-फॉस्फोरस), विटामिन A सप्लीमेंट। सरकारी अभियान (2025 गोपालगंज वैक्सीन ड्राइव) से मुफ्त टीका लें, हेल्पलाइन 1962/पशु चिकित्सालय संपर्क।

एकीकृत प्रबंधन: सिरम बैंक बनाएं, किसान समूह गठित करें।

किसानों के लिए व्यावहारिक व दीर्घकालिक सलाह

दैनिक निगरानी: सुबह-शाम तापमान (नॉर्मल 101-103°F), भूख, मल-मूत्र, सांस चेक; लक्षण पर 24 घंटे में डॉक्टर।

आर्थिक सुरक्षा: पशुधन बीमा (PMFBY), वैक्सीन-पासपोर्ट रिकॉर्ड, वैकल्पिक आय (मुर्गी/मछली पालन)।

समुदायिक प्रयास: गांव पंचायत स्तर Awareness Camp, पशु मेले Report करें, पड़ोसी किसानों से समन्वय।

नस्ल सुधार: सहनशील देसी नस्लें (बारबरी, जमुनापारी, सिरोही) चुनें, क्रॉसब्रीडिंग से प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाएं।

जलवायु अनुकूलन: गर्मी-मानसून में छायादार शेड, साफ पानी उपलब्ध कराएँ।

पीपीआर से बचाव से बकरी पालन लाभकारी बना रहता है–10 बकरियां सालाना 1-2 लाख आय दे सकती हैं।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

सुखाड़ और बाढ़: ग्रामीण कृषि पर प्रभाव एवं उपग्रह प्रौद्योगिकी द्वारा प्रबंधन

नरेन्द्र पाटीदार एम.एस.सी. (एजी.), मंदसौर वि.वि., मंदसौर
अरुण एम.एससी. (एजी.), मंदसौर विश्वविद्यालय, मंदसौर
डॉ. अंकित कुमार सिंह (सहायक प्रोफेसर) मंदसौर विश्वविद्यालय, मंदसौर, मध्य प्रदेश

परिचय: सुखाड़ और बाढ़ ग्रामीण कृषि को गहराई से प्रभावित करने वाली दो प्रमुख प्राकृतिक आपदाएँ हैं। ये फसल उत्पादन, जल संसाधन, पशुधन और किसानों की आजीविका को गंभीर रूप से नुकसान पहुँचाती हैं। सुखाड़ से फसलें सूख जाती हैं, जल की कमी होती है और पशुधन कमजोर पड़ता है, जबकि बाढ़ फसलों को डुबो देती है, मिट्टी का कटाव करती है तथा ग्रामीण बुनियादी ढाँचे को क्षति पहुँचाती है। इनसे निपटने के लिए उपग्रह-आधारित निगरानी, प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली और टिकाऊ कृषि पद्धतियाँ आवश्यक हैं।

1. सुखाड़ (Drought)-सुखाड़ वह स्थिति है जब वर्षा सामान्य स्तर से काफी कम होती है और जल की उपलब्धता घट जाती है। यह अनियमित वर्षा, उच्च तापमान या जल की अधिक मांग से उत्पन्न होती है।

मुख्यत: इसे चार प्रकारों में बाँटा गया है-1.मौसम संबंधी, 2. हाइड्रोलॉजिकल, 3. कृषि, 4. सामाजिक-आर्थिक सुखाड़।

भारत में जब वर्षा सामान्य से 50-75% कम होती है तो कृषि सुखाड़ माना जाता है। अनियमित मानसून, देर से आगमन या जल्द समाप्ति इसके प्रमुख कारण हैं।

सुखाड़ के प्रभाव

फसल उत्पादन: जल की कमी से उत्पादकता घटती है और खाद्य असुरक्षा बढ़ती है।

आजीविका: लगातार सुखाड़ से किसानों की आय कम होती है, पलायन बढ़ता है।

पशुधन: चारे व जल की कमी से पशुधन कमजोर होता है।

जल संसाधन: भूजल दोहन बढ़ने से जलस्तर गिरता है और कृषि अस्थिर होती है।

2. बाढ़ (Flood)- अत्यधिक वर्षा या नदियों के उफान से उत्पन्न बाढ़ ग्रामीण क्षेत्रों में फसल, भूमि और बुनियादी ढाँचे को भारी क्षति पहुँचाती है।

बाढ़ के प्रभाव

फसल विनाश: बाढ़ का पानी फसलों को डुबो देता है, जिससे उत्पादन नष्ट होता है।

मृदा क्षरण: उपजाऊ मिट्टी बहने से भूमि की उर्वरता घटती है।

बुनियादी ढाँचा: सड़कें, गोदाम और सिंचाई प्रणाली नष्ट होती है।

स्वास्थ्य जोखिम: बाढ़ का पानी बीमारियों को जन्म देता है।

3. उपग्रह प्रौद्योगिकी की भूमिका-उपग्रह सेंसर पृथ्वी की सतह से डेटा एकत्रित करते हैं, जिसे GIS प्रणाली के माध्यम से विश्लेषित किया जाता है। यह तकनीक मौसम पूर्वानुमान, सूखा और बाढ़ प्रबंधन में अत्यंत उपयोगी है।

प्रमुख उपयोग

वर्षा पैटर्न विश्लेषण: वर्षा की मात्रा व वितरण की निगरानी।

मिट्टी की नमी मापन: सिंचाई योजना और जल प्रबंधन में सहायता।

नदी स्तर निगरानी: बाढ़ संभावित क्षेत्रों की पहचान।

वनस्पति स्वास्थ्य मूल्यांकन: NDVI/EVI सूचकांकों से फसल तनाव की पहचान।

4. प्रमुख उपग्रह कार्यक्रम

भारत: INSAT, RISAT, Cartosat (ISRO)

वैश्विक: Sentinel (ESA), Landsat (NASA)

अंतरराष्ट्रीय सहयोग: FAO, WMO इत्यादि द्वारा उपग्रह डेटा एकीकरण।

5. सुखाड़ प्रबंधन में उपग्रह का उपयोग

* **वर्षा निगरानी:** सूखे की संभावना का पूर्वानुमान।

* **मिट्टी नमी आकलन (MSAP):** वास्तविक समय डेटा से जल प्रबंधन।

वनस्पति सूचकांक: फसलों की स्थिति व जल तनाव की पहचान।

पूर्व चेतावनी प्रणाली: मोबाइल ऐप व स्थानीय मीडिया द्वारा किसान सूचना।

6. बाढ़ प्रबंधन में उपग्रह तकनीक

जोखिम मूल्यांकन: भारी वर्षा पैटर्न की निगरानी।

हाइड्रोलॉजिकल मॉडलिंग: जमीनी व उपग्रह आंकड़ों से सटीक पूर्वानुमान।

वास्तविक समय अलर्ट: संभावित क्षेत्रों को समय पर चेतावनी।

सामुदायिक तैयारी: निकासी व राहत योजनाओं हेतु ग्रामीण प्रशिक्षण।

7. न्यूनीकरण रणनीतियाँ

जल संसाधन प्रबंधन: उपग्रह-निर्देशित जल उपयोग व संचयन योजना।

फसल विविधीकरण: सूखा-रोधी फसलों का प्रसार।

सरकारी योजनाएँ: PMKSY, MGNREGA में उपग्रह-आधारित निगरानी का उपयोग।

संरचनात्मक उपाय: तटबंध, जलाशय, जल निकासी डिज़ाइन।

गैर-संरचनात्मक उपाय: वनीकरण, भूमि उपयोग योजना, सामुदायिक भागीदारी।

8. प्रमुख चुनौतियाँ * उपग्रह डेटा की सीमित उपलब्धता व उच्च लागत। * ग्रामीण क्षेत्रों में संचार ढाँचे की कमी। * हितधारकों की तकनीकी जागरूकता का अभाव। * नीतिगत एकीकरण व वित्तीय समर्थन की आवश्यकता।

9. भविष्य की दिशा

* एआई, मशीन लर्निंग और उपग्रह डेटा का उन्नत विश्लेषण।

* **साझेदारी मॉडल:** सरकारी, निजी व अनुसंधान संस्थानों के सहयोग से एकीकृत समाधान।

* **सामुदायिक दृष्टिकोण:** स्थानीय स्तर पर अनुकूल योजनाएँ।

निष्कर्ष: सुखाड़ और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाएँ ग्रामीण कृषि, खाद्य सुरक्षा और आजीविका पर गहरा प्रभाव डालती हैं। उपग्रह प्रौद्योगिकी इन आपदाओं की निगरानी, चेतावनी और प्रबंधन में एक सशक्त उपकरण सिद्ध हो रही है। भारत, यदि इन तकनीकों को अपनी नीतियों व योजनाओं में समाहित करे, तो न केवल आपदाओं से नुकसान कम कर सकता है बल्कि टिकाऊ व जलवायु-लचीली कृषि व्यवस्था भी स्थापित कर सकता है।

कुंज एजेंसीज

अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती है
प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404
प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094
भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
10/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

अध्ययन में किसानों के बदलते रुझान का खुलासा–छोटे से बड़े किसान तक छोड़ रहे खेती, लेकिन कृषि उद्यमों की तलाश जारी

सचिन राठौर अतिथि प्राध्यापक, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर के कृषि अर्थशास्त्र विभाग में कार्यरत अतिथि प्राध्यापक तथा पूर्व में काशी हिंदू विश्वविद्यालय (BHU) के शोधार्थी रहे सचिन राठौर ने अपनी वैज्ञानिक शोध के आधार पर यह महत्वपूर्ण खुलासा किया है कि, किसान : चाहे वे छोटे, मझोले या बड़े ज़मींदार वर्ग के हों : धीरे-धीरे खेती से दूरी बना रहे हैं। इस अध्ययन में विभिन्न वर्गों के किसानों से बातचीत के आधार पर पता चला है कि भूमि का विखंडन, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाएं, बढ़ती लागत, श्रमिकों की कमी, और खेती से अनिश्चित आय जैसे कारण किसानों को खेती छोड़ने पर मजबूर कर रहे हैं।

अध्ययन के पहले केस में युवा, सीमांत और लघु किसानों की स्थिति सबसे चिंताजनक पाई गई। इन किसानों ने बताया कि परिवार में लगातार हो रहे भूमि के विखंडन ने खेती को उनके लिए लगभग असंभव बना दिया है। ज़मीन इतनी बँट चुकी है कि अब खेती से परिवार का भरण-पोषण कर पाना मुश्किल हो गया है। एक उत्तरदाता ने भावुक होकर कहा, ÷पहले ज़मीन ज़्यादा थी तो खेती करते थे, अब भाइयों में बँट जाने के बाद न साधन हैं, न ताकत। इसलिए शहर जाकर काम करना और बच्चों को अच्छी शिक्षा देना ही बेहतर लगा।÷ कई किसानों ने बताया कि हर साल बाढ़, बारिश में फसल का नष्ट होना, और जंगली जानवरों के हमले जैसी समस्याएँ अब आम हो गई हैं। इन स्थितियों में उन्हें फसल सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं रहती, जिससे उनकी मेहनत और लागत दोनों व्यर्थ चली जाती हैं। एक अन्य किसान ने कहा, ÷एक बार फसल तैयार भी हो जाए तो बाजार में सही दाम नहीं मिलता, ऊपर से इनपुट महंगे हैं – ऐसे में खेती घाटे का सौदा बन गई है।÷

अध्ययन में यह भी सामने आया कि युवा पीढ़ी अब खेती को भविष्य के रूप में नहीं देखती, बल्कि इसे असुरक्षित और कम आकर्षक पेशा मानती है। गाँव के कई युवा किसान अब शहरी जीवन को बेहतर अवसरों से भरा हुआ मानते हैं–जहाँ नियमित आय, आधुनिक सुविधाएँ और बच्चों की शिक्षा हेतु बेहतर विकल्प मिलते हैं। हालाँकि कुछ शिक्षित युवा किसान बदलाव की सोच भी दिखा रहे हैं। वे पारंपरिक खेती के बजाय आधुनिक और वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाने के इच्छुक हैं। जैसे एक युवा किसान ने बताया कि वह वर्टिकल फार्मिंग और कंट्रोल्ड एनवायरनमेंट एग्रीकल्चर जैसी नई तकनीकों में प्रशिक्षण लेना चाहता है। उसने कहा, "मैं चाहता हूँ कि खेती को नया रूप मिले– जहाँ कम ज़मीन में ज़्यादा उत्पादन हो सके। अगर सरकार से सहायता और ट्रेनिंग मिले तो हम गाँव में रहकर भी सम्मानजनक जीवन जी सकते हैं।"

अध्ययन यह संकेत देता है कि यदि ग्रामीण इलाकों में तकनीकी प्रशिक्षण, सिंचाई सुविधाएँ, बाजार तक पहुँच और फसल सुरक्षा की व्यवस्था की जाए, तो युवा किसान एक बार फिर खेती की ओर लौट सकते हैं। अन्यथा, शहरों की ओर पलायन आने वाले वर्षों में और तेजी से बढ़ेगा। अध्ययन के दूसरे केस में महिलाओं और मध्यम वर्गीय किसानों के दृष्टिकोण ने यह स्पष्ट किया कि आज खेती केवल आर्थिक संकट का नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा के ह्रास का भी विषय बन चुकी है। मध्यम वर्गीय किसानों ने स्वीकार किया कि अब समाज में खेती को पहले जैसी सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखा जाता। एक महिला किसान ने कहा, "मेरे पास काफी ज़मीन है, लेकिन मेरे बेटे अब खेती में रुचि नहीं लेते। पढ़े-लिखे लोग अब खेती को नीचा काम समझते हैं। जब वे गाँव आते हैं तो लोग कहते हैं कि ये तो किसान हैं – जैसे ये कोई हीन बात हो।" यह कथन उस गहरी सामाजिक मानसिकता को दर्शाता है जहाँ शिक्षा और आधुनिकता के साथ खेती को 'लो-स्टेटस' कार्य के रूप में देखा जाने लगा है। दूसरे किसान ने बताया कि खेती से इतनी आमदनी नहीं होती कि परिवार का भरण-पोषण आराम से चल सके। उसने कहा, ÷कृषि लागत बढ़ती जा रही है–खाद, डीज़ल, मजदूरी सब महंगे हैं। ऊपर से फसल बेचने पर जो दाम मिलता है, वो लागत भी नहीं निकाल पाता। ऐसे में दुकान या नौकरी करना ज़्यादा स्थिर और सम्मानजनक लगता है।" इसी कारण, कई मध्यम वर्गीय किसान अब अपनी ज़मीन बटाई या ठेके पर देकर शहरों में स्थायी आय वाले काम जैसे मेडिकल स्टोर, किराना दुकान, या निर्माण कार्य में मजदूरी करना अधिक उपयुक्त समझते हैं। महिलाओं के दृष्टिकोण में एक और पहलू उभरकर आया – निर्णय-निर्माण में सीमित भागीदारी। अध्ययन यह संकेत देता है कि यदि कृषि को पुनः सम्मानजनक और लाभकारी पेशा बनाना है, तो सरकार और समाज दोनों को मिलकर ऐसे कदम उठाने होंगे, जिनसे खेती में गरिमा, सुरक्षा और स्थिरता वापस लाई जा सके–विशेषकर महिलाओं और युवा किसानों के लिए। अध्ययन के तीसरे केस में बड़े और समृद्ध किसानों के अनुभवों ने एक अलग ही प्रवृत्ति को उजागर किया–मज़दूरों की कमी और तकनीकी खेती की बढ़ती दिशा। इन किसानों के पास भूमि संसाधन तो पर्याप्त हैं, लेकिन कृषि श्रमबल की अनुपलब्धता ने उनकी उत्पादकता को प्रभावित किया है। एक बड़े किसान ने बताया, "ज़मीन तो बहुत है, लेकिन मज़दूर नहीं मिलते। पहले गाँव में हर काम के लिए लोग उपलब्ध रहते थे, अब अधिकांश युवा शहरों में काम करने चले गए हैं। अब मैं आंशिक रूप से ही खेती करता हूँ और बाकी समय एग्रीबिजनेस को बढ़ाने में लगाता हूँ।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण श्रम का शहरी पलायन केवल छोटे किसानों के लिए नहीं, बल्कि बड़े किसानों के लिए भी एक गंभीर चुनौती बन गया है। परंपरागत खेती के लिए मजदूरों की अनुपलब्धता ने उन्हें यंत्रीकरण और नई तकनीकों को अपनाने की ओर प्रेरित किया है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि बड़े किसान अब खेती को केवल उत्पादन तक सीमित न रखकर, इसे व्यवसायिक दृष्टिकोण से देखने लगे हैं। वे कृषि में वैल्यू ऐडिशन, प्रोसेसिंग यूनिट्स, और एग्री-स्टार्टअप्स जैसे नए अवसरों की तलाश कर रहे हैं। एक किसान ने कहा, "अब सिर्फ गेहूँ-धान उगाने से गुज़ारा नहीं होगा। हमें सोच बदलनी होगी – मार्केट से जुड़ना होगा, नई तकनीक लानी होगी।" कई बड़े किसानों ने अब ड्रोन तकनीक, सैटेलाइट-आधारित फसल निगरानी, प्रिसिजन एग्रीकल्चर, और डिजिटल मार्केटिंग प्लेटफॉर्म्स को अपनाना शुरू किया है। उनका उद्देश्य खेती को कम श्रम-आधारित और अधिक पूँजी-आधारित बनाना है, ताकि मज़दूरों की कमी का असर घटाया जा सके। इसके अतिरिक्त, कुछ किसान अब अपनी ज़मीन को कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग, लीज़ एग्रीमेंट या कॉर्पोरेट टाई-अप्स के माध्यम से उपयोग में ला रहे हैं, जिससे वे प्रत्यक्ष खेती किए बिना भी लाभ अर्जित कर सकें। इस तरह, बड़े किसान अब पारंपरिक उत्पादक की भूमिका से आगे बढ़कर कृषि उद्यमी (Agri-Entrepreneur) बनते जा रहे हैं। कुल मिलाकर, यह केस दर्शाता है कि बड़े किसानों के बीच कृषि का चरित्र तेज़ी से बदल रहा है – वे अब मैनुअल लेबर पर निर्भर खेती से आगे बढ़कर टेक्नोलॉजी-संचालित एग्रीबिजनेस मॉडल की ओर बढ़ रहे हैं, जो भारतीय कृषि संरचना में एक नए सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का संकेत है।

अध्ययन के चौथे केस में एक अलग ही वर्ग सामने आया – कुलीन या तथाकथित 'वर्चुअल ज़मींदार' किसानों का। यह वे किसान हैं जो अब खेती के प्रत्यक्ष कार्य में शामिल नहीं होते, बल्कि केवल भूमि स्वामित्व से आर्थिक लाभ प्राप्त करते हैं। एक गाँव में रहने वाले ऐसे ही एक किसान ने बताया, "हमारे परिवार में पीढ़ियों से ज़मीन ठेके पर देने की परंपरा रही है। खेती की तुलना में ज़मीन पट्टे पर देना ज़्यादा लाभकारी और निश्चिंत है। हमारे परिवार में हमेशा से यही चलता आ रहा है।" यह कथन स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि उनके लिए खेती अब आजीविका का साधन नहीं, बल्कि निवेश का स्रोत बन चुकी है। इस वर्ग के किसान सामाजिक रूप से संपन्न और प्रभावशाली माने जाते हैं, लेकिन खेती से उनका संबंध केवल आर्थिक स्वामित्व तक सीमित रह गया है। वे कृषि उत्पादन, फसल जोखिम, या बाजार मूल्य जैसे मुद्दों से लगभग अलग हो चुके हैं। उनकी प्राथमिक रुचि भूमि किराये (लीज) से प्राप्त नियमित और सुनिश्चित आय में है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि ऐसे परिवार अक्सर शहरों या कस्बों में निवास करते हैं, जबकि उनकी ज़मीनें गाँव में बटाईदारों या ठेकेदार किसानों द्वारा जोती जाती हैं। कई मामलों में ये 'वर्चुअल ज़मींदार' अपनी भूमि पर आधुनिक तकनीक, सिंचाई या फसल विविधीकरण में निवेश भी नहीं करते, क्योंकि उनका उद्देश्य केवल भूमि का स्वामित्व बनाए रखना और उससे आय अर्जित करना होता है। सामाजिक दृष्टि से, यह वर्ग ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक नया शक्ति-संतुलन स्थापित कर रहा है। जहाँ एक ओर छोटे किसान संसाधनों के अभाव में खेती छोड़ने को विवश हैं, वहीं दूसरी ओर कुलीन किसान भूमि पर नियंत्रण बनाए रखते हुए खेती से दूर होते जा रहे हैं। यह स्थिति ग्रामीण समाज में नव-ज़मींदारी (Neo-Feudalism) की झलक प्रस्तुत करती है, जो भूमि असमानता और किसानों के सामाजिक विभाजन को और गहरा कर रही है। ऐसे केस इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारत के कई हिस्सों में कृषि का चरित्र तेजी से बदल रहा है–जहाँ भूमि का स्वामित्व सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है, परंतु खेती का श्रम और जोखिम अब दूसरों पर छोड़ा जा रहा है। अध्ययन यह भी इंगित करता है कि जब तक ग्रामीण कृषि प्रणाली को सशक्त नहीं किया जाता, जैसे–किसानों के लिए नियमित प्रशिक्षण, फसल सुरक्षा योजनाएं, तकनीकी सहायता और उचित मूल्य तंत्र (remunerative pricing system)–तब तक खेती से विमुखता की यह प्रवृत्ति और तेज़ होती जाएगी। ग्रामीण भारत के बदलते परिदृश्य में यह प्रवृत्ति केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक रूपांतरण की कहानी भी कहती है, जहाँ खेती अब सम्मान और स्थिरता की बजाय संघर्ष और असुरक्षा का प्रतीक बनती जा रही है। इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अध्ययन के दौरान यह भी सामने आया कि कुछ किसानों का रुझान– यदि एक आशावादी दृष्टिकोण अपनाया जाए, तो कृषि उद्यम– जैसे रेशम पालन (Sericulture), मशरूम उत्पादन, उच्च मूल्य वाली फसलों की खेती, कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन (Aquaculture), मोतियों की खेती, तथा नियंत्रित वातावरण में केसर (Saffron) की खेती–किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं, यदि इन्हें एक संगठित व्यवसाय के रूप में अपनाया जाए।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

चिया सीड की वैज्ञानिक खेती : कम लागत में अधिक मुनाफे का नया अवसर

हेमन्त कुमार सिन्हा (कृषि मौसम वैज्ञानिक) कृषि विज्ञान केन्द्र, नौगांव (म.प्र.)
नारायण पटेल इको लाइफ फाउंडेशन
अमित सिंह सीईओ इको लाइफ फाउंडेशन

चिया (Salvia hispanica L.) एक उभरती हुई तिलहनी, औषधीय एवं न्यूट्रास्युटिकल फसल है, जो लैमिएसी कुल से संबंधित है। इसका मूल स्थान मध्य अमेरिका (मेक्सिको एवं ग्वाटेमाला) माना जाता है, जहाँ प्राचीन माया और एज़्टेक सभ्यताओं द्वारा इसे ऊर्जा और स्वास्थ्य के लिए उपयोग किया जाता था। वर्तमान समय में चिया बीजों को विश्व स्तर पर "Super Food" की श्रेणी में रखा गया है। भारत में बदलती जीवनशैली, स्वास्थ्य-जागरूक उपभोक्ताओं, मधुमेह, हृदय रोग और मोटापे जैसी समस्याओं के बढ़ने से चिया बीजों की मांग तेज़ी से बढ़ रही है। कम पानी, कम लागत और अधिक बाजार मूल्य के कारण चिया की खेती किसानों के लिए एक लाभकारी एवं भविष्य की फसल बनती जा रही है।

चिया का पोषण एवं औषधीय

चिया बीज पोषण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध होते हैं। वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार इनमें निम्नलिखित तत्व पाए जाते हैं-ओमेगा-3 फैटी एसिड (a-linolenic acid – ALA)Ñ 30-35%, प्रोटीन- 18-22%, आहार फाइबरः 30-40%, खनिज तत्वः कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयरन, मैग्नीशियम, जिंक,एंटीऑक्सीडेंट्स एवं पॉलीफेनॉल्स

स्वास्थ्य लाभ: हृदय रोग एवं कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण,मधुमेह में रक्त शर्करा संतुलन,पाचन सुधार एवं कब्ज से राहत,वजन नियंत्रण, हड्डियों की मजबूती। इसी कारण चिया बीजों का उपयोग हेल्थ ड्रिंक्स, बेकरी उत्पाद, एनर्जी बार, आयुर्वेदिक औषधियाँ, न्यूट्रास्युटिकल्स एवं कॉस्मेटिक उद्योग में तेजी से बढ़ रहा है।

वर्गीकरण एवं वनस्पति विवरण

विशेषता	विवरण
वैज्ञानिक नाम	Salvia hispanica L.
कुल	Lamiaceae
गुणसूत्र संख्या	2n = 12
पौधे का प्रकार	वार्षिक, शाकीय
ऊँचाई	80–120 सेमी
जड़ प्रणाली	मुख्य जड़ (Tap root)
पत्तियाँ	विपरीत, अंडाकार, रोमयुक्त
पुष्पक्रम	स्पाइक (Spike)
परागण	मुख्यतः पर–परागण
फल	4 नटलेट्स
बीज रंग	काले एवं सफेद

चिया एक Short Day Plant है, अर्थात दिन छोटे होने पर इसमें फूल आते हैं।

जलवायु आवश्यकताएँ

तापमान- अंकुरण हेतु: 18-22°C, वृद्धि एवं विकासः 20-30°C,35°C से अधिक तापमान पर फूल झड़ने की समस्या,पाला एवं अत्यधिक ठंड से फसल को गंभीर नुकसान

वर्षा एवं आर्द्रता -आदर्श वर्षा: 500-800 मिमी, अधिक वर्षा या उच्च आर्द्रता फंगल रोग,शुष्क से अर्द्ध शुष्क जलवायु सर्वोत्तम

मिट्टी की आवश्यकता

चिया की खेती के लिए मिट्टी का सही चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। मिट्टी प्रकारः दोमट से बलुई दोमट, जल निकासः अच्छा होना चाहिए, pH मानः 6.0-8.0, EC: < 1 dS/m, भारी, जलभराव वाली एवं अत्यधिक लवणीय मिट्टी उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इससे जड़ सड़न (Root rot) की समस्या होती है।

किस्में एवं जर्मप्लाज्म

भारत में अभी चिया की अधिसूचित किस्में सीमित हैं, परंतु निम्न प्रकार प्रचलन में हैं:

Black Chia: अधिक ओमेगा-3, औषधीय उपयोग

White Chia: हल्का स्वाद, बाजार में अधिक मांग

ICAR एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा चयनित लाइनें (अनुसंधान स्तर)

खेत की तैयारी : एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से 2-3 बार हल्की जुताई (कल्टीवेटर/देशी हल)7 अंतिम जुताई में 10-12 टन सड़ी गोबर खाद/हेक्टेयर मिलाएं, खेत को समतल रखें।

बीज एवं बुवाई तकनीक

बुवाई का समय - रबी मौसम सबसे उपयुक्त अक्टूबर अंत से नवंबर प्रथम सप्ताह

बीज दर -1.5-2.0 किग्रा बीज/हेक्टेयर

बीज उपचार (अत्यंत आवश्यक) Trichoderma viride @ 4 g/kg बीज | Carbendazim @ 2 g/kg बीज इससे damping-off एवं root rot रोग से सुरक्षा मिलती है।

बुवाई विधि : कतार में बुवाई सर्वोत्तम

कतार दूरी: 30-45 सेंमी

पौधा दूरी: 20-25 सेंमी, बीज गहराई- 1-1.5 सेंमी

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरक सिफारिश (kg/ha): नाइट्रोजन (N)- 40, फास्फोरस (P2O5) - पोटाश (K2O)- 20

प्रयोग विधि: आधी नाइट्रोजन + पूरी फास्फोरस एवं पोटाश, बुवाई के समय, शेष नाइट्रोजन 30-35 DAS पर टॉप ड्रेसिंग क्ष्म पोषक तत्वः जिंक की कमी में ZnSO4 @ 25 kg/ha

सिंचाई प्रबंधन: चिया कम पानी की आवश्यकता वाली फसल है। अंकुरण- हल्की ,शाखा अवस्था-1 सिंचाई , पुष्पन- 1 सिंचाई, दाना -1 सिंचाई, भराव कुल 3-4 सिंचाइयाँ पर्याप्त

जलभराव से बचाव अत्यंत आवश्यक

खरपतवार प्रबंधन Critical period: 20-40 दिन 1-2 हाथ से निराई-गुड़ाई पर्याप्त। अधिक खरपतवार 30-40% उपज हानि Pendimethalin @ 1 kg a.i./ha (Pre-emergence)

कीट एवं रोग प्रबंधन

माहू (Aphid) एवं सफेद मक्खी-ये कीट पत्तियों का रस चूसकर पौधों को कमजोर कर देते हैं, जिससे पत्तियाँ पीली एवं मुड़ी हुई दिखाई देती हैं। नियंत्रण हेतु नीम तेल @ 5 मिली प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। अधिक प्रकोप की स्थिति में इमिडाक्लोप्रिड 17.8 SL @ 0.3 मिली प्रति लीटर पानी का प्रयोग करें।

प्रमुख रोग एवं नियंत्रण

जड़ सड़न एवं पत्ती धब्बा रोग: अधिक सिंचाई एवं जलभराव की स्थिति में जड़ सड़न तथा अधिक नमी में पत्ती धब्बा रोग की संभावना रहती है। खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें। बीज उपचार हेतु ट्राइकोडर्मा @ 4 ग्राम प्रति किग्रा बीज अवश्य करें। पत्ती धब्बा रोग के नियंत्रण हेतु मैनकोजेब @ 2 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।

कटाई, मड़ाई एवं भंडारण फसल अवधि: 90-110 दिन,जब 80% पुष्प सूख जाएं,दरांती से कटाई,छाया में सुखाकर मड़ाई, बीज नमीः 8% से कम

उपज एवं गुणवत्ता औसत उपज: 5-8 क्विंटल/हेक्टेयर,उन्नत तकनीकः 10-12 क्विंटल/हेक्टेयर,तेल मात्राः 30-35% Omega-3: 55-60% of total oil

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

आजीविका सुदृढ़ीकरण में कृषिवानिकी की भूमिका

डॉ. द्वारका अतिथि शिक्षक, कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश- 488001

निशा चढ़ार एम.एससी.(बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश- 472001.

सारांश

कृषिवानिकी वह प्रणाली है जिसमें एकीकृत रूप से कृषि फसलों, वृक्षों और पशुपालन का समन्वय किया जाता है। यह न केवल पर्यावरणीय संरक्षण में सहायक होती है, बल्कि ग्रामीण समुदायों, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों की आजीविका को सुदृढ़ करने का भी प्रभावशाली माध्यम है। इस प्रणाली में किसानों को वृक्ष आधारित उत्पादों जैसेकृलकड़ी, फल, चारा, औषधीय पौधों तथा कार्बन क्रेडिट से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। यह लेख कृषिवानिकी द्वारा आजीविका सशक्तिकरण, आय विविधता, जोखिम प्रबंधन, और सतत आर्थिक विकास में निभाई जाने वाली भूमिका का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

1. प्रस्तावना

ग्रामीण भारत में आजीविका के अधिकांश स्रोत खेती, पशुपालन और वानिकी आधारित हैं। जलवायु परिवर्तन, वर्षा पर निर्भरता और फसल विफलता जैसे कारकों के कारण आजीविका अस्थिर होती जा रही है। ऐसे में कृषिवानिकी एक लचीली एवं विविधतापूर्ण प्रणाली के रूप में उभर रही है जो आजीविका को मजबूत करने में सहायक है।

2. कृषिवानिकी का ढाँचा और लाभ

बहुस्तरीय उत्पादन प्रणाली- फसलें, वृक्ष और पशुपालन एक साथ

लंबी और छोटी अवधि की आय- तात्कालिक आमदनी (फसलें). दीर्घकालिक आय (लकड़ी, फल, बीज)

संपत्ति निर्माण- वृक्षों के रूप में स्थायी परिसंपत्ति

3. आय के विविध स्रोत

लकड़ी एवं इंधन- शीशम, बांस, सागौन, यूकेलिप्टस

फलदार वृक्ष- आम, आंवला, नींबू, जामुन

* **चारा एवं पत्तियाँ-** नीम, ग्लिरिसिडिया
* **औषधीय पौधे-** अश्वगंधा, तुलसी, गिलोय
* **कार्बन क्रेडिट-** जलवायु अनुकूलन हेतु आय का नया माध्यम

4. रोजगार सृजन और महिला भागीदारी

* वृक्षारोपण, नर्सरी प्रबंधन, बीज संग्रह, फल प्रसंस्करण * महिलाओं के लिए स्वरोजगार के अवसर * स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से उत्पादों का विपणन

5. जोखिम प्रबंधन और लचीलापन

* सूखा, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं में वृक्ष आधारित प्रणाली अधिक सहनशील
* कृषिवानिकी फसलों की विफलता पर भी आय की निरंतरता बनाए रखती है

6. नीति समर्थन और योजनाएँ

* राष्ट्रीय कृषि वानिकी नीति (2014)
* मनरेगा, जलवायु अनुकूल कृषि परियोजनाओं में कृषिवानिकी का समावेश
* आईसीएआर, आईसीआरएएफ, नाबार्ड द्वारा तकनीकी मार्गदर्शन एवं वित्तीय सहायता

निष्कर्ष

कृषि वानिकी एक ऐसी सतत प्रणाली है जो पर्यावरण, जैव विविधता और आर्थिक सशक्तिकरण के त्रिस्तरीय लक्ष्यों को प्राप्त करती है। यह आजीविका के लिए एक सुरक्षित, लाभकारी और बहुआयामी विकल्प बन चुकी है। यदि इसकी वैज्ञानिक रूप से योजना बनाकर कार्यान्वयन किया जाए, तो यह ग्रामीण भारत की आर्थिक रीढ़ को मजबूत करने का महत्वपूर्ण माध्यम बन सकती है।

पुष्प उत्पादन को दिया जाएगा व्यवसायिक स्वरूप : उद्यानिकी मंत्री

भोपाल। उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण मंत्री श्री नारायण सिंह कुशवाह ने कहा कि प्रदेश में पुष्प उत्पादन को व्यावसायिक स्वरूप दिया जाएगा। पुष्पों के उत्पादन के प्रति किसानों को आकर्षित करने के लिये 30 जनवरी को राज्य स्तरीय पुष्प प्रदर्शनी का आयोजन उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग द्वारा गुलाब उद्यान में किया जायेगा। प्रदर्शनी में पुष्प उत्पादक कृषक, पुष्प विशेषज्ञ, नर्सरी व्यवसाय से जुड़े उद्यमी, पुष्प उत्पादक संस्थाओं के प्रतिनिधि, कृषि विश्वविद्यलयों के छात्र तथा पुष्प प्रेमी शामिल होंगे। उन्होंने बताया कि मध्यप्रदेश पुष्प उत्पादन में देश में द्वितीय स्थान पर है। प्रदेश के लगभग 45 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में फूलों की खेती की जा रही है जिसमें 5 लाख मी.टन फूलों का उत्पादन प्रतिवर्ष हो रहा है। प्रदेश में लगभग 40 हजार किसान फूलों की खेती से जुडे हुए है। मंत्री श्री कुशवाह ने बताया कि राज्य शासन का लक्ष्य फूलों के उत्पादन के व्यावसायिक स्वरूप प्रदान करते हुए किसानों की आय को दोगुना करना है। मध्यप्रदेश को पुष्प उत्पादन में अग्रणी राज्य बनाना है। प्रदेश के ऐसे धार्मिक स्थान और शहर जिनमें फूलों की अधिक मांग रहती है उनके आस-पास पुष्प उत्पादन क्लस्टर विकसित करने कार्य योजना बनायी गई है। इसी कडी में उद्यानिकी विभाग द्वारा 2028 में होने वाले सिंहस्थ मेले को बडे अवसर के रूप में देख रहा है। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन के यादव पहल पर उज्जैन के आस पास लगभग 100 एकड में फूल उत्पादन का विशेष क्लस्टर विकसित करने पर कार्य किया जा रहा है। मंत्री श्री कुशवाह ने बताया कि प्रदेश के गुना जैसे छोटे जिले के किसानों द्वारा गुलाब उत्पादन में देश और विदेश में नई पहचान बनाई है। गुना का गुलाब दिल्ली, मुम्बई, बैंगलौर सहित विदेशों में भी अपनी पहचान बना रहा है। उन्होंने बताया कि विभाग द्वारा फूलों के उत्पादन को प्रधानमंत्री सूक्ष्म खाद्य उद्यम उन्नयन योजना (PMFME) से भी जोडा गया है। अनेक हितग्राही योजना का लाभ उठा कर फूलों से बनने वाले उत्पादों से जुड़े हुए है। मंत्री श्री कुशवाह ने बताया कि राज्य स्तरीय प्रदर्शनी बहु-उद्देशीय है

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

आम के पेड़ का पुनरुद्धार

अलीज़ा खान, मंजू शुक्ला
डॉ. राजेश सिंह, डॉ. अखिलेश कुमार
डॉ. स्मिता सिंह, डॉ. संजय सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र रीवा (म.प्र.)

आम (Mangifera indica L.), जिसे भारत का राष्ट्रीय फल तथा 'फलों का राजा' कहा जाता है, देश की बागवानी अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख स्थान रखता है। भारत विश्व का अग्रणी आम उत्पादक देश है, जहाँ लगभग 22.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र से 21.80 मिलियन मीट्रिक टन आम का उत्पादन होता है, जो देश के कुल फल उत्पादन का लगभग 45% है। एक ही आम का फल दैनिक आहार में आवश्यक आहार-रेशा (डायटरी फाइबर) की आवश्यकता का लगभग 40% तक प्रदान कर सकता है। आम के फलों का उपयोग कच्ची अवस्था से लेकर पूर्ण परिपक्व अवस्था तक विभिन्न रूपों में किया जाता है।

आम के वृक्ष देश की विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाए जा सकते हैं तथा यह जलोढ़ से लेकर लेटराइट मिट्टियों तक, लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में अच्छी वृद्धि करते हैं। आम के लिए 24-30°C तापमान सर्वाधिक अनुकूल पाया गया है, यद्यपि यह फल विकास एवं परिपक्वता की अवस्था के दौरान 48ष्ट तक के उच्च तापमान को भी सहन करने की क्षमता रखता है। पूर्व काल में आम का प्रवर्धन सामान्यतः बीजों द्वारा किया जाता था, किंतु समय के साथ बीज प्रवर्धन की पद्धति को विभिन्न ग्राफ्टिंग तकनीकों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। बीजजनित आम के वृक्ष 60 वर्ष से अधिक समय तक फलन कर सकते हैं, परंतु प्रायः इनमें फल की गुणवत्ता निम्न स्तर की होती है। ऐसे बीजजनित वृक्षों में लगभग 40 वर्ष की आयु के पश्चात उत्पादकता में स्पष्ट गिरावट देखी जाती है, जबकि ग्राफ्टेड आम के वृक्ष सामान्यतः रोपण के 25-30 वर्षों के बाद कम उत्पादक हो जाते हैं। फलों की गुणवत्ता से संबंधित मानकों की कमी के कारण भारत से आम का निर्यात अत्यंत सीमित बना हुआ है, जिससे अंतरराष्ट्रीय बाजार में देश की हिस्सेदारी अपेक्षाकृत कम है। भारतीय आम उद्योग की एक प्रमुख बाधा पुराने, अलाभकारी एवं अत्यधिक विशाल वृक्षों वाले बागानों की अधिकता है, जहाँ वैज्ञानिक कैनोपी प्रबंधन का अभाव पाया जाता है। ऐसे बागानों में अपर्याप्त प्रकाश प्रवेश और असंतुलित वृक्ष संरचना के परिणामस्वरूप न केवल उत्पादकता घटती है, बल्कि फल गुणवत्ता–विशेषकर फल के आकार–पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अनुमानतः आम उत्पादक क्षेत्रों के कुल क्षेत्रफल का लगभग 35-40% भाग ऐसे पुराने और अनुपजाऊ बागानों के अंतर्गत आता है, जो राष्ट्रीय स्तर पर आम की उत्पादकता तथा निर्यात क्षमता दोनों को गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

परिभाषा: जीर्णावस्था (Senility) पौधे की वह अवस्था होती है, जिसमें दीर्घकाल तक निरंतर फलन के पश्चात शाखाओं, उपशाखाओं अथवा सम्पूर्ण वृक्ष की सशक्त एवं क्रियाशील टहनियाँ उत्पन्न करने की क्षमता में कमी आ जाती है, परिणाम स्वरूप फल धारण करने योग्य नवीन वृद्धि का निर्माण बाधित हो जाता है। इन सीमाओं को दूर करने हेतु पुनरुद्धार का उद्देश्य वृक्ष की संरचना एवं उसकी आंतरिक शारीरिक क्रियाओं के संतुलन को पुनः स्थापित करना है। आम का पुनरुद्धार नियंत्रित छँटाई (pruning) एवं पादप वृद्धि नियामकों के माध्यम से कैनोपी की योजनाबद्ध पुनर्रचना की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा नवीन शाकीय एवं प्रजनन संतुलन उत्पन्न किया जाता है, प्रकाश अवरोधन में सुधार होता है तथा वृक्ष की उत्पादकता को पुनः बहाल किया जाता है।

पुनरुद्धार का सिद्धांत: * वृक्षों में सुप्त कलिकाएँ (latent buds) उपस्थित होती हैं, जो शाखाओं को निश्चित स्तर तक पीछे से काटने

(heading back) पर सक्रिय हो जाती हैं तथा नवीन प्ररोह उत्पन्न करती हैं। ये प्ररोह आगे चलकर शाखाओं के रूप में विकसित होकर फलधारी क्षेत्र का निर्माण करते हैं। * जब शाखाओं की छँटाई की जाती है, तो जड़ एवं प्ररोह (root : shoot ratio) के अनुपात में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पौधा इस संतुलन को पुनः स्थापित करने हेतु नवीन प्ररोहों का विकास करता है।

आम में पुनरुद्धार का महत्व: पुराने बगीचों में जहाँ धूप आती है, वहीं फूल खिलते हैं और फल आते हैं। छाया के कारण अंदर कोई फूल नहीं खिलता। पूरे बगीचे को जड़ से हटाना बहुत मुश्किल और महंगा कार्य है। नए पौधे लगाने के लिए भारी निवेश की आवश्यकता होती है तथा उन्हें आर्थिक उपज देने में 8ङ्क10 वर्ष लगते हैं। इसलिए, पुराने एवं स्थापित जड़ तंत्र का उपयोग करते हुए ऊपर से शाखाओं की छँटाई द्वारा पुनरुद्धार अपनाया जाता है, जिससे नई शाखाएँ विकसित होती हैं और लगभग तीन वर्षों में ये शाखाएँ फलन के लिए तैयार हो जाती हैं। इस प्रकार उपज एवं गुणवत्ता नए पौधों के समान प्राप्त की जा सकती है।

प्रक्रिया: हाल के वर्षों में ICAR–केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान (ICAR-CISH), लखनऊ में किए गए अनुसंधान कार्यों से आम के पुनरुद्धार से संबंधित समस्याओं को समझने एवं तकनीक को और अधिक परिष्कृत करने में महत्वपूर्ण सहायता मिली है। इस प्रौद्योगिकी के माध्यम से तना छेदक (Stem borer) के प्रकोप के बावजूद पौधों की किसी भी प्रकार की मृत्यु नहीं पाई गई। इसके अतिरिक्त, यह तकनीक बाग से पूर्ण रूप से फसल नष्ट किए बिना निरंतर आय सुनिश्चित करने में भी सफल सिद्ध हुई है। **इस पुनरुज्जीवन तकनीक के प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं—**

1. सर्वप्रथम बागानों का चयन उनके पूर्व प्रदर्शन, निरंतर उत्पादकता तथा कैनोपी (canopy) की वृद्धि की स्थिति के आधार पर किया जाता है। 2. प्रारंभिक चरण में, यदि वृक्ष में मध्य भाग में सीधी ऊपर की ओर बढ़ने वाली केंद्रीय शाखा (central leader) उपस्थित हो, तो उसे पूर्णतः पतला (thinning out) कर दिया जाता है। इस शाखा को उसके उद्गम बिंदु से ही पूरी तरह हटा दिया जाता है, ताकि उसका कोई भी भाग शेष न रहे। इससे वृक्ष की कैनोपी मध्य भाग से खुल जाती है, जिससे प्रकाश का आंतरिक प्रवेश सुगम हो जाता है। उत्तर भारत की परिस्थितियों में आम की छँटाई हेतु सर्वोत्तम समय दिसंबर से मध्य जनवरी तक माना गया है। 3. आगामी वर्षों में कैनोपी विकास के लिए वृक्ष के चारों ओर समान रूप से फैली हुई 3 से 5 चौड़े कोण वाली प्राथमिक शाखाओं का चयन किया जाता है। शेष वे सभी शाखाएँ, जो अत्यधिक नीचे की ओर स्थित हों, कृषि क्रियाओं में बाधा उत्पन्न करती हों अथवा चयनित शाखाओं के साथ आपस में उलझ रही हों, उन्हें भी उनके उद्गम स्थान से पूर्णतः हटा दिया जाता है। 4. पहले वर्ष की प्रक्रिया में केंद्रीय लीडर को हटाने के पश्चात, शीर्ष भाग में आमने-सामने स्थित दो प्राथमिक शाखाओं को 1.0-1.5 मीटर लंबा ठूंठ (stump) छोड़ते हुए पीछे से काटा जाता है, जिससे द्वितीयक शाखाओं का पुनर्जनन हो सके। शेष चयनित शाखाओं को फलन हेतु सुरक्षित रखा जाता है। कटे हुए भागों पर फफूंदनाशी लेप अथवा बोर्डो पेस्ट लगाया जाता है, जिससे घाव शीघ्र भर सकें तथा किसी प्रकार का संक्रमण न हो।

आदर्श कैनोपी विकास: वृक्षों को अनुशंसित मात्रा में खाद, उर्वरक एवं अन्य पश्च-देखभाल प्रदान की जाती है। पहले वर्ष में शेष शाखाओं से 50-150 किग्रा तक उन्नत आकार एवं गुणवत्ता वाले फल प्राप्त हुए। ठूंठ से निकलने वाले अतिरिक्त प्ररोहों को हटाकर केवल उपयुक्त एवं स्वस्थ प्ररोहों को कैनोपी विकास हेतु सुरक्षित रखा जाता हैं।

5. दूसरे वर्ष में अगली दो प्राथमिक शाखाओं को भी इसी प्रकार पीछे से काटा जाता है और केवल उचित दिशा में बढ़ने वाले स्वस्थ प्ररोहों को संरक्षित किया जाता है, जबकि अन्य को हटा दिया जाता है। तीसरे वर्ष में शेष पुरानी प्राथमिक शाखाओं को भी पीछे से काट दिया जाता है, जिससे वृक्ष तीसरे वर्ष में पूर्ण फलन के लिए तैयार हो जाता है। पहले वर्ष में प्रति वृक्ष 100-150 किग्रा, दूसरे वर्ष में 20-50 किग्रा तथा तीसरे वर्ष में नए विकसित कैनोपी से 20-30 किग्रा फल उत्पादन प्राप्त हुआ। इसके पश्चात कैनोपी के आकार में वृद्धि के साथ-साथ फल उत्पादन में भी निरंतर वृद्धि होती है।

6. उर्वरक प्रबंधन के अंतर्गत 2.5 किग्रा यूरिया, 3.0 किग्रा सिंगल सुपर फॉस्फेट, 1.5 किग्रा म्यूरेट ऑफ पोटाश तथा 50-100 किग्रा अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर खाद (FYM) प्रति वृक्ष अनुशंसित मात्रा में प्रयोग की जाती है। स्नङ्घरूकी पूरी मात्रा वर्षा ऋतु में कटाई के तुरंत बाद दी जाती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस की पूरी मात्रा एवं पोटाश की आधी मात्रा सितंबर में दी जाती है, जबकि शेष नाइट्रोजन एवं पोटाश फल सेट होने के तुरंत बाद दी जाती है।

7. कटे हुए ठूंठ से निकलने वाले अतिरिक्त प्ररोहों की छँटाई अप्रैल एवं जून माह में की जाती है, जिससे प्रत्येक शाखा पर केवल 5-8 स्वस्थ प्ररोह ही बने रहें और आदर्श कैनोपी का विकास हो सके। तना छेदक, पत्ती भक्षक कीटों एवं फफूंदजनित रोगों की निरंतर निगरानी एवं नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। ग्रीष्म ऋतु में फल सेट से लेकर फल परिपक्वता तक 15-15 दिन के अंतराल पर सिंचाई की जाती है।

8. इस पुनरुद्धार तकनीक को अपनाने पर तना छेदक के प्रकोप के बावजूद वृक्षों अथवा प्राथमिक शाखाओं की किसी भी प्रकार की मृत्यु नहीं देखी गई। इस तकनीक का परीक्षण कृषकों के खेतों पर भी सफलतापूर्वक किया गया है।

आम के पुनरुद्धार हेतु महत्वपूर्ण बिंदु एवं सावधानियां * पुनरुद्धार हेतु 20-50 वर्ष आयु के, स्वस्थ तना एवं जड़ प्रणाली वाले, ज्ञात किस्मों के ग्राफ्टेड बागानों तथा जिनकी उत्पादकता में गिरावट आई हो किंतु पूर्णतः विफल न हुई हो ऐसे पेड़ो का चयन किया जाना चाहिए। * आम में दिसंबर और जनवरी के महीने में हार्ड प्रूनिंग करनी चाहिए। प्रूनिंग की ऊँचाई ज़मीन से 2.5 से 3 मीटर होगी। यदि तना छोटा है, तो इसे 1 से 1.5 मीटर तक किया जा सकता है। * हार्ड प्रूनिंग करने के बाद, कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (सीओसी) पेस्ट या बोर्डो पेस्ट लगाना बहुत महत्वपूर्ण है, ताकि बीमारियों से बचा जा सके।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

21वीं सदी में भारतीय कृषि विपणन सुधार पर एक आत्मनिरीक्षण

अंकिता साहू सहायक प्राध्यापक एवं अनुभागाध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदौर, (म.प्र.)

प्रियांश रावत एम.एससी. अंतिम वर्ष के छात्र, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदौर, (म.प्र.)

नेहा द्विवेदी और आदित्य सिंह अतिथि शिक्षक, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदौर, (म.प्र.)

परिचय: कृषि विपणन, कृषि उत्पादन क्षेत्र को गैर-कृषि अर्थव्यवस्था से जोड़ने वाली एक आवश्यक कड़ी के रूप में कार्य करता है। वस्तुओं को उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के बुनियादी रसद के अलावा, एक सक्रिय विपणन प्रणाली को उत्पादकता बढ़ाने, उत्पादन प्रबंधन, बाजार पहुंच का विस्तार करने और कुल कृषि राजस्व को बढ़ाने सहित कई महत्वपूर्ण आर्थिक कारकों को चलाने के लिए डिज़ाइन किया गया है। ये सरकार के नेतृत्व वाले सुधार विकेंद्रीकृत व्यापार, अनुबंध खेती और सार्वजनिक-निजी भागीदारी के माध्यम से किसानों के लिए इस क्षेत्र को अधिक कुशल और लाभदायक बनाने के लिए आधुनिक बनाने और उदारीकरण पर केन्द्रि है। इन सुधारों के प्राथमिक उद्देश्य किसानों के प्रतिफल में सुधार करना, बाजार की पारदर्शिता बढ़ाना और उपभोक्ताओं और व्यापक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था दोनों को लाभ पहुंचाने वाले संपर्कों तक पहुंच बढ़ाना है। हालांकि, प्रणाली को अभी भी खराब भंडारण सुविधाओं, मानकीकृत ग्रेडिंग की कमी और बिचौलियों द्वारा शोषण जैसी महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जिसे सुधारों का लक्ष्य मूल्य संवर्धन के माध्यम से राष्ट्रीय आय को बढ़ावा देने के लिए कम करना है।

बाजार की स्थिति और आर्थिक प्रभाव

भारत ने अपने कृषि उत्पादन में एक महत्वपूर्ण बदलाव देखा है। 1950 के दशक की शुरुआत में, केवल 30-35% खाद्यान्न का विपणन किया जाता था, जो हाल के वर्षों में बढ़कर 70% से अधिक हो गया है। हालांकि, यह क्षेत्र फसल कटाई के बाद के नुकसान से निरंतर खतरे का सामना कर रहा है। यह अनुमान लगाया गया है कि दूध और मांस जैसे खराब होने वाले सामानों का 10-25%, और फलों और सब्जियों का 30-40% सालाना नष्ट हो जाता है। इन नुकसानों का मूल्य लगभग रु. 92,651 करोड़ प्रति वर्ष आंका गया है।

निर्यात और आयात किसी देश की वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण मानक हैं, जो सीधे उसकी वैश्विक आर्थिक स्थिति को प्रभावित करते हैं। भारतीय कृषि निर्यात वित्त वर्ष 2023 में 53.12 बिलियन अमेरिकी डॉलर के शिखर पर पहुंच गया, इसके बाद वित्त वर्ष 2025 में इसमें लगभग 36.99 बिलियन डॉलर तक की गिरावट देखी गई। **प्रमुख निर्यात वस्तुओं में शामिल हैं:** 1) समुद्री उत्पाद 2) बासमती और गैर-बासमती चावल 3) मसाले 4) भैंस का मांस।

* इन व्यापारिक सफलताओं के बावजूद, भारत को ग्लोबल हंगर इंडेक्स 2023 में चुनौती का सामना करना पड़ा, जहाँ वह 125 देशों में से 111वें स्थान पर रहा।
* विपणन सुधारों का विकास * **एक आधुनिक, उदार क्षेत्र की ओर संक्रमण को कई प्रमुख विधायी मील के पत्थर द्वारा चिह्नित किया गया है:**

वर्ष	सुधार / अधिनियम	मुख्य प्रभाव
2003	मॉडल APMC अधिनियम	निजी बाजारों, प्रत्यक्ष बिक्री और अनुबंध खेती को बढ़ावा दिया।
2007	वेयरहाउसिंग अधिनियम	गोदामों को विनियमित करने और प्रतिज्ञा वित्तपोषण को सक्षम करने हेतु WDRA की स्थापना की।
2016	e-NAM की शुरुआत	देश भर की मंडियों को एकीकृत करने के लिए एक डिजिटल "एक राष्ट्र, एक बाजार" मंच बनाया।
2017	मॉडल APLM अधिनियम	किसान सशक्तिकरण पर केंद्रित और पशुधन एवं मत्स्य पालन को शामिल करने हेतु व्यापार का विस्तार किया।
2020	तीन कृषि कानून	बाधा मुक्त व्यापार और सरकारी नियंत्रण कम करने का लक्ष्य; बाद में 2021 में वापस ले लिया गया।

वर्तमान चुनौतियां और सुधार की आवश्यकता

* जबकि सुधारों का उद्देश्य बाजार की पारदर्शिता और किसानों के प्रतिफल को बढ़ाना है, फिर भी कई बाधाएं बनी हुई हैं:

* **बुनियादी ढांचे की कमी:** पर्याप्त भंडारण और कोल्ड चेन सुविधाओं का अभाव।

* **कार्यान्वयन अंतराल:** निहित स्वार्थों का प्रतिरोध और नए डिजिटल उपकरणों के बारे में किसानों में जागरूकता की सामान्य कमी।

* **ऋण तक पहुंच:** लघु स्तर के उत्पादकों के लिए सीमित वित्तीय सहायता।

* 2020 के प्रमुख बदलावों से पहले, भारतीय कृषि परिदृश्य राज्य-विनियमित कृषि उपज विपणन समितियों (APMCs) के प्रभुत्व में था। हालांकि इनका उद्देश्य उचित मूल्य सुनिश्चित करना था, लेकिन इस शासन के परिणाम स्वरूप अक्सर:

खंडित बाजार: अक्षमताएं जिन्होंने बाजार की पहुंच को सीमित कर दिया और बिचौलियों पर भारी निर्भरता के कारण प्रतिफल को कम कर दिया।

सीमित निजी निवेश: उच्च प्रवेश बाधाएं जिन्होंने आपूर्ति श्रृंखला और बुनियादी ढांचे में निजी क्षेत्र की भागीदारी को हतोत्साहित किया।

कटाई के बाद का नुकसान: अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण खतरा, जिसमें फलों और सब्जियों में नुकसान 30-40% के बीच होने का अनुमान है।

भविष्य की राह

* एक वास्तविक एकीकृत राष्ट्रीय बाजार प्राप्त करने के लिए, भविष्य के प्रयासों में प्रौद्योगिकी और डिजिटलीकरण को प्राथमिकता देनी चाहिए। नीतिगत सिफारिशों में किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) को मजबूत करना, डेटा-संचालित निर्णय लेने का उपयोग करना और कृषि-आधारित उद्योगों के माध्यम से मूल्य संवर्धन पर ध्यान केंद्रित करना शामिल है। बाजार आधारित विस्तार प्रणाली और सटीक खेती की ओर बढ़कर, भारत किसान संरक्षण और सशक्तिकरण सुनिश्चित करते हुए व्यापार का उदारीकरण जारी रख सकता है।

* भारतीय कृषि विपणन एक पारंपरिक विनियमित प्रणाली से परिणाम-आधारित शासन मॉडल की ओर संक्रमण पर केंद्रित है जो किसान सशक्तिकरण और बाजार उदारीकरण को प्राथमिकता देता है। इस संक्रमण का केंद्र वास्तव में एकीकृत ÷एक राष्ट्र, एक बाजार÷ बनाने के लिए e-NAM मंच का निरंतर विस्तार है, जो प्रतिस्पर्धी और पारदर्शी मूल्य निर्धारण सुनिश्चित करने के लिए किसानों और खरीदारों के बीच सीधे संबंधों की सुविधा प्रदान करता है। इस डिजिटल एकीकरण का समर्थन करने के लिए, बाजार की दक्षता और पारदर्शिता में सुधार के लिए डेटा-संचालित निर्णय लेने और प्रौद्योगिकी अपनाने की गंभीर आवश्यकता है।

लघु स्तर के किसानों को व्यापक बाजारों तक पहुंचने के लिए आवश्यक सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति और बुनियादी ढांचा प्रदान करने के लिए FPOs को मजबूत करना एक सर्वोच्च प्राथमिकता बनी हुई है। इसके अलावा, फसल कटाई के बाद के भारी नुकसान को संबोधित करने के लिए आधुनिक भंडारण और कोल्ड चेन सुविधाओं में तत्काल निवेश की आवश्यकता है। भविष्य की नीतियों को 'इन्फ्रास्ट्रक्चर गैप एनालिसिस कमेटी' (IGACs) के माध्यम से और आवश्यक वस्तु अधिनियम में संशोधन करके आपूर्ति श्रृंखला में निजी निवेश को आकर्षित करके इस बुनियादी ढांचे की खाई को पाटना चाहिए। अनुबंध खेती और प्रत्यक्ष किसान-खरीदार संबंधों के लिए एक कानूनी ढांचा तैयार करके, यह क्षेत्र अनावश्यक बिचौलियों को खत्म कर सकता है, जिससे यह सुनिश्चित होगा कि किसानों को अंतिम उपभोक्ता मूल्य का उच्च हिस्सा प्राप्त हो। अंततः, बाजार आधारित विस्तार प्रणाली की ओर जाना और उच्च मूल्य वाले निर्यात पर ध्यान केंद्रित करना कृषि राजस्व को बढ़ाने और वैश्विक कृषि अर्थव्यवस्था में भारत की स्थिति में सुधार करने के लिए आवश्यक होगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

गाय–भैंसों में लम्पी रोग : एक गंभीर विषाणुजनित बीमारी

डॉ. राखी गांगिल, डॉ. राकेश शारदा
डॉ. दलजीत छाबरा, डॉ. जोयसी जोगी
डॉ. रवि सिकरोडिया, डॉ. दीपक गांगिल
पशु सूक्ष्मजीव विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय महू– 453446 (म.प्र.)

लम्पी त्वचा रोग (Lumpy Skin Disease - LSD) गायों, भैंसों और अन्य मवेशियों में होने वाली एक गंभीर वायरल बीमारी है, जो पशुपालकों के लिए बेहद घातक साबित होती है। यह रोग अफ्रीकी उत्पत्ति का है और 2019 से भारत में तेजी से फैला, खासकर 2022 में उत्तर भारत में महामारी बन गया, जिसमें लाखों पशु प्रभावित हुए। मुख्य रूप से Capripoxvirus से प्रेरित यह संक्रमण दूध उत्पादन को 50-100% तक कम कर देता है, व्यापारिक नुकसान पहुंचाता है और मृत्यु दर 5-40% तक हो सकती है। किसान भाइयों, इस रोग से सतर्क रहना जरूरी है क्योंकि यह न केवल आर्थिक हानि पहुंचाता है बल्कि पूरे पशुधन को खतरे में डाल देता है।

लक्षण

लम्पी रोग के लक्षण 4-14 दिनों के इंक्यूबेशन पीरियड के बाद प्रकट होते हैं। शुरुआत में पशु को 40-42°C तक तेज बुखार होता है, जो 2-3 दिन रहता है, साथ ही भूख लगना बंद, सुस्ती, आंसू बहना, नाक बहना और सांस फूलना जैसे लक्षण दिखते हैं। फिर त्वचा पर 0.5-5 सेमी व्यास की कठोर, दर्दनाक गांठें (नोड्यूल्स) उभर आती हैं–ये सिर, गर्दन, कंधे, पीठ, उदर, थनों और जननांगों पर ज्यादा होती हैं; गांठें लाल-भूरी होकर नेक्रोटिक (मृत) हो जाती हैं। मुंह, नाक व योनि में छाले व अल्सर बनते हैं, जिससे लार टपकना, खाने-पीने में दर्द और वजन घटना होता है। गर्भवती मवेशियों में गर्भपात, नवजात में जन्मजात दोष और दूध उत्पादन में भारी गिरावट आती है। गंभीर केस में लंगड़ापन, जोड़ों में सूजन और गैंग्रीन भी देखा जाता है।

कारण व प्रसार के तरीके

यह रोग LSDV (Lumpy Skin Disease Virus) नामक डीएनए वायरस से होता है, जो पॉक्सवायरिडे परिवार का सदस्य

है। वायरस मच्छरों (एडीज, कूलिक्स), मक्खियों (स्टेबल फ्लाई), टिक्कों और जुओं के काटने से यांत्रिक रूप से फैलता है– ये वेक्टर गर्मी व आर्द्रता में सक्रिय रहते हैं। प्रत्यक्ष संपर्क (नाक से नाक), दूध, गोबर, वीर्य, सलाइवा या दूषित चारे-पानी से भी संक्रमण होता है। हवा या संपर्क से सीधा प्रसार कम, लेकिन भीड़भाड़ वाले शेड्स में तेजी से फैलता है। जोखिम कारक: कमजोर प्रतिरक्षा (कुपोषण), नए पशु बिना क्वारंटाइन, खराब स्वच्छता और मानसून मौसम। भारत में राजस्थान, पंजाब, UP, हरियाणा सबसे प्रभावित रहे, 2022 में 2 लाख से ज्यादा मौतें हुईं। वैश्विक रूप से अफ्रीका, मिडिल ईस्ट से एशिया तक फैला।

उपचार की विस्तृत विधियां

वायरल होने से कोई स्पेसिफिक एंटीवायरल दवा नहीं; उपचार सहायक व सिम्प्टोमैटिक होता है। संक्रमित पशु को तुरंत अलग कर दें, बुखार व दर्द के लिए मेलॉक्सिकम (0.5-1 mg/kg IV/IM), एंटीबायोटिक्स (ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन 20 mg/kg, सेकेंडरी इंफेक्शन से बचाव हेतु) दें। घावों को पोटैशियम परमैंगनेट या आयोडीन से साफ करें, एंटीसेप्टिक स्प्रे लगाएं। IV फ्लूइड्स (डॉक्सी + ग्लूकोज + इलेक्ट्रोलाइट्स) दें, पौष्टिक चारा (हरा चारा, खनिज मिश्रण, जिंक-सेलेनियम सप्लीमेंट) प्रदान करें। देसी उपचार: आंवला-अश्वगंधा-गिलोय-सतावरी-अर्जुन की चूर्ण (25-50 ग्राम गुड़ के साथ लड्डू), नीम-हल्दी-तुलसी-लहसुन का काढ़ा (100-200 ml रोज), हल्दी-गंधक लेप गांठों पर। गंभीर मामलों में पशु चिकित्सक से PCR टेस्ट, ब्लड टेस्ट करवाएं; रिकवरी 2-4 सप्ताह लेती है लेकिन स्थायी क्षति रह सकती है। मृत पशुओं का गहरे गड्ढे में दाह-संस्कार करें। [aajtak]

रोकथाम व टीकाकरण

टीकाकरण सर्वोत्तम बचाव है–भारत में Goat Po& Vaccine (LSDV के समकक्ष) या LumpiVac (ICMR-नीमर द्वारा विकसित) उपलब्ध; प्रभावित जिलों में सालाना एक डोज (2 ml SC) लगवाएं, विशेषकर मानसून पूर्व। वेक्टर नियंत्रण: बुटॉक्स/डेल्टामेथ्रिन स्प्रे (हर 10-15 दिन), कीटनाशक जाल, शेड में फैन-कीट नेट, सूखा रखें। नए पशुओं को 21-30 दिन क्वारंटाइन, नियमित स्वास्थ्य जांच। शेड: खुला, हवादार, साफ-सुथरा; पोषण: संतुलित आहार (प्रोटीन 16-18%, विटामिन A/E)। महामारी में पशु आंदोलन प्रतिबंध, सरकारी हेल्पलाइन (1962) पर रिपोर्ट करें। राज्य पशुपालन विभाग से मुफ्त वैक्सीन लें; 2025-26 में LSD के खिलाफ राष्ट्रव्यापी अभियान चल रहा है।

किसानों के लिए व्यावहारिक सलाह

दैनिक निगरानी: पशुओं का तापमान, भूख चेक करें; गांठ दिखते ही डॉक्टर बुलाएं।

आर्थिक बचाव: बीमा (PMFBY पशु योजना) करवाएं, वैक्सीन रिकॉर्ड रखें।

जागरूकता: ग्राम स्तर पर किसान क्लब बनाएं, पशु मेले बंद रखें।

दीर्घकालिक: नस्ल सुधार (गिर, साहीवाल जैसी सहनशील), जैविक चारा बढ़ाएं।

स्वस्थ पशुधन से दूध आय बनी रहेगी–सतर्कता ही सफलता की कुंजी है। पशुपालन विभाग या नजदीकी Vet Hospital से संपर्क करें।

साप्ताहिक जैविक प्राकृतिक हाट बाज़ार में कृषि वैज्ञानिक सपरिवार पहुंचे जैविक सब्जियों की खरीदी करने अन्य अधिकारियों व शहरवासियों ने भी की जमकर जैविक सब्जियों की खरीदी

छिन्दवाड़ा। प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ.मोहन यादव के निर्देशानुसार ज़िले में प्रारंभ किये गये साप्ताहिक जैविक प्राकृतिक हाट बाज़ार में कृषि वैज्ञानिक सपरिवार सहित एवं अन्य अधिकारियों ने पहुँचकर जैविक सब्ज़ियाँ, फल आदि जैविक उत्पादों की ख़रीदी की एवं शासन / प्रशासन द्वारा प्रारम्भ किये गये इस साप्ताहिक जैविक हाट को शहरवासियों के लिये अत्यंत उपयोगी बताया, जहाँ शुद्ध सब्जियां, फल, अनाज, मिलेट्स और विभिन्न प्रकार के आटे सहित अनेक जैविक उत्पाद उपलब्ध हो रहे हैं। प्रशासनिक अधिकारियों के साथ शहरवासियों ने भी जमकर खरीदी की।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

पशुओं में क्षयरोग (टीबी): किसानों के लिए सरल जानकारी

डॉ. शशांक विश्वकर्मा, डॉ. अभिषेक बिसेन, डॉ. पुष्कर शर्मा पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर-482001, (म.प्र.)

डॉ. संजय शुक्ला, डॉ. रेणुका मेवाड़े, स्वाति त्रिपाठी, अंजू नायक, वंदना गुप्ता पशु चिकित्सा सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर

डॉ. पंकज कुमार उमर, डॉ. ज्योति पशु चिकित्सा औषध एवं विष विज्ञान विभाग नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर - 482001, (म.प्र.)

डॉ. अंजुल वर्मा पशु शल्य चिकित्सा एवं क्ष-रश्मि विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर - 482001, (म. प्र.)

डॉ. असद खान पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प. - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001, (हरियाणा)

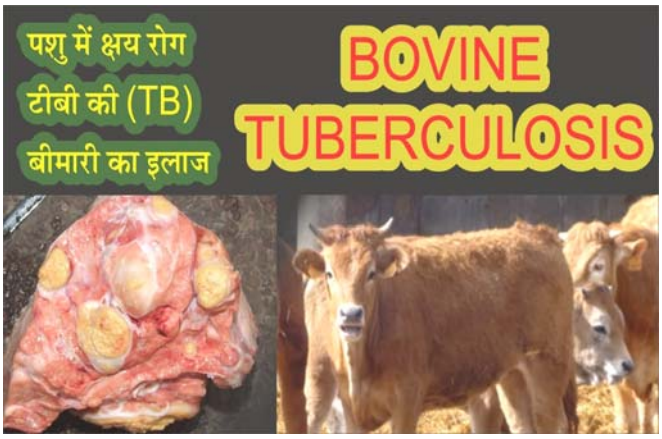

क्षयरोग (टीबी) पशुओं में होने वाली एक गंभीर, धीरे-धीरे बढ़ने वाली और फैलने वाली बीमारी है, जो मुख्य रूप से Mycobacterium bovis नामक कीटाणु से होती है। यह बीमारी गाय, भैंस, बकरी तथा अन्य पालतू पशुओं में पाई जाती है और पशुओं से मनुष्य में भी फैल सकती है, इसलिए इसे जूनोटिक रोग कहा जाता है। यह रोग बीमार पशुओं की साँस, खाँसी या नाक के स्राव के संपर्क में आने से, लंबे समय तक पास रहने से तथा कच्चा या बिना उबाला हुआ दूध पीने से फैलता है।

खराब साफ-सफाई, भीड़भाड़ और पशुशाला में हवा की कमी इस बीमारी के फैलाव को और बढ़ा देती है। क्षयरोग से पीड़ित पशुओं में लंबे समय तक हल्का बुखार रहना, धीरे-धीरे वजन कम होना, कमजोरी, खाँसी, साँस लेने में परेशानी, दूध उत्पादन में कमी तथा कभी-कभी गर्दन या जबड़े के पास गाँठ बनना जैसे लक्षण दिखाई देते हैं, हालांकि कई बार शुरूआती अवस्था में कोई स्पष्ट लक्षण नहीं दिखते। इस बीमारी की पहचान पशु चिकित्सक द्वारा ट्यूबरकुलिन त्वचा परीक्षण, दूध या खून की जाँच तथा प्रयोगशाला परीक्षणों से की जाती है। पशुओं की टीबी मनुष्य के लिए भी खतरनाक होती है, विशेषकर डेयरी किसानों, पशुपालकों और पशुओं के संपर्क में रहने वाले लोगों के लिए, इसलिए कच्चा दूध पीना स्वास्थ्य के लिए जोखिमपूर्ण है। आमतौर पर पशुओं में क्षयरोग का इलाज नहीं किया जाता क्योंकि इसका उपचार बहुत लंबा, महँगा होता है और बीमारी पूरी तरह ठीक होने के बाद भी संक्रमण का खतरा बना रहता है, इसलिए संक्रमित पशुओं को अलग करना या हटाना ही सबसे सुरक्षित उपाय माना जाता है। इस रोग से बचाव के लिए पशुओं की नियमित जाँच कराना, नए पशुओं को झुंड में शामिल करने से पहले परीक्षण करवाना, बीमार पशुओं को अलग रखना, पशुशाला को साफ-सुथरा और हवादार रखना तथा दूध को हमेशा उबालकर ही उपयोग करना अत्यंत आवश्यक है।

स्वसहायता समूह की महिलाओं ने मंत्री पटेल को भेंट किया आजीविका शहद

नरसिंहपुर

प्रदेश के पंचायत एवं ग्रामीण विकास तथा श्रम मंत्री श्री प्रहलाद सिंह पटेल को चांवरपाठा जनपद के ग्राम बोहानी एवं जनपद गोटेगांव के ग्राम करेलीकलां की स्वसहायता समूह की महिलाओं ने अपने श्रम और आत्मनिर्भरता का प्रतीक आजीविका शहद भेंट किया। उल्लेखनीय है कि स्वसहायता समूहों को सशक्त बनाने और महिलाओं के लिए स्थायी आजीविका के अवसर सृजित करने के उद्देश्य से कलेक्टर श्रीमती रजनी सिंह के मार्गदर्शन में नवंबर 2025 में जिले में मधुमक्खी पालन गतिविधि की शुरुआत की गई थी। यह पहल NTPC की सीएसआर मद की राशि से दो क्लस्टरों के माध्यम से प्रारंभ की गई। नियमित प्रशिक्षण, बेहतर प्रबंधन और समूह की महिलाओं की प्रतिबद्धता के परिणामस्वरूप मात्र दो माह की अवधि में दोनों क्लस्टरों से लगभग 8 क्विंटल शहद का उत्पादन किया जा चुका है। उत्पादित शहद का विक्रय स्थानीय बाजारों के साथ-साथ बड़े शहरों में भी किया जा रहा है। इसके अलावा शहद को ऑनलाइन मार्केटिंग प्लेटफॉर्म से जोड़ने की प्रक्रिया भी प्रारंभ कर दी गई है, जिससे महिलाओं की आय में और वृद्धि की संभावना है।

महिला सशक्तिकरण का उत्कृष्ट उदाहरण

इस अवसर पर मंत्री श्री पटेल ने कहा कि स्वसहायता समूहों द्वारा किया जा रहा मधुमक्खी पालन महिला सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता का उत्कृष्ट उदाहरण है। ऐसी गतिविधियाँ न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत कर रही हैं, बल्कि महिलाओं को सम्मानजनक और स्थायी आजीविका भी प्रदान कर रही हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

मुर्गियों में कोक्सीडियोसिस

डॉ. पी.पी. सिंह, डॉ. सुखवीर सिंह
श्रीमती रीना शर्मा
डॉ. स्वाती सिंह तोमर, डॉ. जे.सी. गुप्ता
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय-
कृषि विज्ञान केन्द्र, मुरैना (म.प्र.)

कोक्सीडियोसिस मुर्गियों का एक परजीवी रोग है जो कोक्सीडिया नामक सूक्ष्म परजीवियों के कारण होता है। कोक्सीडिया सभी मुर्गियों के पाचन तंत्र को नुकसान पहुंचाते हैं। लेकिन एक वयस्क स्वस्थ मुर्गी में थोड़ी मात्रा में सामान्यतः कोक्सीडिया का होना सामान्य है और इससे कोई स्वास्थ्य समस्या नहीं होती।

मुर्गियों में कोक्सीडिया क्या है?: कोक्सीडिया सूक्ष्म परजीवी होते हैं जो मुर्गियों की आंतों को संक्रमित करते हैं। ये तेजी से बढ़ते हैं और आंतों की परत को नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे कोक्सीडियोसिस नामक स्थिति उत्पन्न होती है। हालांकि कोक्सीडिया प्राकृतिक रूप से पर्यावरण में मौजूद होते हैं, लेकिन समस्या तब उत्पन्न होती है जब इनकी संख्या मुर्गियों की इनसे लड़ने की क्षमता से अधिक हो जाती है। छोटे चूजे और तनावग्रस्त मुर्गिया विशेष रूप से इसके प्रति संवेदनशील होते हैं। कोक्सीडियोसिस विश्व स्तर पर मुर्गी पालन उद्योग में आर्थिक नुकसान के प्रमुख कारणों में से एक है। भले ही मुर्गिया मरें नहीं, लेकिन उनकी कम वृद्धि दर और फीड का कम रूपांतरण फार्म की लाभप्रदता पर भारी प्रभाव डाल सकता है।

मुर्गीपालन में कोक्सीडियोसिस होने के लिए सहायक कारक : कोक्सीडिया का प्रसार काफी हद तक फार्म की स्थितियों और प्रबंधन पद्धतियों पर निर्भर करता है। **इसके कुछ मुख्य कारण इस प्रकार हैं**

1. बाडे में खराब बिछावन प्रबंधन नम और गंदा बिछावन कोक्सीडिया के पनपने के लिए आदर्श वातावरण प्रदान करता है।
2. बाडे में कम जगह में बहुत सारी मुर्गीयों को रखने से संक्रमण और तनाव बढ़ जाता है।
3. बाडे में नमी का जमाव उच्च आर्द्रता और गीला फर्श परजीवियों के विकास को बढ़ावा देते हैं।
4. दूषित दाने या पानी खराब या गंदे दाने और पानी में कोक्सीडिया के अंडे (ऊसिस्ट) हो सकते हैं।
5. तनाव पैदा करने वाले कारक जैसे मुर्गीयों का परिवहन, अचानक मौसम परिवर्तन और खराब पोषण मुर्गीयों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को कमजोर कर देते हैं, जिससे वे कोक्सीडियोसिस के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं।

कोक्सीडियोसिस का प्रसार

1. मुर्गीयों के झुंड में नई मुर्गी को शामिल करना - यह सबसे आम कारण है और तब भी हो सकता है जब मुर्गी पूरी तरह से स्वस्थ दिखाई दे रही हों। क्योंकि नए मुर्गीयो में कोक्सीडिया के उस स्ट्रेन के प्रति प्रतिरोधक क्षमता होती है जिसे वे अपने साथ ले जाते हैं, लेकिन फार्म की पुरानी मुर्गीयो में शायद नहीं होती।

2. अपने मुर्गीयो के साथ यात्रा करना और उन्हें वापस घर लाना, उदाहरण के लिए किसी मुर्गी प्रदर्शनी में भाग लेना।

3. किसी ऐसे मुर्गी पालक से मिलना जिसके जूतों, कपड़ों या यहां तक कि वाहन के टायरों पर कोक्सीडिया के अंडे (ऊसिस्ट) हों।

4. किसी अन्य मुर्गी पालक से प्राप्त उपकरण का उपयोग करना। जैसे कि पहले से इस्तेमाल किया हुआ मुर्गीघर, फीडर या अंडे के डिब्बे खरीदना। पहले से इस्तेमाल की गई किसी भी चीज को कीटाणुरहित करने के साथ-साथ अच्छी तरह से साफ करना आवश्यक है।

कोक्सीडियोसिस के लक्षण: कोक्सीडियोसिस को नियंत्रित करने के लिए लक्षणों की शीघ्र पहचान महत्वपूर्ण है। किसानों को निम्नलिखित लक्षणों पर ध्यान देना चाहिए

1. दाने का कम खाना और वजन में कमी आना।
2. खूनी या पानी जैसा दस्त, अक्सर बलगम के साथ।
3. पंख बिखरे हुए, लटके हुए पंख और सामान्य कमजोरी।
4. रक्त की कमी के कारण निर्जलीकरण, कलंगी का पीला पड़ना और सुस्ती।
5. गंभीर मामलों में, झुंड में अचानक मृत्यु।
6. झुकी हुई, बेजान या धुंधली आंखें।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कोक्सीडियोसिस के लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। ऐसे मामलों में, मुर्गीयों में दिखाई देने वाले लक्षण नहीं दिखते हैं, लेकिन उनकी वृद्धि और भोजन दक्षता में गिरावट आती है, जिससे अप्रत्यक्ष आर्थिक नुकसान होता है।

कोक्सीडियोसिस का उपचार: किसान अक्सर मुर्गीयो की बीट और व्यवहार को देखकर कोक्सीडियोसिस का संदेह कर सकते हैं। हालांकि, पुष्ट निदान के लिए प्रभावित मुर्गीयों के पोस्टमार्टम परीक्षण में अक्सर आंतों में घाव दिखाई देते हैं। प्रयोगशाला परीक्षणों से जिम्मेदार ईमेरिया प्रजाति के विशिष्ट प्रकार की पहचान की जा सकती है। सटीक निदान महत्वपूर्ण है क्योंकि अन्य मुर्गी रोगों के लक्षण भी समान हो सकते हैं।

मुर्गीयो में कोक्सीडिया की रोकथाम: मुर्गी फार्मों में कोक्सीडियोसिस की रोकथाम एक निरंतर प्रयास होना चाहिए। एक बार परजीवी पनप जाने पर, उपचार कठिन और महंगा हो सकता है। निवारक उपायों में निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं।

1. अच्छी कृषि प्रबंधन पद्धतियाँ
2. नियमित रूप से पलटने और बदलने से बिछावन को सूखा रखें।
3. नमी कम करने के लिए उचित वेंटिलेशन सुनिश्चित करें।
4. अनुशंसित संख्या में ही मुर्गीयो को बाडे में रखना चाहिए। कम जगह में अधिक मुर्गीयो को रखने से कॉक्सीडियोसिस होने की संभावना अधिक हो जाती है।
5. संक्रमण के स्तर को कम करने के लिए मुर्गियों के झुंड के बीच पोल्ट्री हाउस को कीटाणुरहित करें।

पोषण और दाने में मिलाने वाले पदार्थ

1. रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए संतुलित आहार प्रदान करें।
2. सहायक नियंत्रण उपायों के रूप में फीड में अजवायन, नीम या लहसुन जैसी प्राकृतिक जड़ी-बूटियाँ शामिल करें।
3. हर समय स्वच्छ, ताजा पानी उपलब्ध कराएँ।
4. किसान मुर्गीया की आंतों के स्वास्थ्य में सुधार, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और तनाव कम करने के लिए बायोकोलीन जैसे वैज्ञानिक रूप से विकसित पोल्ट्री फीड सप्लीमेंट भी मिला सकते हैं, जिससे कोक्सीडियोसिस का खतरा अप्रत्यक्ष रूप से कम हो जाता है।

टीकाकरण: चूजों में कोक्सीडियोसिस के खिलाफ प्रतिरक्षा विकसित करने के लिए टीके उपलब्ध हैं। टीकाकरण विशेष रूप से बड़े पैमाने पर मुर्गीपालन फार्मों में उपयोगी है, जहां प्रकोप विनाशकारी हो सकता है।

औषधीय दाना (कोक्सीडियोस्टैट्स): परजीवी वृद्धि को रोकने के लिए मुर्गीयों हेतु दाने में आमतौर पर कोक्सीडियोस्टैट्स मिलाए जाते हैं। इनके प्रति कोक्सीडिया के प्रतिरोध को रोकने के लिए दवाओं को बारी-बारी से देना चाहिए। अधिकतम प्रभावशीलता के लिए हमेशा पशु चिकित्सक के मार्गदर्शन में ही प्रयोग करें।

कोक्सीडियोसिस का उपचार: कोक्सीडियोसिस की पुष्टि होने पर, तत्काल उपचार आवश्यक है। सामान्य उपचारों में आयनोफोर और सल्फोनामाइड जैसी एंटीकोक्सीडियल दवाओं का उपयोग किया जाता है। मुर्गीयों को निर्जलीकरण और कमजोरी से उबरने में मदद करने के लिए इलेक्ट्रोलाइट्स और विटामिन सप्लीमेंट देना उपयोगी रहता है। सही खुराक सुनिश्चित करने और दवा के दुरुपयोग को रोकने के लिए पशु चिकित्सक की देखरेख में उपचार करवाना चाहिए।

कोक्सीडियोसिस का आर्थिक प्रभाव: कोक्सीडियोसिस केवल एक स्वास्थ्य समस्या ही नहीं है, बल्कि मुर्गी पालकों के लिए एक आर्थिक बोझ भी है। इससे होने वाले नुकसान के कारण हैं धीमी वृद्धि दर और अंडे उत्पादन में कमी होती है। उच्च फीड रूपांतरण अनुपात (थ्त्) क्योंकि मुर्गी अधिक खाते हैं लेकिन उनका विकास कम होता है। उपचार और रोकथाम कार्यक्रमों में अधिक पूंजी का व्यय होता है। गंभीर प्रकोपों में मृत्यु दर से प्रत्यक्ष आर्थिक नुकसान होता है। रोकथाम में कुछ पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है लेकिन बीमारी होने की दशा में हमेशा अधिक पूंजी का व्यय होता है। मुर्गियों को स्वस्थ रखने के लिए, ऊसिस्ट (कोक्सीडिया के अंडे) के संपर्क को कम करना भी महत्वपूर्ण है। सूर्य की रोशनी, शून्य से नीचे का तापमान और गर्म, शुष्क परिस्थितियाँ सतहों और मिट्टी में मौजूद ओसिस्ट को नष्ट कर देती हैं। दुनिया भर के किसानों के लिए पोल्ट्री में कोक्सीडिया एक निरंतर खतरा है। हालाँकि यह बीमारी गंभीर आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ पैदा कर सकती है, लेकिन सही दृष्टिकोण से इसे नियंत्रित किया जा सकता है। स्वच्छ आवास, उचित बिछावन प्रबंधन, संतुलित पोषण, टीकाकरण और कोक्सीडियोस्टैट्स का विवेकपूर्ण उपयोग रोकथाम की रीढ़ हैं। जो किसान जैव सुरक्षा और शीघ्र निदान को प्राथमिकता देते हैं, उनके अपने मुर्गियों के झुंड को स्वस्थ और लाभदायक रखने की संभावना कहीं अधिक होती है। पोल्ट्री फार्मिंग में, रोकथाम हमेशा इलाज से बेहतर होती है। कारणों को समझकर, लक्षणों को शीघ्र पहचान कर और निवारक उपायों को अपनाकर, किसान कोक्सीडियोसिस को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर सकते हैं और अपने मुर्गियों से स्थिर उत्पादकता सुनिश्चित कर सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

सब्जी में अंतवर्तीय फसलों का महत्व

श्रीमती अर्चना कुर्रे, डॉ. एस.पी. सिंह कृषि विज्ञान केन्द्र कटघोरा, कोरबा (छ.ग.)

अंतवर्तीय फसल: जब दो या दो से अधिक फसलें एक ही खेत में यक साथ सही कतार दुरी और समय के साथ उगाई जाती है। इसे अंतवर्तीय फसल कहा जाता है।

अंतवर्तीय फसल के प्रमुख प्रकार

कतार अंतवर्तीय फसल	फसलें अलग-अलग कतारों में बोई जाती है।	मक्का+मूंग, गन्ना+सोयाबीन
मिश्रण अंतवर्तीय फसल	बीजों का मिश्रण कर एक साथ बोई जाती है।	बाजरा+उड़द, ज्वार+मूंगफली
पट्टी अंतवर्तीय फसल	फसले पट्टी में बोई जाती है।	गेहूं+सरसों
अनुक्रमिक अंतवर्तीय फसल	फसल के पकने से पहले दूसरी बोई जाती है।	धान+चना, मक्का+गेहूं

अंतवर्तीय फसल लेने के लाभ: * अंतवर्तीय फसल अपनाने से एक साथ एक ही खेत में, एक ही मौसम में एवं एक ही समय में दो या दो से अधिक फसलों का एक साथ उत्पादन। * कम लागत प्रति इकाई अधिक उत्पादन। * मृदा से नमी, पोषक तत्व, प्रकाषन एवं खाली स्थान का समूचित उपयोग। * फसल पद्धिति से धान्य एवं सब्जी फसलों के साथ दलहनी फसलों को उगाकर मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखना। * तेज वर्षा एवं तेज हवाओं के कारण होने वाले मृदा अपरदन को रोकना। * फसलों को रोग एवं कीटों से भी बचाया जा सकता है। * किसान वर्षा में कई बार आमदनी प्राप्त कर सकते है। * एक फसल किसी कारणवष उत्पादन न होने की स्थिति में दूसरे फसल से लाभ लिया जा सकता है।

अंतवर्तीय फसलोत्पादन के सिद्धांत - * अंतवर्तीय फसलोत्पादन में उगाई जाने वाली फसलों का एक-दूसरे पर सहायक प्रभाव हो, न कि प्रतियोगितात्मक * सहायक फसल , मुख्य फसल की तुलना में कम अवधि में तेजी से वृद्धि करने वाली होनी चाहिए ताकि मुख्य फसल की प्रारंभिक धीमी वृद्धिकाल का उपयोग किया जा सके। * सहायक फसल की कृषि क्रियाऐं मुख्य फसल के सामान होनी चाहिए। * अंतवर्तीय फसलोत्पादन में एक सीधी बढ़ने वाली, जबकि दूसरी फसल फैलकर वृद्धि करने वाली होनी चाहिए, ताकि मृदा का कटाव के साथ-साथ सतह से नमी का वाष्पीकरण भी रोका जा सके। * फसल पद्धिति में जड़ों की गहराई अलग-अलग होनी चाहिए मतलब एक फसल कम गहराई तो दूसरी फसल अधिक गहराई से पोषक तत्व ग्रहण करें। * मुख्य फसल के पौधों की सरल इष्टम होनी चाहिए जबकि सहायक फसल के पौध संख्या आवष्यकतानुसार होना चाहिए। * मुख्य एवं सहायक फसल में रोग एवं कीट एक समान नही होना चाहिए। * मुख्य एवं सहायक फसल में पोषक तत्व ग्रहण करने की क्षमता अलग होना चाहिए।

सब्जियों में सामान्य अंतवर्तीय फसलें

मुख्य फसल	सहायक फसल	लाभ
टमाटर	धनिया, पालक, मैथी	साग, जल्दी उपज और आय
मिर्च	प्याज, धनिया, बैंगन	भूमि का पूर्ण उपयोग
गोभी	धनिया, लहसुन, मूली	कीट नियंत्रण में मदद
आलू	मटर, प्याज	मिट्टी की उर्वरता को बढ़ता है
भिण्डी	मूंग, लोबिया	
बैंगन	धनिया, पालक, मेथी	जल्दी उपज और आय
लौकी, तरोई, आदि	मूली, धनिया, पालक	खाली जगह का इस्तमाल
कद्दू	उड़द, मूंग	भूमि को ढकने में मदद करता है

सब्जियों में सामान्य अंतवर्तीय फसलें का अनुपात

मुख्य फसल	अंतवर्तीय फसलें	अनुपात	टिप्पणी
टमाटर	धनिया, पालक, मेथी, लहसुन, प्याज	1:2/1:3	प्याज धूप का उपयोग, लहसुन से कीट से नियंत्रण, आय
मिर्च	प्याज, धनिया, बैंगन	2:1	जल्दी उपज और आय
गोभी	धनिया, लहसुन, मूली	1:2	जल्दी उपज और आय
आलु	मटर, प्याज	2:2/2:1	उपज और आय
भिन्डी	मूंग, लोबिया	1:1/2:1	उपज और आय
बैंगन	धनिया, पालक, मेथी	2:1	जल्दी उपज और आय
लौकी, तरोई, आदि	मूली, धनिया, पालक	1:2	बेल वाली फसलें फैलने से पहले सहायक फसल निकाल जाती है
कद्दु	उड़द, मूंग	1:2	भूमि का उपयोग
आलु	मक्का	1:1/1:2	उपज और आय
आलु	सरसों	3:1	पहले सरसों की एक कतार उसके बाद 3 कतार आलु
आलु	अलसी	3:3/1:3	जल्दी उपज और आय

अंतवर्तीय फसलें के चयन से कीट नियंत्रण

Trap crops (गंधक या प्रलोभक फसलें)- ऐसी फसल जिसे मुख्य फसल के साथ या उसे किनारे पर बोया जाता है ताकि पहले कीट सहायक फसल पर आक्रमण करें और मुख्य फसल को बचाया जा सके। जैसे सरसों को गोभी के साथ लगाना-(सरसों को गोभी की रोपाई के 10-12 दिन पहले लगाएं, हर 25 से 30 मीटर पर सरसों कर 2 कतारें या खेत की चारों ओर सीमांत पर सरसों की 3-4 कतारें लगाएं) या कीट को डायमंड बैक मोथ व ऐफिड से बचाता है।

गेंदे को टमाटर या मिर्च के साथ लगाना -(गेंदें को टमाटर व मिर्च की रोपाई के 15-20 दिन पहले लगाऐ, हर 16 से 20 पक्तियों के बाद गेंदें की 1-2 कतारें या खेत की चारों ओर सींमांत पर गेंदें की 3-4 कतारे लगाऐं या टमाटर व मिर्च की प्रत्येक 3 या 4 पक्ति में गेंदा लगाना)

Barrier Crops (बाधा फसलें)-ऐसी फसल जिसे मुख्य फसल के चारों ओर या किनारों पर इस तरह बोया जाता है कि वह कीटों की उड़ान या हवा के साथ उनके प्रवेश को रोक सके।

बाधा फसल के मुख्य उद्देश्य - कीटों का प्रवेश रोकना, हवा की गति कम करना, रोगों का फैलाव रोकना, लाभकारी कीटों को आवास देना।

मुख्य फसल	बाधा फसलें	उद्देश्य/लाभ
मिर्च/टमाटर	मक्का/ज्वार/मक्का	एफिड, सफेद मक्खी , थ्रीप्स से रोकथाम, लीफ कर्ल वायरस में 60-70% कमी
सब्जियाँ (भिंडी, बैंगन, लौकी)	सूरजमुखी/मक्का	उड़ने वाले कीट की रुकावट
प्याज/लहसुन	ज्वार	प्याज थ्रीप्स से नियंत्रण

* अंतवर्तीय फसलोत्पादन में निगरानी हेतु फेरोमेन ट्रेप और पीली चिपचिपी ट्रेप का उपयोग करना।

अंतवर्तीय फसलें के चयन से रोग नियंत्रण: अंतवर्तीय फसल रोग नियंत्रण में भी महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। यह एक जैविक व प्राकृतिक खेती को भी बढ़ावा देती है।

मुख्य फसल	सह फसलें	उद्देश्य/लाभ	प्रभाव का प्रकार
टमाटर	गेंदा	जड़ गांठ में निमाटोड	Allelopathic & Trap effect
मिर्च	गेंदा	मृदा जनित रोग	Allelopathic & Trap effect
गोभी	सरसों/मेथी	क्लब रुट	Host Avoidance
मूगंफली	बाजरा/अरहर	पती धब्बा रोग	Micro climate improvement
कपास	अरहर/मक्का	बैक्टीरियल ब्लाइट	Soil Health improvement
भिन्डी	सुरजमुखी	वायरस फैलाव को रोकना	
प्याज	गाजर व धनिया	फफूंद रोग	Allelopathic effect

अंतवर्तीय फसल में अपनायी जाने वाली नई तकनीक: कुछ नई तकनीको को किसान भाई अंतवर्तीय फसल में अपनाकर न केवल उत्पादन साथ ही मिट्टी की सेहत, रोग नियंत्रण और आय में भी सुधार कर सकते है।

प्रीसिजिन अंतवर्तीय फसलोत्पादन-इसमें GPS और ड्रोन टेक्नोलॉजी से फसल पंक्तियों की सटीक दूरी और दिशा तय की जाती है। Soil sensors से मिट्टी की नमी और पोषक तत्व की जानकारी ली जाती है। * पट्टी अंतवर्तीय फसल में लेजर लैंड लेवलिंग का प्रयोग। * सेंसर अधारित फर्टिगेशन प्रणाली - यह एक आधुनिक प्रणाली है जिसमें मिट्टी की नमी और पोषक तत्वों की मात्रा और मौसम की स्थिति को सेंसर के माध्यम से नापा जाता है। फर्टिगेशन इकाई में EC और pH सेंसर लगे होते हैं। * बायो-इन्टेंसिव अंतवर्तीय सिसटम (Bio-intensive intercropping system (BIS)-इसमें जैविक खाद, जीवाणु कल्चर और कम्पोस्ट का प्रयोग किया जाता है।

* **क्लाइमेट समार्ट अंतवर्तीय फसल पद्धिति** - इसमें ताप/सुखा प्रतिरोधी किस्मों का चयन कर बदलते मौसम के अनुसार खेती की जाती है। Agro Weather App और AI Based crop planner से समय और फसल संयोजन तय किया जाता है।

* **AI और Mechine Learning आधरित फसल संयोजन** - नई तकनीकों AI tools जैसे IBM Watson Agriculture, Cropin, FAO e-Agriculture tools फसलों की जोड़ी, समय और दूरी की सलाह देते हैं।

अंतवर्तीय फसल एक बहुआयामी, कम लागत और पर्यावरण -अनुकुल कृषि पद्धिति है। यह न केवल उत्पादन बढ़ती है, बल्कि मिट्टी की सेहत, रोग नियंत्रण और किसान की आय में भी सुधार करती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

ग्रीष्म मूँग की वैज्ञानिक तकनीकी से खेती

डॉ. छत्रपाल सिंह पुहुप पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, अंजोरा, दुर्ग (छ.ग.)

परिचय

मूंग ग्रीष्म एवं खरीफ दोनों मौसम की कम समय में पकने वाली फसल है। इसके दाने का उपयोग मुख्य रूप से दाल के लिए किया जाता है। जिसमें 24-26 प्रतिशत प्रोटीन, 50-60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट एवं 1-3 प्रतिशत वसा होता है। दलहनी फसल होने के कारण उसकी जड़ों में गठानें पाई जाती हैं जो कि वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण (38-40 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टेयर) एवं फसल की खेत की से कटाई उपरांत जड़ों एवं पत्तियों के रूप में प्रति हैक्टेयर 1.5 टन जैविक पदार्थ भूमि में छोड़ जाता है जिसमें भूमि में जैविक कार्बन का अनुरक्षण होता है एवं मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाती है। वैज्ञानिकों ने गत वर्षों में पीली चितेरी रोग रोधी प्रजातियों को विकसित करने में सफलता प्राप्त की तथा इन प्रजातियों को हम विभिन्नम फसल चक्र में लगा सकते हैं।

खेत की तैयारी

खरीफ की फसल हेतु एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करना चाहिये। एवं वर्षा प्रारंभ होते ही 2-3 बार देशी हल या कल्टीकवेटर से जुताई कर खरपतवार रहित करने के उपरांत खेत में पाटा चलाकर समतल करें। ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती के लिये रबी फसलों के कटने के तुरंत बाद खेत की तुरंत जुताई कर 4-5 दिन छोड़ कर पलेवा करना चाहिये। पलेवा के बाद 2-3 देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई कर पाटा लगाकर खेत को समतल एवं भुरभुरा बनावें उससे उसमें नमी संरक्षित हो जाती है व बीजों से अच्छा संकुरण मिलता है।

जलवायु

मूंग के लिए नम एवं गर्म जलवायु की आवश्यकता हो?ती है। इसकी खेती वर्षा ऋतु में की जा सकती है। इसकी वृद्धि एवं विकास के लिए 25 डिग्री सैल्सियस तापमान अनुकूल पाया जाता है। मूंग के लिए 75-90 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त पाए गये हैं। पकने के लिए साफ मौसम तथा 60 प्रतिशत आर्द्रता होना चाहिये पकाव के लिए अधिक वर्षा हानिप्रद होती है।

भूमि

मूंग की खेती हेतु दोमट से बलुई दोमट भूमियॉ जिनका पी.एच. 7.0 से 7.5 हो इसके लिए उत्तम है खेत में जल निकास उत्तम होना चाहिए।

बुआई का समय

खरीफ मूंग की बुआई का उपयुक्त समय जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई का प्रथम सप्ताह है। एवं ग्रीष्मकालीन फसल को 15 मार्च तक बोनी कर देना चाहिये। बोनी में विलम्ब होने पर फूल आते समय तापक्रम

वृद्धि के कारण फलियां कम बनती हैं अथवा बनती ही नहीं है। इससे इसकी उपज प्रभावित होती है।

उन्नत किस्में

उन्नत किस्में	उपज (क्विं./है.)	अवधि (दिन)	प्रमुख विशेषता
पैरी मूँग	10-12	90-95	पीली मोजेक सहनशील तथा भभूतिया रोग निरोधक, रबी के लिए उपयुक्त
शिखा		11-12	65-70 मोजेक निरोधी एवं ग्रीष्म हेतु उपयुक्त
टी.जे. एम-3	10-12	60-70	ग्रीष्म एवं खरीफ दोनों के लिए
जवाहर मूंग-721	11-14	70-75	पीली मोजेक एवं पाउडरी मिल्ड्यू रोग सहनशील
के-851	8-10 खरीफ	60-65	ग्रीष्म एवं खरीफ दोनों के लिए ग्रीष्म उपयुक्त
	10-12 ग्रीष्म	70-80	
एनएयू. एम-1	-9	65-70	पीली मोजेक एवं पर्णदाता रोग के प्रति सहनशील
पी. डी. एम-11	10-12	65-75	पीली मोजेक रोग प्रतिरोध
पूसा विशाल	12-14	60-65	पीली मोजेक रोग सहनशील

सिंचाई प्रबंधनः

ग्रीष्म ऋतु में 10-15 दिन के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। मूंग की फसल में फूल आने से पूर्व (30-35 दिन पर) तथा फल्लियों में दाना बनते समय (40-45 दिन पर) सिंचाई अत्यंत आवश्यक है। तापमान एवं भूमि नमी के अनुसार आवश्यकता होने पर अतिरिक?त सिंचाई देवें। फसल पकने के पूर्व 15 दिन पहले सिंचाई बंद कर देना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

फसल एवं खरपतवार प्रतिस्प र्धा की क्रान्तिक अवस्था5 मूंग में प्रथम 30 से 35 दिनों तक रहती है। इसलिए प्रथम निंदाई-गुड़ाई 15 से 20 दिनों पर तथा द्वितीय 35 से 40 दिन पर करना चाहिए। कतारों में बोई गई फसल में व्हील हो नामक यंत्र द्वारा यह कार्य आसानी से किया जा सकता है। नीदा नियंत्रण के लिए नीदानाशक रसायनों का छिड़काव करने से भी खरपतवार का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। रसायनों के छिड़काव के लिए फ्लैटफैन नोजल का ही उपयोग करें।

कीट नियंत्रण

मूंग की फसल में प्रमुख रूप से फ्ली भृंग, हरा फुदका, माहू तथा कम्बकल कीट का प्रकोप होता है। पत्तीं भक्षक कीटों के नियंत्रण हेतु फिनालपास की 1.5 लीटर या मोनोक्रोटोफॉस की 750 मि.ली. तथा हरा फुदका माहू एवं सफेद मक्खीक जैसे रस चूसक कीटों हेतु डायमिथोएट 1000 मि.ली. प्रति 600 लीटर पानी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. एल. प्रति 600 लीटर पानी में 125 मि.ली. दवा के हिसाब से प्रति हैक्टेयर छिड़काव करना लाभप्रद है।

रोग नियंत्रण

मूंग कम समय में तैयार होने वाली दलहन फसल है जिसे फसल चक्र में सम्मिलित करना लाभप्रद रहता है।

मक्का-आलू- गेहूँ (बसंत) ज्वार+ मूंग - गेहूँ, अरहर+मूँग-गेहूँ

मक्का+मूंग - गेहूँ, मूँग-गेहूँ

अरहर की दो कतारों के बीच मूँग की दो कतारें अन्तः फसल के रूप में बोना चाहिए। गन्ने के साथ भी उनकी अन्तोरवर्तीय खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

कटाई एवं गहाई

मूंग की फसल क्रमशः 65-70 दिन में पक जाती है। अर्थात् जुलाई में बोई गई फसल सितम्बर तथा अक्टूबर के प्रथम सप्तातह तक कट जाती है। फरवरी-मार्च में बोई गई फसल मई में तैयार हो जाती है। फलियां पक कर हल्केप भूरे रंग से काला रंग होते ही 2-3 बार में करें एवं बाद में फसल को पौधे के साथ काट लें। अपरिपक्वोवस्था में फलियों की कटाई करने से दानों की उपज एवं गुणवत्ता दोनो खराब हो जाते है। हँसिए से काटकर खेत में एक दिन सुखाने के उपरांत खलियान में लाकर सुखाते हैं। सुखाने के उपरांत डंडे से पीट कर या बैलों को चलाकर दाना अलग कर देते हैं। वर्तमान में मूँग एवं उड़द की थ्रेसिंग हेतु थ्रेसर का उपयोग कर गहाई कार्य किया जा सकता है।

उपज एवं भण्डारण

मूँग की खेती उन्नात तरीके से करने पर 8-10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर औसत उपज प्राप्त की जा सकती है। मिश्रित फसल में 3-5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकतीा है। भण्डासरण करने से पूर्व दोनों को अच्छी तरह धूप में सुखाने के उपरांत ही जब उसमें नमी की मात्रा 8-10 प्रतिशत रहे तभी वह भण्डारंण के लिए योग्य रहती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग और टिशू कल्चर

डॉ. सुमन रावटे (वैज्ञानिक)
डॉ. ज़ेनू झा (समन्वयक) कृषि-औद्योगिक जैव प्रौद्योगिकी में उत्कृष्टता केंद्र (सीओई-एआईबी)
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

टिशू कल्चर तकनीक आधुनिक कृषि विज्ञान की एक ऐसी विधि है, जो पौधों की संख्या बढ़ाने के साथ-साथ उनकी गुणवत्ता को भी सुनिश्चित करती है। नियंत्रित वातावरण में विकसित किए गए पौधे रोगमुक्त, समान आनुवंशिक संरचना वाले और पूरी तरह रसायन मुक्त होते हैं। इस प्रक्रिया में किसी भी प्रकार के रासायनिक कीटनाशक या उर्वरक का प्रयोग नहीं किया जाता, जिससे किसानों को स्वच्छ पौध सामग्री उपलब्ध होती है। यह तकनीक जैविक खेती के लिए आवश्यक आधार प्रदान करती है और किसानों को सुरक्षित उत्पादन की दिशा में आगे बढ़ने का अवसर देती है।

जैविक खेती की सफलता का मूल आधार "स्वच्छ बीज" है, जिसे टिशू कल्चर तकनीक सहजता से उपलब्ध कराती है। रोगमुक्त और शुद्ध पौध सामग्री से उत्पादन अधिक स्थिर और टिकाऊ होता है, जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है और उपभोक्ताओं को स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद मिलते हैं। साथ ही, यह तकनीक पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान देती है क्योंकि रसायनों का प्रयोग न होने से मिट्टी, जल और जैव विविधता सुरक्षित रहती है। इस प्रकार, टिशू कल्चर तकनीक केवल पौध उत्पादन की विधि नहीं, बल्कि सतत् और जैविक कृषि की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।

प्रमुख लाभ

* **रोगमुक्त पौध सामग्री:** टिशू कल्चर से तैयार पौधे वायरस, बैक्टीरिया और फफूंद से मुक्त होते हैं। इससे किसानों को जैविक खेती अपनाने में आत्मविश्वास मिलता है।
* **समानता और शुद्धता:** सभी पौधों की आनुवंशिक संरचना समान होने से उत्पादन स्थिर रहता है और गुणवत्ता में भिन्नता नहीं आती।
* **स्वच्छ बीज की उपलब्धता:** जैविक खेती का आधार "स्वच्छ बीज" है। टिशू कल्चर इस आवश्यकता को पूरा करता है और किसानों को भरोसेमंद पौध सामग्री प्रदान करता है।
* **दीर्घकालिक टिकाऊपन:** रसायन मुक्त पौध सामग्री मिट्टी और पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित होती है, जिससे दीर्घकालिक टिकाऊ कृषि संभव होती है।

पर्यावरणीय लाभ

टिशू कल्चर आधारित पौध सामग्री का उपयोग करने से पर्यावरण पर अनेक सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। रसायनों के प्रयोग में कमी आने से मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता बनी रहती है और उसमें मौजूद सूक्ष्मजीवों का संतुलन सुरक्षित रहता है। यही नहीं, जल स्रोतों में रासायनिक प्रदूषण घटने से पानी की गुणवत्ता भी संरक्षित रहती है, जो मानव और पशु स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त, टिशू कल्चर से उत्पन्न पौध सामग्री जैव विविधता को संरक्षित करने में मदद करती है क्योंकि प्राकृतिक परागण और कीट-पतंगों का जीवन चक्र प्रभावित नहीं होता। साथ ही, रसायन मुक्त खेती से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी आती है, जिससे जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने में सहयोग मिलता है। इस प्रकार, यह तकनीक न केवल किसानों और उपभोक्ताओं के लिए लाभकारी है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और सतत् विकास की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है।

उपभोक्ता की बढ़ती मांग

आज के समय में उपभोक्ता पहले से कहीं अधिक स्वास्थ्य और पर्यावरण के प्रति सजग हो गए हैं। वे यह समझने लगे हैं कि रसायनों से युक्त खाद्य पदार्थ न केवल उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, बल्कि पर्यावरण पर भी नकारात्मक असर डालते हैं। इसी कारण रसायन मुक्त और जैविक उत्पादों की मांग लगातार बढ़ रही है। उपभोक्ता अब ऐसे विकल्प तलाश रहे हैं जो सुरक्षित हों, पोषण से भरपूर हों और पर्यावरण हितैषी भी हों।

शहरी क्षेत्रों में "ऑर्गेनिक मार्केट" और "फार्म टू टेबल" जैसी अवधारणाएँ तेजी से लोकप्रिय हो रही हैं। इन बाजारों में उपभोक्ता सीधे किसानों से जुड़कर ताज़ा और जैविक उत्पाद खरीदना पसंद करते हैं। यह प्रवृत्ति न केवल उपभोक्ताओं को स्वास्थ्यवर्धक विकल्प देती है, बल्कि किसानों को भी बेहतर मूल्य और स्थायी आय का अवसर प्रदान करती है। टिशू कल्चर से उत्पन्न पौध सामग्री इस बढ़ती मांग को पूरा करने में अहम भूमिका निभाती है, क्योंकि यह रोगमुक्त, शुद्ध और रसायन रहित पौधों की उपलब्धता सुनिश्चित करती है। परिणामस्वरूप, किसान जैविक खेती की ओर बढ़ते हैं और उपभोक्ताओं को उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप उत्पाद मिलते हैं। इस प्रकार, टिशू कल्चर तकनीक किसानों और उपभोक्ताओं के बीच एक सेतु का कार्य करती है, जो स्वस्थ समाज और सतत् कृषि की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

निष्कर्ष

टिशू कल्चर तकनीक केवल प्रयोगशाला की दीवारों तक सीमित वैज्ञानिक उपलब्धि नहीं है, बल्कि यह जैविक खेती की ओर क्रांति का द्वार है। यह किसानों को ऐसी पौध सामग्री प्रदान करती है जो पूरी तरह रसायन मुक्त होती है, जिससे खेतों की मिट्टी सुरक्षित रहती है, पर्यावरण संरक्षित होता है और उपभोक्ताओं को वही मिलता है जिसकी वे अपेक्षा करते हैं–स्वच्छ, पोषक और भरोसेमंद उत्पाद।

आने वाले समय में यह तकनीक कृषि उत्पादन की गुणवत्ता को नई ऊँचाइयों तक ले जाएगी। यह न केवल किसानों की आय और उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य को सुदृढ़ करेगी, बल्कि सतत् विकास और स्वस्थ समाज की नींव भी मजबूत करेगी। टिशू कल्चर को अपनाना वास्तव में ÷स्वच्छ पौधे, सुरक्षित भविष्य÷ की ओर बढ़ाया गया एक निर्णायक कदम है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

कृषि विस्तार सेवाएं: खेत और प्रयोगशाला के बीच की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी

विकाश सोनकर, प्रखर राय, अतुल पासवान
सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह (सहायक प्रोफेसर) कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

भारतीय कृषि में ज्ञान की कभी कमी नहीं रही। नई किस्में, उन्नत तकनीकें, मृदा और जल प्रबंधन के उपाय, कीट और रोग नियंत्रण की वैज्ञानिक पद्धतियाँ - ये सब प्रयोगशालाओं और अनुसंधान केंद्रों में लगातार विकसित होती रही हैं। इसके बावजूद खेतों में अक्सर यह प्रश्न उठता है कि यदि ज्ञान उपलब्ध है, तो खेती में बदलाव इतना धीमा क्यों है?

इस प्रश्न का उत्तर कृषि विस्तार सेवाओं में छिपा है। कृषि विस्तार सेवाएँ वही कड़ी हैं जो वैज्ञानिक ज्ञान को किसान की ज़मीन से जोड़ती हैं। यदि यह कड़ी मज़बूत होती है, तो शोध खेत तक पहुँचता है। यदि यह कमज़ोर होती है, तो सबसे उपयोगी तकनीक भी किसान से दूर रह जाती है।

कृषि विस्तार सेवाओं की मूल अवधारणा

कृषि विस्तार सेवाओं को केवल सलाह या प्रशिक्षण तक सीमित कर देना इसकी भूमिका को कम करके देखना है। वास्तव में यह एक सतत प्रक्रिया है, जिसमें ज्ञान का आदान-प्रदान होता है।वैज्ञानिक अपने अनुसंधान के निष्कर्ष देते हैं, किसान अपने अनुभव साझा करता है, और विस्तार कर्मी दोनों के बीच संवाद स्थापित करता है। यही संवाद कृषि विकास की दिशा तय करता है।अनुसंधानों में यह पाया गया है कि जिन क्षेत्रों में विस्तार सेवाएँ सक्रिय और नियमित रही हैं, वहाँ नई तकनीकों को अपनाने की दर कहीं अधिक रही है और खेती में जोखिम अपेक्षाकृत कम हुआ है।

किसान-केंद्रित दृष्टिकोण क्यों आवश्यक है

खेती प्रयोगशाला की तरह नियंत्रित वातावरण में नहीं होती। खेत की मिट्टी, पानी, मौसम और किसान की आर्थिक स्थिति - सब अलग-अलग होती है।इसीलिए किसान-केंद्रित दृष्टिकोण कृषि विस्तार की आत्मा है। विस्तार सेवाएँ तभी प्रभावी होती हैं जब वे यह समझें कि किसान क्या कर सकता है, कितना जोखिम उठा सकता है और किस समय पर परिवर्तन उसके लिए व्यावहारिक है।जब किसान को उसकी ही परिस्थितियों के अनुसार समाधान मिलता है, तभी वह नई पद्धति को अपनाने के लिए तैयार होता है।

प्रदर्शन और अनुभव का महत्व

खेती में बदलाव काग़ज़ से नहीं, खेत से आता है।जब किसान अपने या पड़ोसी के खेत में किसी तकनीक का परिणाम देखता है, तभी वह उस पर विश्वास करता है। यही कारण है कि प्रदर्शन खेत, किसान मेलों और प्रत्यक्ष संवाद का महत्व आज भी बना हुआ है।अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष प्रदर्शन के माध्यम से दी गई जानकारी, केवल लिखित या मौखिक जानकारी की तुलना में कई गुना अधिक प्रभावी होती है।

कृषि विस्तार और शोध के बीच दोतरफा संबंध

अक्सर यह माना जाता है कि विस्तार सेवाएँ केवल शोध को खेत तक पहुँचाती हैं। वास्तविकता यह है कि यह प्रक्रिया दोतरफा है।किसान की समस्याएँ, उसकी असफलताएँ और उसके अनुभव ही आगे के अनुसंधान की दिशा तय करते हैं। जब ये अनुभव व्यवस्थित रूप से वैज्ञानिकों तक पहुँचते हैं, तभी अनुसंधान ज़मीनी ज़रूरतों के अनुरूप बनता है।इस दृष्टि से कृषि विस्तार सेवाएँ केवल जानकारी पहुँचाने वाली नहीं, बल्कि अनुसंधान को दिशा देने वाली व्यवस्था भी हैं।

नीति स्तर पर कृषि विस्तार की भूमिका

कृषि से जुड़ी नीतियाँ तभी प्रभावी होती हैं जब वे खेत तक पहुँचें। चाहे मृदा स्वास्थ्य, जल संरक्षण, फसल विविधीकरण या जोखिम प्रबंधन की योजनाएँ हों- इन सबकी सफलता कृषि विस्तार सेवाओं पर निर्भर करती है।नीति निर्माण में यह समझ आवश्यक है कि केवल योजनाएँ बनाना पर्याप्त नहीं है। उनके क्रियान्वयन के लिए मज़बूत विस्तार ढाँचा, प्रशिक्षित कर्मी और स्थानीय आवश्यकताओं की समझ अनिवार्य है।

कृषि शिक्षा और विस्तार का संबंध

कृषि शिक्षा का उद्देश्य केवल डिग्री देना नहीं, बल्कि ज़मीन से जुड़े पेशेवर तैयार करना है। यदि कृषि शिक्षा और विस्तार सेवाओं के बीच तालमेल मज़बूत हो, तो विद्यार्थी प्रयोगशाला के साथ-साथ खेत की वास्तविकताओं को भी समझ पाते हैं।यह तालमेल भविष्य के वैज्ञानिकों और विस्तार कर्मियों को अधिक संवेदनशील और व्यावहारिक बनाता है।

बदलते समय में विस्तार सेवाओं की नई ज़रूरतें

आज खेती केवल उत्पादन की चुनौती नहीं है। मौसम की अनिश्चितता, जल संकट, बाज़ार उतार-चढ़ाव और लागत में वृद्धि- ये सब किसान के सामने नई चुनौतियाँ हैं।इन परिस्थितियों में कृषि विस्तार सेवाओं को भी अपनी भूमिका का विस्तार करना होगा। अब केवल फसल तकनीक नहीं, बल्कि समग्र मार्गदर्शन आवश्यक है।जहाँ विस्तार सेवाएँ इस दिशा में आगे बढ़ीं, वहाँ किसान अधिक आत्मविश्वास के साथ निर्णय लेते दिखाई दिए।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ

यह सच है कि कृषि विस्तार सेवाएँ आज कई चुनौतियों का सामना कर रही हैं - सीमित संसाधन, बढ़ती अपेक्षाएँ और व्यापक कार्यक्षेत्र।लेकिन इन्हीं चुनौतियों में संभावनाएँ भी छिपी हैं। स्थानीय ज्ञान, किसान समूह और सामूहिक प्रयास विस्तार सेवाओं को अधिक प्रभावी बना सकते हैं।अनुभव बताता है कि गुणवत्ता, निरंतरता और विश्वास ङ्क ये तीन तत्व विस्तार सेवाओं की सफलता की कुंजी हैं।

निष्कर्ष

कृषि विकास का भविष्य केवल नई तकनीकों पर निर्भर नहीं है, बल्कि इस पर निर्भर है कि वह तकनीक खेत तक कैसे और कितनी प्रभावी ढंग से पहुँचती है।कृषि विस्तार सेवाएँ खेत और प्रयोगशाला के बीच वही सेतु हैं, जिन पर चलकर ज्ञान व्यवहार बनता है।यदि इस सेतु को मज़बूत किया जाए, तो भारतीय कृषि न केवल उत्पादक बनेगी, बल्कि स्थिर, समावेशी और आत्मनिर्भर भी बनेगी।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

माइक्रोग्रीन्स : पोषण से भरपूर सुपरफूड

श्वेता वर्मा शोध छात्रा, (सब्जी विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

आस्तिक झा सहायक प्राध्यापक, (सब्जी विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौ. वि.वि. कुमारगंज, अयोध्या

आयुष वर्मा एम.एससी. (फल विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

निहारिका सिंह शोध छात्रा, (सब्जी विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

परिचय: माइक्रोग्रीन्स छोटे, कोमल और पोषक तत्वों से भरपूर पौधों के अंकुर होते हैं, जो विभिन्न सब्जियों, जड़ी-बूटियों और अनाजों के बीजों से उगाए जाते हैं। ये अंकुर 7 से 21 दिनों में तैयार होते हैं और इनमें विटामिन C, E, K, आयरन, मैग्नीशियम और एंटीऑक्सीडेंट्स की उच्च मात्रा होती है। इनका स्वाद हल्का तीखा या मीठा हो सकता है, जो इन्हें सलाद, सैंडविच, स्मूदी और अन्य व्यंजनों में स्वाद और पोषण बढ़ाने के लिए आदर्श बनाता है।

माइक्रोग्रीन्स उगाने का तरीका: माइक्रोग्रीन्स को घर पर आसानी से सीडलिंग ट्रे या कम गहराई वाले गमलो में आसानी से उगाया जा सकता है।

1. **माइक्रोग्रीन्स उगाने के लिए सही बीज का चुनाव:** माइक्रोग्रीन्स उगाने के लिए सही बीज चुनना बहुत महत्वपूर्ण है। विभिन्न हर्ब्स, सब्जियां और अनाज जैसे ब्रोकली, मूली, मेथी, सरसों, धनिया, गेहूं और सूरजमुखी के बीज बेहतरीन विकल्प हैं। ऑर्गेनिक और रासायनिक-मुक्त बीज खरीदना अच्छा रहता है, ताकि फसल शुद्ध और सेहतमंद हो। बीज लगाने से पहले उन्हें कुछ घंटों तक पानी में भिगोना फायदेमंद होता है, क्योंकि यह अंकुरण की प्रक्रिया को तेज कर देता है।

2. **मिट्टी या कोकोपीट में बीज बोएं:** माइक्रोग्रीन्स की खेती के लिए जैविक मिट्टी, कोकोपीट, वर्मीकंपोस्ट या हाइड्रोपोनिक्स के तरीके का उपयोग किया जा सकता है। कोकोपीट और पॉटिंग मिक्स हल्की और पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं, जिससे माइक्रोग्रीन्स तेजी से विकसित होते हैं। यदि मिट्टी का इस्तेमाल करते हैं, तो वह उच्च गुणवत्ता की हो और उसमें किसी प्रकार के रासायनिक तत्व न हो। मिट्टी या कोकोपीट को एक ट्रे या गमले में समान रूप से फैलाएं जाते हैं, ताकि बीजों को उचित मात्रा में ऑक्सीजन और नमी मिल सके।

3. **बीज बोने की विधि:** बीज बोने से पहले ग्रोइंग मीडियम को हल्का गीला किया जाता है। फिर बीजों को सतह पर समान रूप से फैलाया जाता है । बीजों को घना या बहुत दूर-दूर बोने से उचित वृद्धि नहीं हो पाती है। बीज बोने के बाद उन पर हल्की मिट्टी या कोकोपीट की परत डालें और स्प्रे बोतल से पानी छिड़कें। शुरुआती दिनों में ट्रे को ढककर रखा जाता है। ताकि नमी बनी रहे और अंकुरित होने की प्रक्रिया तेज हो सके।

4. **नमी बनाए रखना और सिंचाई:** बीजों को बोने के बाद रोजाना हल्की स्प्रे बोतल से पानी देना चाहिए। ग्रोइंग ट्रे को अच्छी वेंटिलेशन वाली जगह पर रखना चाहिए। ज्यादा नमी से जड़ें गल सकती हैं, जबकि कम नमी से पौधे सूख सकते हैं। दिन में दो बार हल्के पानी का छिड़काव, विशेषकर गर्म मौसम में बेहतर होता है।

5. **पर्याप्त रोशनी और तापमान:** माइक्रोग्रीन्स को छायादार और रोशनी वाले स्थान पर रखना चाहिए। इनडायरेक्ट धूप या एलईडी ग्रो लाइट का उपयोग भी किया जाता हैं। तापमान 18-24 डिग्री सेल्सियस के बीच उचित माना जाता है, क्योंकि अत्यधिक गर्मी या ठंड उनकी वृद्धि को प्रभावित कर सकती है। यदि रोशनी कम होगी, तो पौधे लंबे और कमजोर हो सकते हैं। सही प्रकाश और तापमान से माइक्रोग्रीन्स का रंग, स्वाद और पोषण स्तर उच्च बना रहता है।

6. **कटाई का सही समय और तरीका :** माइक्रोग्रीन्स आमतौर पर 7-14 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। उन्हें तब काट जाता है। जब पहले दो पत्ते (कोटिलेडन) विकसित हो जाते हैं, और पौधे लगभग 2-3 इंच लंबे हो जाते हैं । मिट्टी या कोकोपीट से थोड़ा ऊपर से काटें जाते हैं, जड़ों के पास से नहीं काटें जाते हैं। कटाई के लिए तेज और साफ कैंची उपयोग किया जाता है

7. **माइक्रोग्रीन्स को स्टोर करना और उपयोग:** कटाई के बाद माइक्रोग्रीन्स की ताजगी बनाए रखने के लिए सही तरीके से संग्रहित करना आवश्यक है ताकि उनकी ताजगी बनी रहे। इन्हें धोकर हल्का सुखाने के बाद पेपर टॉवल में लपेटकर एयरटाइट कंटेनर में रख कर फ्रिज में स्टोर किया जाता है। माइक्रोग्रीन्स को 5-7 दिनों तक ताजा रखा जा सकता है। इन्हें सलाद, सूप, सैंडविच, स्मूदी और जूस में मिलाकर खाया जा सकता है। इन्हें पकाने की बजाय कच्चा खाना ज्यादा फायदेमंद होता है, क्योंकि अधिक गर्मी से उनके पोषक तत्व नष्ट हो सकते हैं।

माइक्रोग्रीन्स उगाने में आ रही समस्याएं और समाधान: माइक्रोग्रीन्स उगाने के दौरान कई समस्याएं आ सकती हैं, जैसे फफूंद, अत्यधिक नमी, धीमा अंकुरण या पीले पत्ते। फफूंद से बचने के लिए अच्छी वेंटिलेशन और नियंत्रित नमी बनाए रखना आवश्यक है। यदि अंकुरण धीमा हो रहा है, तो बीजों को बोने से पहले कुछ घंटों के लिए पानी में भिगोना चाहिए। अत्यधिक पानी देने से जड़ें सड़ सकती हैं, इसलिए पानी देने का सही संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। यदि पत्ते पीले हो रहे हैं, तो माइक्रोग्रीन्स को अधिक रोशनी देना चाहिए।

पोषण संबंधी लाभों में शामिल हैं-

विटामिन और खनिज: माइक्रोग्रीन्स में विटामिन A, C, E, और K के साथ-साथ कैल्शियम, मैग्नीशियम, और आयरन की उच्च मात्रा होती है।

एंटीऑक्सीडेंट: इनमें एंटीऑक्सीडेंट्स की अच्छी मात्रा होती है, जो शारीरिक क्षति से कोशिकाओं की रक्षा करते हैं।

कम कैलोरी: ये कम कैलोरी वाले होते हैं और वजन प्रबंधन में मदद करते हैं।

फाइबर: माइक्रोग्रीन्स में फाइबर होता है, जो पाचन में सहायक है।

स्वास्थ्य लाभ: ये हृदय स्वास्थ्य, प्रतिरक्षा प्रणाली, और सूजन को कम करने में मदद कर सकते हैं।

निष्कर्ष: माइक्रोग्रीन्स एक पोषण से भरपूर सुपरफूड हैं, जो कम समय और कम जगह में उगाए जा सकते हैं। इनमें विटामिन, मिनरल्स और एंटीऑक्सीडेंट्स की अधिक मात्रा होती है। माइक्रोग्रीन्स को घर पर आसानी से उगाया जा सकता है, जिससे ताजगी और पोषण बना रहता है। यदि सही विधि अपनाई जाए, तो यह न केवल सेहत के लिए फायदेमंद होता है, बल्कि ऑर्गेनिक और सुरक्षित भोजन का एक बढ़िया स्रोत भी बन सकता है।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885
मै. माँ उर्वरक केन्द्र

अमित राय
रसायनिक एवं
जैविक खाद बीज
एवं दवाई के विक्रेता

पता: भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

वैज्ञानिक नैतिकता को मजबूत करने और कृषि विज्ञान को आगे बढ़ाने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

शाडिण्जय सिंह, सुचिस्मिता साहू (शोध छात्र)
कृषि प्रसार शिक्षा विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

अगंतिका गुप्ता शोध छात्रा कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय मेरठ

स्नेहा सिंह सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शामली (उ.प्र.)

सारांश: कृत्रिम बुद्धिमत्ता आज विज्ञान और कृषि दोनों क्षेत्रों में नवाचार का एक महत्वपूर्ण आधार बनकर उभर रही है। वैज्ञानिक अनुसंधान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता न केवल डेटा की गुणवत्ता बढ़ाकर नैतिक मानकों को सुदृढ़ करता है, बल्कि शोध में होने वाले संभावित दुरुपयोग, त्रुटियों और अनैतिक प्रथाओं को भी नियंत्रित करता है। दूसरी ओर, कृषि विज्ञान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका स्मार्ट खेती, रोग प्रबंधन, संसाधनों के कुशल उपयोग और उत्पादकता बढ़ाने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई है। यह लेख वैज्ञानिक नैतिकता को बढ़ाने और कृषि विज्ञान को आधुनिक, सतत और तकनीकी रूप से सशक्त बनाने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की बहुआयामी भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

परिचय: कृत्रिम बुद्धिमत्ता 21वीं सदी के वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की प्रमुख शक्ति बन चुकी है। विज्ञान में नैतिकता का महत्व किसी भी शोध की विश्वसनीयता और उसकी सामाजिक उपयोगिता को निर्धारित करता है, वहीं कृषि विज्ञान मानव समाज की खाद्य और पोषण सुरक्षा से सीधा संबंध रखता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के आगमन ने इन दोनों क्षेत्रों के कामकाज, अनुसंधान पद्धतियों और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं को अत्यधिक बदल दिया है। वैज्ञानिक अनुसंधान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग डेटा विश्लेषण, साहित्य समीक्षा, त्रुटि पहचान, और नैतिक उल्लंघनों की पहचान जैसी गतिविधियों में बढ़ रहा है। इससे वैज्ञानिक समुदाय में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को मजबूती मिली है।

कृषि क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकों– जैसे ड्रोन, मशीन लर्निंग मॉडल, स्मार्ट सेंसर, रोबोटिक मशीनरी और निर्णय-सहायक प्रणालियाँ ,किसानों को जलवायु परिवर्तन से निपटने, उत्पादकता बढ़ाने और संसाधनों के बेहतर प्रबंधन में मदद कर रही हैं। इस प्रकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता विज्ञान और कृषि दोनों में दक्षता, गुणवत्ता और नैतिकता सुनिश्चित करने का महत्वपूर्ण साधन बन गया है।

वैज्ञानिक नैतिकता को मजबूत करने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

डेटा की सटीकता और पारदर्शिता: वैज्ञानिक शोध की सफलता विश्वसनीय डेटा पर निर्भर करती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित एल्गोरिदम बड़े डेटा सेट का विश्लेषण करके

* नकली डेटा * पक्षपातपूर्ण डेटा तथा असंगत परिणामों की पहचान कर सकते हैं। इससे शोध प्रक्रिया अधिक पारदर्शी और सत्यापनीय बनती है।

नैतिक उल्लंघनों की रोकथाम: कृत्रिम बुद्धिमत्ता उन नैतिक उल्लंघनों को रोक सकता है जो कभी-कभी शोध में अनजाने में या जानबूझकर होते हैं। उदाहरण:

* कॉपी किए गए पाठ की पहचान करते हैं। * इमेज एनालिसिस एल्गोरिदम शोध चित्रों में हेरफेर को पकड़ते हैं।

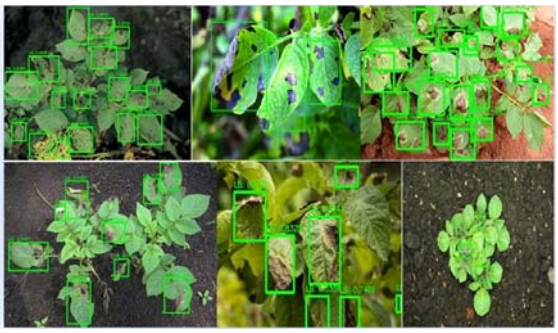

* मशीन लर्निंग मॉडल संदेहास्पद पैटर्न देखकर संभावित धोखाधड़ी की चेतावनी दे सकते हैं।

यह वैज्ञानिक समुदाय में ईमानदारी और गुणवत्ता को बढ़ावा देता है।

नैतिक दिशा निर्देशों के स्वचालित अनुपालन: कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रणालियाँ अनुसंधान के दौरान

* संस्थागत नैतिक दिशानिर्देश
* जैव सुरक्षा नियम
* मानव/पशु विषयों से जुड़े नैतिक मानक का पालन सुनिश्चित करने में मदद करती हैं। इससे शोध अधिक सुरक्षित और जिम्मेदार बनता है।

वस्तुनिष्ठता और निर्णय समर्थन: कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानवीय पूर्वाग्रहों को कम करने में सक्षम है। यह शोधकर्ताओं को निष्पक्ष निर्णय लेने में सहायता करता है, जैसे-

* डेटा विश्लेषण
* सहकर्मी समीक्षा
* वैज्ञानिक मूल्यांकन जिससे शोध की वैधता और विश्वसनीयता बढ़ती है।

कृषि विज्ञान को आगे बढ़ाने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

स्मार्ट खेती का विकास: कृत्रिम बुद्धिमत्ता संचालित सेंसर, सैटेलाइट इमेजरी और ड्रोन फसलों की वास्तविक समय स्थिति बताते हैं, जिनसे किसान–

* मिट्टी की गुणवत्ता
* नमी का स्तर
* पोषक तत्वों की कमी
* कीट एवं रोग की पहचान कर सकते हैं। यह जानकारी बेहतर खेती प्रबंधन में मदद करती है।

फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए पूर्वानुमान मॉडल

कृत्रिम बुद्धिमत्ता भविष्यवाणी कर सकता है कि

* कौन सी फसल कहाँ सबसे उपयुक्त है
* किस क्षेत्र में कितना जल या उर्वरक चाहिए
* मौसम के आधार पर फसल को कौन-सा जोखिम है इससे उत्पादन बढ़ता है और नुकसान कम होता है।

रोग और कीट प्रबंधन: कृत्रिम बुद्धिमत्ता सिस्टम पत्तियों की तस्वीर देखकर रोगों की पहचान कर सकते हैं, जिससे

* समय रहते उपचार
* दवाओं का वैज्ञानिक उपयोग
* पर्यावरणीय प्रभाव में कमी संभव होती है।

स्वचालित और रोबोटिक कृषि मशीनरी

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित रोबोट: बुवाई, सिंचाई, निराई, कटाई जैसे कार्यों को तेज और सटीक रूप से करते हैं। इससे कृषि लागत घटती है और उत्पादकता बढ़ती है।

जलवायु-स्मार्ट कृषि

कृत्रिम बुद्धिमत्ता जलवायु परिवर्तन से जुड़े खतरों का मूल्यांकन करके किसानों को समाधान देता है, जैसे– * सूखा/बाढ़ का पूर्वानुमान * जल प्रबंधन योजनाएँ * जलवायु अनुकूल फसलें

यह कृषि को सतत और भविष्य-उन्मुख बनाता है।

निष्कर्ष

कृत्रिम बुद्धिमत्ता विज्ञान और कृषि दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला रही है। वैज्ञानिक नैतिकता के संदर्भ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता शोध कार्यों को अधिक सटीक, पारदर्शी और उत्तरदायी बनाता है। यह नैतिक उल्लंघनों को रोकता है और अनुसंधान की गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। दूसरी ओर, कृषि विज्ञान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता किसान को आधुनिक, तकनीकी और डेटा-आधारित खेती का विकल्प प्रदान करता है। इससे न केवल उत्पादकता बढ़ती है, बल्कि संसाधनों का संरक्षण और पर्यावरणीय संतुलन भी बनाए रखा जा सकता है। इस प्रकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता वैज्ञानिक नैतिकता और कृषि विज्ञान दोनों को सुरक्षित, कुशल और सतत भविष्य की ओर अग्रसर करता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

कम ज़मीन, अधिक मूल्य : खेती की सोच में हो रहा मौन परिवर्तन

राम राज यादव (फल विज्ञान विभाग)
दिशांत यादव (सब्जी विज्ञान विभाग)
प्रखर राय (शोध छात्र), सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. लवकुश पाण्डेय, डॉ. ललित कुमार सनोदिया
सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

भूमिका

भारत की खेती लंबे समय तक अधिक उत्पादन की अवधारणा पर आधारित रही है। हरित क्रांति के बाद मुख्य उद्देश्य यह था कि सीमित समय में अधिक से अधिक अनाज पैदा किया जाए ताकि देश की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। इस दृष्टिकोण ने अपने समय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन बदलते सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय परिदृश्य में इसकी सीमाएँ स्पष्ट होती जा रही हैं।आज खेती केवल पेट भरने का साधन नहीं रही, बल्कि यह आय, पोषण, पर्यावरण संतुलन और जीवन गुणवत्ता से जुड़ी हुई है। भूमि जोत का आकार लगातार घट रहा है, इनपुट लागत बढ़ रही है और प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव लगातार बढ़ता जा रहा है। ऐसे समय में खेती की सोच में एक गहरा लेकिन शांत परिवर्तन हो रहा है, जिसमें लक्ष्य अधिक मात्रा नहीं, बल्कि अधिक मूल्य बनता जा रहा है।

भूमि यथार्थ

भारत में अधिकांश किसान छोटे और सीमांत वर्ग से आते हैं। भूमि का बँटवारा पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहा है, जिसके कारण औसत जोत आकार लगातार कम होता गया। सीमित भूमि पर पारंपरिक तरीकों से केवल उत्पादन बढ़ाने की रणनीति अब व्यवहारिक नहीं रह गई है।यह यथार्थ किसान को मजबूर करता है कि वह अपनी भूमि को केवल क्षेत्रफल के रूप में न देखे, बल्कि उसकी उत्पादन क्षमता और आर्थिक संभावनाओं को समझे। यही वह बिंदु है जहाँ खेती की सोच बदलनी शुरू होती है।उत्पादन सीमाअधिक उत्पादन की दौड़ में खेती ने कई समस्याएँ भी पैदा की हैं। अधिक रासायनिक उर्वरकों का उपयोग, अत्यधिक सिंचाई और एक ही फसल पर निर्भरता ने मिट्टी की उर्वरता और जैविक संतुलन को प्रभावित किया है। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि केवल मात्रा बढ़ाकर किसान की आय में स्थायी वृद्धि नहीं की जा सकती। उत्पादन की एक सीमा होती है, लेकिन मूल्य बढ़ाने की संभावनाएँ कहीं अधिक व्यापक होती हैं।

मूल्य अवधारणा

मूल्य आधारित खेती का अर्थ केवल अधिक दाम प्राप्त करना नहीं है। इसका अर्थ है ऐसा उत्पादन जो गुणवत्ता, पोषण, उपभोक्ता की आवश्यकता और बाज़ार की माँग के अनुरूप हो। आज उपभोक्ता केवल अनाज नहीं, बल्कि सुरक्षित, पोषक और आकर्षक उत्पाद चाहता है। यह सोच खेत तक धीरे धीरे पहुँच रही है। किसान अब यह समझने लगा है कि क्या उगाना है, कब उगाना है और किस स्तर की गुणवत्ता पर उगाना है।

गुणवत्ता दृष्टि

गुणवत्ता अब खेती का एक केंद्रीय तत्व बनती जा रही है।

आकार, रंग, स्वाद, भंडारण क्षमता और पोषण मूल्य जैसे कारक अब उत्पादन निर्णयों को प्रभावित कर रहे हैं।यह परिवर्तन अचानक नहीं आया है। शहरीकरण, आय में वृद्धि और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता ने इस सोच को जन्म दिया है। गुणवत्ता पर केंद्रित उत्पादन सीमित भूमि पर भी अधिक आय की संभावना पैदा करता है।

पौधा समझ

खेती की नई सोच पौधे को केंद्र में रखती है। पौधे की वृद्धि, विकास और आवश्यकताओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझना अब अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।जड़ विकास, पोषण अवशोषण, जल की उपलब्धता और पर्यावरणीय कारकों का प्रभाव अब केवल सैद्धांतिक विषय नहीं रहे। ये सभी तत्व प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन की गुणवत्ता और मूल्य को प्रभावित करते हैं।

सूक्ष्म प्रबंधन

एक ही खेत के भीतर भी मिट्टी, नमी और पौधों की वृद्धि में अंतर होता है। आधुनिक खेती इस अंतर को पहचानने और उसके अनुसार प्रबंधन करने की दिशा में बढ़ रही है।सूक्ष्म स्तर पर लिया गया निर्णय संसाधनों के बेहतर उपयोग और उत्पादन की स्थिरता को सुनिश्चित करता है। यह दृष्टिकोण सीमित भूमि पर अधिक मूल्य सृजन की कुंजी बनता जा रहा है।

इनपुट संतुलन

खेती में लंबे समय तक यह धारणा रही कि अधिक इनपुट का अर्थ बेहतर उत्पादन है। लेकिन अनुभव और शोध बताते हैं कि असंतुलित इनपुट उपयोग लागत बढ़ाता है और संसाधनों को क्षति पहुँचाता है।नई सोच में सही समय पर सही मात्रा का सिद्धांत प्रमुख बनता जा रहा है। यह दृष्टिकोण न केवल लागत घटाता है, बल्कि उत्पादन की गुणवत्ता को भी बेहतर बनाता है

बाज़ार समझ

खेती अब खेत पर समाप्त नहीं होती। उत्पादन के साथ साथ बाज़ार की समझ भी उतनी ही आवश्यक हो गई है।कौन सा उत्पाद किस समय अधिक माँग में है, किस गुणवत्ता पर बेहतर मूल्य मिलेगा और उपभोक्ता की प्राथमिकता क्या है, इन सभी प्रश्नों का उत्तर खेती के निर्णयों को दिशा देता है।

जोखिम प्रबंधन

सीमित भूमि पर खेती करने वाला किसान जोखिम से सबसे अधिक प्रभावित होता है। एक ही फसल पर निर्भरता आय को अस्थिर बनाती है। नई सोच में विविधता, समय प्रबंधन और बाज़ार उन्मुख उत्पादन के माध्यम से जोखिम को नियंत्रित करने का प्रयास किया जा रहा है। यह किसान को आर्थिक रूप से अधिक सुरक्षित बनाता है।

पोषण भूमिका

खेती का उद्देश्य केवल कैलोरी प्रदान करना नहीं है। पोषण सुरक्षा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।उच्च मूल्य वाली खेती पोषण की विविधता को बढ़ावा देती है और समाज के स्वास्थ्य में सुधार लाने की क्षमता रखती है। यह दृष्टिकोण खेती को सामाजिक जिम्मेदारी से भी जोड़ता है।

युवा सहभाग

नई पीढ़ी खेती को केवल परंपरा नहीं, बल्कि ज्ञान आधारित उद्यम के रूप में देख रही है।तकनीक, सूचना और नवाचार के माध्यम से युवा किसान सीमित संसाधनों में भी बेहतर परिणाम प्राप्त कर रहे हैं। यह परिवर्तन खेती के भविष्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

नीति समर्थन

खेती की इस बदलती सोच को स्थायी बनाने के लिए नीति और संस्थागत समर्थन आवश्यक है। ऐसी नीतियाँ जो गुणवत्ता, मूल्य और ज्ञान आधारित उत्पादन को प्रोत्साहित करें, इस परिवर्तन को गति दे सकती हैं। किसान, वैज्ञानिक और नीति के बीच संवाद इस प्रक्रिया का आधार होना चाहिए।

वैज्ञानिक दृष्टि

यह मौन परिवर्तन केवल अनुभव पर आधारित नहीं है। इसके पीछे वैज्ञानिक शोध, क्षेत्रीय प्रयोग और वैश्विक अनुभवों की मजबूत नींव है।मिट्टी विज्ञान, पादप शरीर क्रिया विज्ञान, पोषण प्रबंधन और जल उपयोग दक्षता जैसे विषय इस सोच को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष

कम भूमि में अधिक मूल्य उत्पन्न करने की सोच आज की खेती की अनिवार्यता बन चुकी है। यह परिवर्तन न तो अचानक है और न ही सतही। यह खेत में लिए जाने वाले हर छोटे निर्णय में दिखाई देता है।यह खेती को अधिक टिकाऊ, अधिक लाभकारी और अधिक सम्मानजनक बनाता है। आवश्यकता है कि इस मौन परिवर्तन को पहचाना जाए, समझा जाए और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सशक्त किया जाए तभी खेती सीमित संसाधनों के बावजूद भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगी और हर वर्ग के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

उत्पादन से मूल्य तक: फसल उगाने से आगे की सोच

सर्वेश कुमार एमबीए (खाद्य एवं कृषि व्यवसाय प्रबंधन) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

प्रखर राय सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय,प्रयागराज

डॉ. ललित कुमार सनोदिया,डॉ.अखिलेश कुमार सिंह सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

भूमिका: भारतीय कृषि लंबे समय तक उत्पादन केंद्रित सोच पर आधारित रही है। स्वतंत्रता के बाद देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती सभी नागरिकों के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने की थी। इसी उद्देश्य से खेती में अधिक उपज प्राप्त करने पर ज़ोर दिया गया। यह दृष्टिकोण अपने समय में आवश्यक था और इसके परिणामस्वरूप देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बना।परंतु वर्तमान समय में परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। भूमि जोत का आकार लगातार छोटा हो रहा है, खेती की लागत बढ़ रही है और किसान की आय स्थिर बनी हुई है। ऐसे में केवल अधिक उत्पादन की सोच अब पर्याप्त नहीं रह गई है। आज आवश्यकता है कि खेती को उत्पादन तक सीमित न रखकर, उसे मूल्य सृजन की प्रक्रिया के रूप में समझा जाए। यही सोच उत्पादन से मूल्य तक की यात्रा का आधार है।

उत्पादन की नींव:खेती की सबसे मजबूत नींव वैज्ञानिक उत्पादन है। मिट्टी की उर्वरता, जल की उपलब्धता, पोषक तत्वों का संतुलन और फसल की जैविक आवश्यकताओं को समझना अत्यंत आवश्यक है। यदि इन तत्वों पर सही ढंग से ध्यान नहीं दिया जाए, तो कोई भी खेती टिकाऊ नहीं बन सकती। उत्पादन का उद्देश्य केवल अधिक उपज प्राप्त करना नहीं, बल्कि ऐसी उपज प्राप्त करना है जो स्थिर हो, पर्यावरण के अनुकूल हो और भविष्य में भी भूमि की क्षमता को बनाए रखे।

उत्पादन की सीमाएं: अधिक उत्पादन की सोच ने कई बार किसानों को कठिन परिस्थितियों में डाल दिया है। जब किसी क्षेत्र में एक ही फसल का अत्यधिक उत्पादन होता है, तो बाज़ार में उसकी आपूर्ति बढ़ जाती है और मूल्य गिर जाता है। इस स्थिति में किसान को उसकी मेहनत के अनुरूप लाभ नहीं मिल पाता। इसके अतिरिक्त, अधिक उत्पादन के लिए अधिक उर्वरक और पानी का प्रयोग किया जाता है, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता और प्राकृतिक संतुलन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह स्पष्ट करता है कि केवल उत्पादन बढ़ाना ही समाधान नहीं है।

मूल्य की समझ: मूल्य आधारित खेती का अर्थ है उत्पादन को इस प्रकार नियोजित करना कि उससे किसान को बेहतर आय प्राप्त हो। इसमें उत्पाद की गुणवत्ता, उपयोगिता, पोषण स्तर और उपभोक्ता की आवश्यकता का विशेष ध्यान रखा जाता है।आज उपभोक्ता केवल मात्रा नहीं देखता, बल्कि यह भी देखता है कि उत्पाद सुरक्षित है या नहीं, पौष्टिक है या नहीं और लंबे समय तक उपयोग योग्य है या नहीं। जब किसान इन बातों को समझकर उत्पादन करता है, तब वही उत्पादन अधिक मूल्य प्राप्त करता है।

गुणवत्ता का महत्व: खेती में गुणवत्ता का अर्थ केवल अच्छा दिखने वाला उत्पाद नहीं है। गुणवत्ता में स्वाद, पोषण, भंडारण क्षमता और उपयोग की अवधि भी शामिल होती है।जब किसान गुणवत्ता पर ध्यान देता है, तो उसका उत्पाद बाज़ार में अलग पहचान बनाता है। यही पहचान आगे चलकर बेहतर मूल्य और स्थायी आय का आधार बनती है।

समय का निर्णय: खेती में समय का निर्णय अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। बुवाई का समय, कटाई का समय और उत्पाद को बाज़ार में पहुँचाने का समय यदि सही न हो, तो अच्छी उपज भी कम मूल्य पर बिक सकती है। सही समय पर लिया गया निर्णय उत्पादन को मूल्य में बदलने की प्रक्रिया को सरल बनाता है और किसान को आर्थिक लाभ प्रदान करता है।

बाज़ार की जानकारी: खेती अब केवल खेत तक सीमित नहीं रह गई है। किसान को यह समझना आवश्यक हो गया है कि किस उत्पाद की माँग अधिक है, किस समय माँग बढ़ती है और किस गुणवत्ता के उत्पाद को अधिक महत्व दिया जाता है।जब किसान बाज़ार की जानकारी के साथ खेती करता है, तब उसकी फसल केवल उपज नहीं रहती, बल्कि आय का साधन बन जाती है।

जोखिम का प्रबंधन: खेती में जोखिम हमेशा बना रहता है। मौसम में बदलाव, कीट और रोग, तथा मूल्य में उतार चढ़ाव किसान को प्रभावित करते हैं।जो किसान केवल एक ही फसल पर निर्भर रहता है, उसके लिए जोखिम अधिक होता है। विविधता, संतुलित संसाधन उपयोग और सही योजना के माध्यम से जोखिम को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

संसाधनों का संतुलन: खेती में अधिक संसाधनों का उपयोग हमेशा लाभकारी नहीं होता। आवश्यकता से अधिक पानी, उर्वरक और रसायन भूमि की क्षमता को कम कर देते हैं। संतुलित संसाधन उपयोग से लागत भी कम होती है और उत्पादन की गुणवत्ता भी बनी रहती है। यही संतुलन खेती को आर्थिक रूप से लाभकारी बनाता है।

किसान की बदलती भूमिका: आज का किसान केवल फसल उगाने वाला व्यक्ति नहीं रह गया है। वह निर्णय लेने वाला, योजना बनाने वाला और अपनी उपज के मूल्य को समझने वाला व्यक्ति बनता जा रहा है।जब किसान उत्पादन और मूल्य दोनों को समझता है, तब खेती केवल जीविका नहीं रहती, बल्कि सम्मानजनक आजीविका का साधन बन जाती है।

शिक्षा और ज्ञान: खेती में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा और ज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब किसान, विद्यार्थी और शिक्षक मिलकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से खेती को समझते हैं, तब नई सोच का विकास होता है।ज्ञान आधारित खेती ही उत्पादन को मूल्य में बदलने की सबसे मजबूत आधारशिला है।

नीतिगत सहयोग:खेती की इस बदलती सोच को आगे बढ़ाने के लिए नीतिगत सहयोग आवश्यक है। ऐसी नीतियाँ जो गुणवत्ता, संतुलित उत्पादन और उचित मूल्य को प्रोत्साहित करें, किसान के लिए मार्गदर्शक बन सकती हैं।नीति, शिक्षा और खेत के बीच समन्वय से ही यह परिवर्तन स्थायी बन सकता है।

भविष्य की दिशा: भविष्य की खेती वही होगी जो सीमित संसाधनों में अधिक मूल्य उत्पन्न कर सके। यह तभी संभव है जब उत्पादन के साथ साथ मूल्य की समझ विकसित की जाए।यह सोच केवल किसानों के लिए नहीं, बल्कि विद्यार्थियों, शिक्षकों और शोधकर्ताओं के लिए भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष: फसल उगाना खेती की शुरुआत है, अंत नहीं। वास्तविक सफलता तब मिलती है जब उत्पादन मूल्य में परिवर्तित हो।उत्पादन से मूल्य तक की यह यात्रा वैज्ञानिक सोच, संतुलित संसाधन उपयोग और बाज़ार की समझ पर आधारित है। जब यह तीनों एक साथ चलते हैं, तब खेती टिकाऊ, लाभकारी और सम्मानजनक बनती है।यही सोच भारतीय कृषि को भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार कर सकती है।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक

प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860

हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं

पता: चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

04/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

सूक्ष्म पोषक : मृदा उर्वरता में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका, लाभ एवं प्रबंधन

अनुराग सिंह मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
डॉ. आदेश कुमार (प्राध्यापक),मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
डॉ. आनन्द सिंह (सह–प्राध्यापक),मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
डॉ. सुरेश कुमार (प्राध्यापक), मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

प्रस्तावना (Introduction)-मृदा (Soil) कृषि उत्पादन की आधारशिला है। किसी भी देश की कृषि उन्नति मृदा की उर्वरता पर निर्भर करती है। मृदा उर्वरता से तात्पर्य मृदा की उस क्षमता से है जिसके द्वारा वह पौधों को उनकी वृद्धि एवं विकास हेतु आवश्यक सभी पोषक तत्व संतुलित मात्रा में उपलब्ध कराती है।

पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—

1.प्रमुख पोषक तत्व (Macronutrients)
2.द्वितीयक पोषक तत्व (Secondary nutrients)
3.सूक्ष्म पोषक तत्व (Micronutrients)

सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता पौधों को अत्यंत कम मात्रा में होती है, किंतु इनके बिना पौधों की सामान्य वृद्धि, विकास और उत्पादन असंभव है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की परिभाषा- सूक्ष्म पोषक तत्व वे तत्व हैं जिनकी आवश्यकता पौधों को बहुत कम मात्रा (ppm या mg/kg) में होती है, परंतु ये पौधों की जैव-रासायनिक, शारीरिक एवं एंजाइमीय क्रियाओं के लिए अनिवार्य होते हैं।

प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्वों की सूची

पौधों के लिए आवश्यक मुख्य सूक्ष्म पोषक तत्व निम्नलिखित हैं: 1.लोहा (Iron – Fe), 2. जस्ता (Zinc – Zn),3. मैंगनीज (Manganese – Mn),4. तांबा (Copper – Cu),5. बोरॉन (Boron – B),6. मोलिब्डेनम (Molybdenum – Mo),7. क्लोरीन (Chlorine – Cl),8. निकल (Nickel – Ni)

मृदा उर्वरता का अर्थ एवं महत्व

मृदा उर्वरता वह गुण है जिसके द्वारा मृदा पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा, अनुपात एवं उपलब्ध रूप में प्रदान करती है।

उर्वर मृदा के गुण:पर्याप्त पोषक तत्व ,उचित श्वा, अच्छी जल धारण क्षमता, वायु संचार, सक्रिय सूक्ष्मजीव

मृदा उर्वरता में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व:-सूक्ष्म पोषक तत्व निम्न प्रकार से मृदा उर्वरता को प्रभावित करते हैं:

* पोषक संतुलन बनाए रखते हैं
* मृदा जैविक क्रियाओं को सक्रिय करते हैं
* फसल गुणवत्ता एवं उत्पादन बढ़ाते हैं

लोहा (Iron – Fe): क्लोरोफिल एवं प्रोटीन निर्माण में सहायक है। लोहा साइटोक्रोम्स, फैरीडोक्सीन व हीमोग्लोबिन का मुख्य अवयव है। यह पौधों की कोशिकाओं में विभिन्न ऑक्सीकरण-अवकरण क्रियाओं मे उत्प्रेरक का कार्य करता है। यह श्वसन क्रिया में आक्सीजन के वाहक का भी कार्य करता है।

कमी के लक्षण: नई पत्तियों का पीला पड़ना ,पौधों की वृद्धि रुक जाना

मृदा उर्वरता में योगदान: हरितलवक संश्लेषण द्वारा ऊर्जा उत्पादन बढ़ाता है

जस्ता (Zinc – Zn):-कार्य: जस्ता कैरोटीन व प्रोटीन संश्लेषण में सहायक है। हार्मोन्स के जैविक संश्लेषण में सहायक है। यह एन्जाइम (जैसे-सिस्टीन, इनोलेज, डाइसल्फाइडेज आदि) की क्रियाशीलता बढ़ाने में सहायक है एवं क्लोरोफिल के निर्माण में उत्प्रेरक का कार्य करता है। इसकी कमी से पुरानी पत्तियां प्रभावित होती है । इसकी कमी से पुरानी पत्तियों पर पीले धब्बे बन जाते हैं, व शिराओं के दोनों ओर रंगहीन पट्टी दिखाई देने लगती है और शीर्ष पर पत्तियां झुरमुट हो जाती है। इसकी कमी होने से पत्तियों पर लाल धब्बे बन जाते है व नयी पत्तियों कि मध्य शिरा पीले रंग की हो जाती हैं। जस्ता (जिंक) की कमी से धान के पौधों में खैरा रोग होता है, जिसके परिणाम स्वरूप इसकी पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं और बाद में ये कत्थई रंग की हो जाती हैं।

मृदा उर्वरता में योगदान:पौधों की समग्र वृद्धि एवं उपज में वृद्धि

मैंगनीज (Manganese – Mn)- यहप्रकाश संश्लेषण में सहायक होता है। क्लोरोफिल, कार्बोहाइड्रेट व मैंगनीज नाइट्रेट के स्वांगीकरण में सहायक है। पौधों में ऑक्सीकरण-अवकरण क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है। पौधों की पत्तियों पर मृत उतको के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। इसकी कमी से नयी पत्तियों पर प्रभाव पड़ता हैं। शिराएँ भूरी हो जाती हैं तथा शुरू में पत्तियां हल्की पीली पड़कर भूरी होने लगती हैं। मटर की फसल में मैंगनीज तत्व की कमी के कारण मार्श धब्बे बन जाते है । नीम्बू प्रजाति के पौधों में मैंगनीज की कमी के कारण पतियों के मध्य का रंग धीरे धीरे हल्का पड़ जाता है यह लक्षण पूर्ण विकसित पत्तियों पर स्पष्ट दिखाई देता है ।

मृदा उर्वरता में योगदान: ऊर्जा स्थानांतरण को बढ़ावा

तांबा (Copper–Cu): यह ऑक्सीकरण-अवकरण क्रिया को नियमितता प्रदान करता है। अनेक एन्जाइमों की क्रियाशीलता बढ़ाता है। कवक रोगो के नियंत्रण में सहायक है। इसकी कमी से फलों के अंदर रस का निर्माण कम होना। नीबू जाति के फलों में लाल-भूरे धब्बे अनियमित आकार के दिखाई देते हैं। अधिक कमी के कारण अनाज एवं दाल वाली फसलों में रिक्लेमेशन नामक बीमारी हो जाती है।

मृदा उर्वरता में योगदान: रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना

बोरॉन (Boron – B):- पौधों में शर्करा के संचालन मे सहायक है। परागण एवं प्रजनन क्रियाओ में सहायक है। दलहनी फसलों की जड़ ग्रन्थियों के विकास में सहायक है। यह पौधों में कैल्शियम एवं पोटैशियम के अनुपात को नियंत्रित करता है। यह डी.एन.ए., आर.एन.ए., ए.टी.पी. पेक्टिन व प्रोटीन के संश्लेषण में सहायक है। इसकी कमी से नयी पत्तियां गुच्छे का रूप लेने लगती हैं, डंठल ,तना व फल इसकी कमी के कारण फटने लगते हैं । पौधे की ऊपरी बढ़वार का रूकना, इन्टरनोड की लम्बाई का कम होना। बोरोन की कमी होने पर मूंगफली की फलियां खाली रह जाती हैं। बोरान की कमी से चुकन्दर में हर्टराट, फूल गोभी मे ब्राउनिंग या खोखला तना एवं तम्बाखू में टाप- सिकनेस नामक बीमारी का लगना।

मृदा उर्वरता में योगदान: गुणवत्तापूर्ण फल उत्पादन

मोलिब्डेनम (Molybdenum – Mo): मोलिब्डेनम एन्जाइम नाइट्रेट रिडक्टेज एवं नाइट्रोजिनेज का मुख्य भाग है। यह दलहनी फसलों में नत्रजन स्थिरीकरण, नाइट्रेट एसीमिलेशन व कार्बोहाइड्रेट मेटाबालिज्म क्रियाओ में सहायक है। पौधों में विटामिन-सी व शर्करा के संश्लेषण में सहायक है। मोलिब्डेनम की कमी होने से पुरानी पत्तियां किनारे पर अलग अलग जगह से झुलस जाती हैं तथा मुड़कर कटोरी के आकर की हो जाती हैं। नीबू जाति के पौधो में मालिब्डेनम की कमी से पत्तियों मे पीला धब्बा रोग होता है। इसकी कमी से फूल गोभी में व्हिपटेल एवं मूली मे प्याले की तरह रचनायें बन जाती हैं।

मृदा उर्वरता में योगदान:नाइट्रोजन उपलब्धता बढ़ाता है

क्लोरीन (Chlorine – Cl): पौधों में पत्तियों का पीला पड़ना, किनारों का मुरझाना और जड़ों का ठीक से विकास न होना जैसे लक्षण दिखते हैं, खासकर अनाज वाली फसलों में; यह कमी पोषक तत्वों के अवशोषण (जैसे पोटेशियम, कैल्शियम) को रोकती है और प्रकाश संश्लेषण को प्रभावित करती है, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है; इसकी पूर्ति के लिए पोटेशियम क्लोराइड (MOP) जैसे उर्वरक उपयोग किए जा सकते हैं, लेकिन जैविक तरीके बेहतर हैं, और अत्यधिक वर्षा या रेतीली मिट्टी में यह कमी ज्यादा हो सकती जल संतुलन, स्टोमेटा नियंत्रण।

मृदा उर्वरता में योगदान: लवण संतुलन बनाए रखना।

निकल (Nickel – Ni):-मिट्टी में निकल की कमी होने पर पौधों में "माउस ईयर" (चूहे के कान) जैसी समस्या दिखती है, जिससे पत्तियां छोटी और मुड़ी हुई हो जाती हैं, विकास रुक जाता है, और नाइट्रोजन स्थिरीकरण प्रभावित होता है; यह कमी खासकर शुष्क, ठंडी मिट्टी और जिंक, लोहे (Iron), मैंगनीज (Manganese) जैसे तत्वों की अधिकता से बढ़ सकती है, और सोयाबीन जैसी फसलों के लिए महत्वपूर्ण है, जहाँ यह यूरिया (rea) के उपयोग को भी प्रभावित कर सकता है ।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के कारण: मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों (जैसे जिंक, लोहा, बोरॉन) की कमी के मुख्य कारण गहन खेती, असंतुलित रासायनिक उर्वरकों का उपयोग, जैविक खाद की कमी, मिट्टी का pH स्तर (उच्च pH चूनेयुक्त मिट्टी में लोहे को रोकता है), खराब वायु-संचार, और कुछ मिट्टी के प्रकार (जैसे पीट या रेतीली मिट्टी) हैं, जो पौधों के विकास में बाधा डालते हैं और उपज व गुणवत्ता घटाते हैं

सूक्ष्म पोषक तत्व प्रबंधन: सुधार के उपाय:मृदा परीक्षण, सूक्ष्म पोषक उर्वरकों का प्रयोग,जैविक खाद,फसल चक्र अपनाना ।

संतुलित पोषण एवं सतत कृषि: सूक्ष्म पोषक तत्व सतत कृषि प्रणाली हेतु अत्यंत आवश्यक हैं। इनके संतुलित उपयोग से: * मृदा स्वास्थ्य सुधरता है * पर्यावरण संरक्षण होता है * किसान की आय बढ़ती है

निष्कर्ष (Conclusion): सूक्ष्म पोषक तत्व मृदा उर्वरता के अभिन्न अंग हैं। यद्यपि इनकी आवश्यकता कम मात्रा में होती है, परंतु इनकी भूमिका अत्यंत व्यापक है। संतुलित उर्वरक प्रबंधन द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति कर हम मृदा की उत्पादकता, फसल गुणवत्ता एवं कृषि की स्थिरता को बनाए रख सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

'ग्रामीण विकास में नए प्रयोग'

पूजा गुप्ता वरिष्ठ लेखिका, मिर्जापुर (उ.प्र.)

ग्रामीण विकास का लक्ष्य गांवों में रहने वाले लोगों की जिंदगी को बेहतर बनाना और उन्हें आधुनिक सुविधाओं से जोड़ना है। आजकल, ग्रामीण क्षेत्रों में कई नए और क्रांतिकारी प्रयोग किए जा रहे हैं, जो पुराने तरीकों से अलग हैं और ज्यादा प्रभावी साबित हो रहे हैं। आइए, इन नए प्रयोगों को विस्तार से समझें।

'तकनीकी नवाचार'

तकनीक ग्रामीण विकास की रीढ़ बन रही है। किसान अब स्मार्टफोन ऐप्स का इस्तेमाल कर रहे हैं, जिनसे वे मौसम की जानकारी, फसलों की बीमारियों और बाजार की कीमतें जान सकते हैं। ड्रोन तकनीक का उपयोग खेतों में फसलों की निगरानी, बीज बोने और कीटनाशकों को फैलाने में हो रहा है, जो समय और मेहनत बचाता है। सोलर पैनल और रिन्यूएबल एनर्जी (नवीकरणीय ऊर्जा) जैसे सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा से गांवों में सस्ती और स्वच्छ बिजली उपलब्ध हो रही है। इसके अलावा, स्मार्ट गांव परियोजनाओं में इंटरनेट कनेक्टिविटी बढ़ाने पर भी जोर दिया जा रहा है, ताकि गांव के लोग डिजिटल दुनिया से जुड़ सकें।

'कृषि में सुधार'

कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, और इस क्षेत्र में कई नए प्रयोग हो रहे हैं। जैविक खेती एक लोकप्रिय प्रयोग है, जिसमें रासायनिक खाद और कीटनाशकों की जगह प्राकृतिक तरीके जैसे खाद, कम्पोस्ट और जैविक कीट नियंत्रण का उपयोग किया जाता है। यह न सिर्फ फसलों को स्वस्थ बनाता है, बल्कि पर्यावरण को भी बचाता है। ड्रिप सिंचाई और स्प्रिंकलर सिस्टम जैसे जल संरक्षण तकनीक से पानी की बर्बादी कम हो रही है और फसल उत्पादन बढ़ रहा है। स्टार्टअप और सहकारी समितियां किसानों को उनके उत्पादों को सीधे उपभोक्ताओं या बड़े बाजारों तक पहुंचाने में मदद कर रही हैं, जिससे उनकी आय में सुधार हो रहा है।

'शिक्षा और स्वास्थ्य में डिजिटल क्रांति'

गांवों में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच बढ़ाने के लिए डिजिटल तकनीक का इस्तेमाल हो रहा है। ऑनलाइन क्लासेस, ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म और डिजिटल लाइब्रेरी से बच्चे और युवा नई चीजें सीख रहे हैं, भले ही उनके पास अच्छे स्कूल दूर हों। टेलीमेडिसिन (दूरस्थ चिकित्सा) के जरिए डॉक्टर वीडियो कॉल या मोबाइल ऐप्स के माध्यम से गांव वालों का इलाज कर रहे हैं। मोबाइल मेडिकल यूनिट्स गांवों में जाकर स्वास्थ्य जांच और दवाइयां उपलब्ध करा रही हैं। स्किल डेवलपमेंट सेंटर खुल रहे हैं, जहां युवाओं को कंप्यूटर, तकनीकी और उद्यमिता की ट्रेनिंग दी जा रही है, ताकि वे गांव में ही रोजगार पा सकें।

'स्थानीय उद्यमिता और महिला सशक्तिकरण'

ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए नए प्रयोग किए जा रहे हैं। स्वयं सहायता समूह (SHGs) के जरिए महिलाएं छोटे व्यवसाय शुरू कर रही हैं, जैसे हस्तशिल्प, टकसाल, खाद्य प्रसंस्करण और स्थानीय उत्पादों की बिक्री। ग्रामीण पर्यटन भी एक नया ट्रेंड है, जहां शहर के लोग गांवों की संस्कृति, खेती और प्राकृतिक सुंदरता देखने आते हैं, जिससे गांव वालों को अतिरिक्त आमदनी होती है। स्थानीय कारीगरों और उत्पादकों को बाजार तक पहुंचाने के लिए ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म्स भी शुरू किए गए हैं।

'समुदाय की भागीदारी और पर्यावरण संरक्षण'

ग्रामीण विकास में समुदाय की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। गांव के लोग अब पंचायतों और ग्राम सभाओं के माध्यम से मिलकर फैसले ले रहे हैं, जैसे कि सड़कों, पानी और बिजली की व्यवस्था में सुधार। पर्यावरण संरक्षण के लिए भी नए कदम उठाए जा रहे हैं, जैसे पेड़ लगाना, नदियों और तालाबों को साफ करना, और कचरा प्रबंधन सिस्टम विकसित करना। ये प्रयास न सिर्फ गांवों को स्वच्छ और हरा-भरा बनाते हैं, बल्कि भविष्य के लिए सतत विकास सुनिश्चित करते हैं।

'बुनियादी ढांचे में सुधार'

ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों, पुलों और संचार सुविधाओं को बेहतर बनाने के लिए भी नए प्रयोग हो रहे हैं। ऑल-वेदर रोड्स (सभी मौसमों में चलने वाली सड़कें) से गांवों की कनेक्टिविटी बढ़ रही है, जिससे माल-ढुलाई और यात्रा आसान हो रही है। गांवों में साफ पानी की सप्लाई और स्वच्छता पर भी जोर दिया जा रहा है, जैसे कि नल से जल योजना और शौचालय निर्माण।ये सभी नए प्रयोग ग्रामीण क्षेत्रों में बदलाव ला रहे हैं। हालांकि, इनमें कुछ चुनौतियां भी हैं, जैसे कि पैसों की कमी, लोगों में जागरूकता की कमी, और तकनीक को अपनाने में हिचकिचाहट। लेकिन सरकार, NGOs, और स्थानीय समुदाय मिलकर इन समस्याओं को हल करने की कोशिश कर रहे हैं। अगर ये प्रयोग सफल रहे, तो ग्रामीण क्षेत्र न सिर्फ विकास करेंगे, बल्कि शहरी क्षेत्रों के बराबर आत्मनिर्भर और समृद्ध भी बन सकते हैं। इन नवाचारों से ग्रामीण जीवन में खुशहाली, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के नए अवसर आएंगे, जो गांवों को भविष्य के लिए तैयार करेंगे।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

शून्य बजट प्राकृतिक खेती : एक आत्मनिर्भर और सतत कृषि प्रणाली

निवेदिता मार्डी, प्रतीक कुमार
1शस्य विज्ञान विभाग, सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय (उ.प्र.)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ अधिकांश किसान छोटे और सीमांत हैं। बढ़ती महँगाई, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की ऊँची कीमतों के कारण किसान कर्ज के बोझ तले दबते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में शून्य बजट प्राकृतिक खेती (Zero Budget Natural Farming : ZBNF) किसानों के लिए एक आशाजनक और क्रांतिकारी विकल्प बनकर उभरी है। यह खेती पद्धति न केवल उत्पादन लागत को शून्य के करीब लाती है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और मानव स्वास्थ्य को भी बढ़ावा देती है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती का अर्थ

शून्य बजट प्राकृतिक खेती वह कृषि प्रणाली है जिसमें फसल उत्पादन के लिए बाहर से खरीदे गए रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और महंगे बीजों का उपयोग नहीं किया जाता। इस पद्धति में खेती प्रकृति के नियमों और स्थानीय संसाधनों के आधार पर की जाती है। "शून्य बजट" का अर्थ यह नहीं है कि खेती में बिल्कुल खर्च नहीं होता, बल्कि इसका आशय यह है कि किसान को खेती के लिए बाजार से कुछ भी खरीदने की आवश्यकता नहीं होती।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती की उत्पत्ति

इस खेती पद्धति को प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक और विचारक सुभाष पालेकर ने विकसित किया। उनका मानना था कि भारतीय पारंपरिक कृषि ज्ञान और देसी गाय आधारित खेती प्रणाली से बिना रसायन और बिना कर्ज के भी सफल खेती संभव है। यह पद्धति आज देश के कई राज्यों में तेजी से अपनाई जा रही है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के 4 मुख्य स्तंभ

1.जीवामृत : देसी गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन और मिट्टी से तैयार किया गया तरल खाद, जो मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाता है।

2.बीजामृत : बीज उपचार की प्राकृतिक विधि, जिससे बीज रोगमुक्त रहते हैं।

3.मल्चिंग (आवरण) : मिट्टी को सूखे पत्तों, फसल अवशेषों या भूसे से ढकना, जिससे नमी बनी रहती है और खरपतवार कम होते हैं।

4.वाफसा : मिट्टी में वायु और नमी का संतुलन बनाए रखना, जिससे जड़ों का विकास बेहतर होता है।

मिट्टी और पर्यावरण संरक्षण

शून्य बजट प्राकृतिक खेती मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता को बनाए रखती है। इसमें रासायनिक पदार्थों

का प्रयोग न होने से मिट्टी में मौजूद लाभकारी जीवाणु और केंचुए सुरक्षित रहते हैं। यह खेती जल संरक्षण में भी सहायक है, क्योंकि मल्चिंग के कारण सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाती है। साथ ही, यह पद्धति पर्यावरण प्रदूषण को रोकने और जैव विविधता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

किसानों के लिए आर्थिक लाभ

इस खेती पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि किसानों की उत्पादन लागत लगभग शून्य हो जाती है। खाद और कीटनाशक घर पर ही तैयार किए जाते हैं, जिससे कर्ज लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे किसान आत्मनिर्भर बनते हैं और आर्थिक रूप से सशक्त होते हैं। लंबे समय में भूमि की उत्पादकता बढ़ती है और आय स्थिर रहती है।

मानव स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव

रासायनिक खेती से उत्पन्न खाद्य पदार्थों में विषैले अवशेष पाए जाते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। शून्य बजट प्राकृतिक खेती से प्राप्त खाद्य पदार्थ पूर्णतः प्राकृतिक और रसायन मुक्त होते हैं। इससे कैंसर, मधुमेह और अन्य गंभीर बीमारियों का खतरा कम होता है और समाज स्वस्थ बनता है।

भारत में शून्य बजट प्राकृतिक खेती

भारत के कई राज्य जैसे आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में शून्य बजट प्राकृतिक खेती को सरकारी स्तर पर प्रोत्साहन दिया जा रहा है। विशेष रूप से आंध्र प्रदेश में यह खेती आंदोलन के रूप में अपनाई जा रही है, जिससे लाखों किसान लाभान्वित हो रहे हैं।

चुनौतियां और समाधान

शून्य बजट प्राकृतिक खेती को अपनाने में प्रारंभिक समय में किसानों को प्रशिक्षण और धैर्य की आवश्यकता होती है। उत्पादन में शुरुआती वर्षों में थोड़ा उतार-चढ़ाव आ सकता है, लेकिन उचित मार्गदर्शन, अनुभव और सामुदायिक सहयोग से इन चुनौतियों को सफलतापूर्वक पार किया जा सकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शून्य बजट प्राकृतिक खेती एक आत्मनिर्भर, पर्यावरण अनुकूल और टिकाऊ कृषि प्रणाली है। यह किसानों को कर्ज से मुक्ति दिलाने के साथ-साथ स्वस्थ समाज और सुरक्षित पर्यावरण का निर्माण करती है। आज के समय में जब जलवायु परिवर्तन और कृषि संकट गहराता जा रहा है, शून्य बजट प्राकृतिक खेती भविष्य की खेती के रूप में एक सशक्त समाधान प्रस्तुत करती है।

08/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

विकसित भारत गारंटी फॉर रोजगार एंड आजीविका मिशन (ग्रामीण): रोजगार से आगे आजीविका तक

प्रखर राय सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. ललित कुमार सनोदिया

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह

डॉ.अवनीश यादव सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

ग्रामीण भारत के लिए योजनाओं की कमी कभी नहीं रही, कमी रही है तो दूरदर्शी दृष्टि की। हर कुछ वर्षों में एक नई योजना आई, बड़े वादों और आकर्षक नामों के साथ, लेकिन ज़मीनी सच्चाई बहुत कम बदली। आज भी गाँव का आम आदमी अनिश्चित आय, अस्थायी काम और भविष्य की असुरक्षा के बीच खड़ा है। रोज़गार है, पर टिकाऊ नहीं; मेहनत है, पर उसका फल सुनिश्चित नहीं। इसी पृष्ठभूमि में "विकसित भारत गारंटी फॉर रोजगार एंड आजीविका मिशन (ग्रामीण)" एक नई सोच को जन्म देता है। यह केवल यह नहीं पूछता कि कितने दिन काम मिला, बल्कि यह सवाल उठाता है कि उस काम से जीवन में कितना स्थायित्व आया और क्या वह व्यक्ति अपने भविष्य को लेकर आश्वस्त हो पाया।

मनरेगा: राहत की योजना, समाधान नहीं

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) ने ग्रामीण भारत को एक बड़ी राहत दी। 100 दिन के रोजगार की कानूनी गारंटी ने सूखा, बाढ़, महामारी और आर्थिक मंदी जैसे कठिन समय में लाखों ग्रामीण परिवारों को न्यूनतम आय का सहारा दिया। यह मनरेगा की सबसे बड़ी उपलब्धि रही कि उसने भुखमरी और पूर्ण बेरोज़गारी पर अंकुश लगाया।लेकिन मनरेगा की सीमाएँ भी उतनी ही स्पष्ट हैं। यह योजना मूल रूप से मजदूरी आधारित है, विकास आधारित नहीं। काम खत्म होते ही आय भी खत्म हो जाती है। न कोई स्थायी कौशल विकसित होता है, न व्यक्ति की अपनी कोई आर्थिक इकाई बनती है। इसी कारण मनरेगा ने पलायन को कुछ समय के लिए धीमा तो किया, लेकिन स्थायी रूप से रोक नहीं पाया।ग्रामीण युवा आज भी बेहतर भविष्य की तलाश में गाँव छोड़ने को मजबूर है।

रोजगार और आजीविका का मौलिक अंतर

ग्रामीण विकास की बहस तब तक अधूरी है, जब तक रोजगार और आजीविका के बीच के फर्क को स्पष्ट रूप से नहीं समझा जाता। रोजगार अस्थायी हो सकता है–आज है, कल नहीं। वहीं आजीविका एक ऐसी व्यवस्था है, जो व्यक्ति को दीर्घकालिक आर्थिक सुरक्षा देती है।ग्रामीण भारत की सबसे बड़ी समस्या बेरोज़गारी नहीं, बल्कि आय की अनिश्चितता है। खेती मौसम पर निर्भर है, मजदूरी काम की उपलब्धता पर और बाज़ार कीमतों के उतार-चढ़ाव पर। विकसित भारत गारंटी इसी अस्थिरता को समाप्त करने का प्रयास करती है, जहाँ काम केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि भविष्य निर्माण का आधार बने।

विकसित भारत गारंटी: सोच में बुनियादी बदलाव

इस मिशन की सबसे बड़ी विशेषता इसकी सोच है। यहाँ व्यक्ति को केवल श्रमिक नहीं, बल्कि उत्पादक, प्रशिक्षित और आत्मनिर्भर इकाई के रूप में देखा गया है। कृषि आधारित आजीविका, पशुपालन, डेयरी, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, बीज उत्पादन, कृषि प्रसंस्करण और ग्रामीण कुटीर उद्योग–ये सभी क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ आय केवल मजदूरी तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मूल्य निर्माण होता है।यह मॉडल इस सच्चाई को स्वीकार करता है कि एक ही आय स्रोत पर निर्भरता ग्रामीण गरीबी को जन्म देती है, जबकि विविध आजीविका मॉडल आर्थिक सुरक्षा और स्थिरता प्रदान करता है।

कृषि का पुनर्परिभाषण: जोखिम से अवसर तक

आज खेती छोटे और सीमांत किसानों के लिए लाभकारी कम और जोखिम भरी अधिक हो गई है। उत्पादन लागत बढ़ी है, लाभ अनिश्चित है और प्राकृतिक जोखिम लगातार बढ़ रहे हैं। ऐसे में खेती को आजीविका का एकमात्र साधन बनाए रखना अब व्यवहारिक नहीं रह गया है।विकसित भारत गारंटी खेती को पूरक गतिविधियों से जोड़कर उसे मजबूत बनाना चाहती है। जहाँ मनरेगा खेत से बाहर अस्थायी काम देता है, वहीं यह मिशन खेत और गाँव के भीतर स्थायी आर्थिक गतिविधियाँ खड़ी करने की बात करता है। इससे किसान केवल उत्पादक नहीं, बल्कि मूल्य श्रृंखला का हिस्सा बन सकता है।

ग्रामीण युवा और महिलाएँ: मिशन की धुरी

ग्रामीण युवाओं का शहरों की ओर पलायन केवल रोजगार की कमी का परिणाम नहीं है, बल्कि सम्मान, पहचान और भविष्य की तलाश भी है। यदि गाँव में कौशल आधारित, आयजनक और सम्मानजनक काम उपलब्ध हो, तो युवा गाँव छोड़ने को मजबूर नहीं होंगे। इसी प्रकार, महिला स्वयं सहायता समूह केवल सहायक भूमिका तक सीमित नहीं हैं। खाद्य प्रसंस्करण, स्थानीय उद्यम, ग्रामीण सेवाओं और विपणन में महिलाओं की भागीदारी पूरे परिवार की आर्थिक और सामाजिक स्थिति बदल सकती है। विकसित भारत गारंटी की सफलता काफी हद तक महिला और युवा केंद्रित क्रियान्वयन पर निर्भर करेगी।

चुनौतियाँ: जहाँ योजना फिसल सकती है

इस मिशन के सामने सबसे बड़ा खतरा यही है कि यह भी कहीं संख्या और रिपोर्टिंग तक सीमित न हो जाए। यदि सफलता का पैमाना केवल ÷कितने लोगों को काम मिला÷ या ÷कितने प्रशिक्षण हुए÷ तक सिमट गया, तो आजीविका की आत्मा खो जाएगी।प्रशिक्षण की गुणवत्ता, बाज़ार से वास्तविक जुड़ाव, स्थानीय आवश्यकताओं की पहचान और प्रशासनिक समन्वय–इन चारों पर गंभीरता से काम किए बिना यह मिशन अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाएगा।

निष्कर्ष

मनरेगा ने ग्रामीण भारत को जीवित रहने की ताकत दी,अब विकसित भारत गारंटी को ग्रामीण भारत को आगे बढ़ने की ताकत देनी होगी।विकास तब नहीं होता जब हाथ में केवल काम हो,विकास तब होता है जब काम से भविष्य बनता हो।यदि यह मिशन रोजगार से आगे जाकर आजीविका तक पहुँच पाया,तो विकसित भारत की बुनियाद सचमुच गाँवों में रखी जाएगी।

शीतला कृषि सेवा केन्द्र
बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)
99267-31867, 83055-69923
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।
पता: पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

काशीफल की उन्नत खेती

पंकज कुमार, सूरज पासवान
एम. एल. मीणा उद्यानिकी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

कद्दू या सीताफल या काशीफल (Pumpkin)
वानस्पतिक नाम- Cucurbita moschata
कुल-Cucurbitaceae

कद्दू का मूल जन्म स्थान अमेरिका है। इसकी खेती का ढंग बिल्कुल लौकी के समान है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ लौकी की वर्षा की फसल को छप्परों इत्यादि पर चढ़ा दिया जाता है, कद्दू की बेल भूमि पर ही रेंगने दी जाती है।

लौकी और कद्दू में की खेती पास-पास नहीं करनी चाहिये, ऐसा लोगों का विश्वास है। इस बात में केवल इतना ही तथ्य है कि लौकी और कद्दू पर एक ही प्रकार के कीड़े-मकोड़े लगते हैं और एक फसल पर लगा कीड़ा दूसरी फसल को भी हानि पहुंचा सकता है अतः उन दोनों फसलों को अलग-अलग ही उगाना श्रेयस्कर होता है।

उन्नत किस्में

(1) स्थानीय किस्में बड़ा लाल, बड़ा गोल, पीले गूदे वाली, लाल गूदे वाली। (2) उन्नतशील किस्में पूसा विकास, पूसा विश्वास, पूसा रत्नाकर, पूसा अलंकार, सोलन बादामी, सी.ओ. 1, सी.ओ. 2, अर्का सूर्य मुखी।

पूसा अलंकार (F_1) Hybrid)- यह भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली विकसित की गई है। यह अधिक उपज देने वाली संकर किस्म है।

अर्का सूर्यमुखी- इसके फल छोटे व गहरे नारंगी रंग के होते हैं, जिन पर भूरे रंग की धारियां होती हैं। गूदा अच्छी सुगन्ध वाला, सख्त चमकीले सुनहरे रंग का होता है। गूदे का रंग सब्जी पकाने के बाद भी ज्यों का त्यों बना रहता है। फलों का वजन 1 से 1.5 किलोग्राम होता है। फल आकार में गोल होते हैं लेकिन दोनों सिरे चपटे होते हैं। इस किस्म पर फल मक्खी का प्रकोप कम होता है। फसल 100 दिन में तैयार हो जाती है। इसकी औसत पैदावार 250-300 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

अर्का चन्दन - इसके फल मध्यम आकार (2.5 से 3.5 किग्रा0) गोल व दोनों सिरों पर कुछ दबे हुये होते हैं। इसका गूदा अच्छी सुगन्ध वाला, सख्त व चमकीला व सुनहरे रंग का हल्का हरा होता है। इसकी औसत उपज 300 से 325 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। फसल 125 दिन में तैयार हो जाती है।

कोयम्बटूर-1- यह पछेती किस्म है जो 175 दिन में तैयार होती है। इसकी बेल बहुत तेजी से बढ़ती है। इसके फल ग्लोब के आकार के, मध्यम बड़े (7-8 किग्रा.) तथा लुभावने होते हैं। इसमें बीज कम संख्या में होते हैं। एक बेल पर 7 से 9 तक फल लगते हैं। इसकी औसत पैदावार 280 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

कोयम्बटर-2- इसकी बेल कोयम्बटर-1 की अपेक्षा कम फैलती है। इसके फल आकार में छोटे मध्यम (2 किग्रा.) तथा नारंगी रंग के गरे वाले होते हैं। इसकी फसल 130-135 दिन में तैयार हो जाती है। औसत उपज 200 से 225 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

भूमि

कद्दू के लिये हल्की दोमट अथवा दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है। भूमि से पानी के निकास का समुचित प्रवन्ध होना चाहिये। भूमि कुछ-कुछ अम्लीय होने पर कद्दू की अच्छी उपज होती है।

भूमि की तैयारी

कद्दू की अच्छी फसल लेने के लिये भूमि की एक बार किसी मिट्टी पलट हल से गहरी जुताई की जानी चाहिये। इसके बाद 4-5 जुताइयों देशी हल से की जानी चाहिये, प्रत्येक जुताई के बाद खेत में पटेला घुमाकर मिट्टी को समतल कर देना चाहिये।

खाद और उर्वरक

काशीफल की अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु उसे 300-400 कुन्टल गोबर या कम्पोस्ट खाद तथा 40-50 किग्रा. नाइट्रोजन, 40-50 किग्रा. फॉस्फोरस, 25-40 किग्रा. पोटाश प्रति है. देना चाहिये।

(पी.एस. सिरोही और बी. चौधरी भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली के अनुसार संस्तुति)

गोबर की खाद बोने से 1 माह पूर्व खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिला दें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा फॉस्फोरस और पोटाश की पूर्ण मात्रा बुवाई के समय मिट्टी में मिला दें, शेष नाइट्रोजन को बोने के 1-1½ माह बाद टापड्रेसिंग के रूप में जड़ों के पास देना चाहिये।

बीज बोने का समय

(अ) मैदानी क्षेत्रों में

(1) ग्रीष्म काल (जायद) नवम्बर-मार्च। शीघ्र फसल के लिये इसे नवम्बर में आलू की मेड़ो पर भी बो देते हैं। नदियों के कतार पर दिसम्बर में बुवाई करते हैं। इस फसल की पाले से सुरक्षा करते हैं। अन्य स्थानों में जायद की फसल फरवरी-मार्च में बोते हैं।

(2) बरसात की फसल (खरीफ) जून-जुलाई।

(ब) पर्वतीय क्षेत्रों में मार्च-अप्रैल।

बीज की मात्रा

कद्दू की जायद फसल के लिये 6-7 किग्रा0 बीज प्रति हैक्टेयर आवश्यक होता है। जुलाई में बोई जाने वाली फसल के लिये 4-5 किग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है।

बीज बोने का ढंग

काशीफल को गड्ढों (थालों) में और नालियों में बोते हैं। काशीफल को 2.5-3 मीटर × 75-100 सेमी. (पंक्ति × पौधे) की दूरी पर बोते हैं।

ग्रीष्म फसल- 2.5.75 मी. या 3×0.6 मीटर

वर्षा फसल - 3 × 1.0 मीटर

उपरोक्त दूरी पर घाला बनाकर एक स्थान पर 3-4 बीज 2.5-3 सेमी0 की गहराई पर बोने चाहिये। बाद में एक स्वस्थ पौधा ही चढ़ने के लिये छोड़ते हैं। नालियों में बोने पर नालियाँ निर्धारित दूरी पर 50 सेमी0 चौडी 25-30 सेमी. गहरी बनाई जाती हैं। जिनमें खाद लगाकर 60 से 75 सेमी. की दूरी पर बीजों को बो दिया जाता है।

सिंचाई

जायद फसल में प्रति सप्ताह सिंचाई की आवश्यकता होती है। पानी पहले नालियों में दिया जाता है और पौधों की बेल फैल जाने पर बेल फैलने की सारी जगह में पानी फैलाया जाता है। खरीफ की फसल में सिंचाई वर्षा न होने पर आवश्यक होती है। सामान्य होने पर प्रायः सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। वर्षा का फालतू पानी खेत से बाहर निकालते रहना चाहिये।

निकाई-गुड़ाई

जायद की फसल में 2-3 बार निकाई करने की आवश्यकता होती है। जब तक बेल फैलकर भूमि को भली-भाँति ढंक नहीं लेती, निकाई-गुड़ाई की जाती रहती है। खरीफ ऋतु में बोई जाने वाली फसल में खरपतवार अधिक जोर पकड़ते हैं। अतः उन्हें नियन्त्रण में रखने हेतु 3-4 बार निकाई-गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। कद्दू की लतायें जमीन पर ही फैलायी जाती हैं। अतः फल भूमि पर ही लगते हैं।

उपज

काशीफल की औसत उपज 250-300 क्विं. प्रति है. होती है ग्रीष्म कालीन फसल की उपज 400 क्विं. तक हो दिये जाते हैं। क्योंकि ग्रीष्म कालीन फल 20-25 किलो तक का हो जाता आलुओं के साथ काशीफल के बीज (नवम्बर) में बो दिये जाते हैं। वर्षा कालीन फसल से कम उपज मिलती है क्योंकि बेल को ऊपर नहीं चढ़ाया जा सकता।

बीज लेना

कद्दू के बड़े आकार के उत्तम फल छाँट कर बेल पर ही पकने के लिये छोड़ दिये जाते हैं। इन फलों के पूरी तरह पक जाने पर इन्हें तोड़ लिया जाता है और 1-1.5 महीने तक उन्हें हवादार स्थानों में रखा रहने दिया जाता है। तत्पश्चात् कद्दू को चीर कर बीज निकाल कर उन्हें सुखा लिया जाता है और सावधानी से रखा जाता है।

कद्दू के कीट तथा रोग

कद्दू का लाल कीट

यह कीट लाल, चमकदार और लम्बे आकार का होता है। यह फलों में छेद कर देता है। इसके बच्चे फसल को जड़ों में छेद करके खाते हैं। इसकी रोकथाम के लिये सेविन धूल का 10-15 किग्रा0 प्रति हैक्टेयर की दर से बुरकाव करें। साइपरमेथ्रिन 0.15 प्रतिशत का छिड़काव बहुत ही कारगर सिद्ध हुआ है।

कद्दू की मक्खी

इस कीट की मादा कद्दू के फल के छिलके के अन्दर अण्डे देती है। इससे छोटे-छोटे कीट पैदा होकर अन्दर ही अन्दर फलों को खाते व सड़ा देते हैं। इनकी रोकथाम हेतु सेविन धूल का 0.2त्न का घोल बनाकर छिड़काव करें।

पाउडरी मिल्ड्यू

इस रोग के कारण पत्तियों की ऊपरी सतह तथा तनों पर सफेद पाउडर जैसा पदार्थ जम जाता है जिसके फलस्वरूप पत्तियां समय से पहले गिर जाती हैं। इसकी रोकथाम हेतु फसल पर 0.06% केराथेन (60 ग्राम दवा 100 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें। सूटोक्स 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करने से आशातीत लाभ मिलता हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

जलवायु परिवर्तन और वैश्विक खाद्य उत्पादन पर उसका प्रभाव

अतुल पासवान सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

आज जलवायु परिवर्तन मानवता के सामने सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक बन गया है। बढ़ते तापमान, अनियमित मौसम पैटर्न, और चरम जलवायु घटनाएँ सीधे कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रही हैं। कृषि पूरी तरह से जलवायु पर निर्भर होती है, इसलिए जलवायु परिवर्तन का असर खाद्य उत्पादन पर तेजी से दिखाई दे रहा है। बढ़ती जनसंख्या के बीच, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए इन प्रभावों को समझना अत्यंत आवश्यक है।

बढ़ते तापमान और फसल उत्पादकता

वैश्विक तापमान लगातार बढ़ रहा है। गेहूँ, चावल, मक्का जैसी कई प्रमुख फसलें अत्यधिक गर्मी के प्रति संवेदनशील हैं। तापमान बढ़ने से-

1.फसल उत्पादन में कमी 2.तेज़ पकने के कारण दाने की गुणवत्ता में गिरावट 3.मिट्टी की नमी में कमी 4.गर्मी के कारण पौधों पर तनाव

यह पाया गया है कि फसल के मौसम में केवल 1-2°C की वृद्धि से गेहूँ और मक्का के उत्पादन में 10-20% तक की कमी आ सकती है।

अनियमित वर्षा और जल संकट

वर्षा के पैटर्न में भारी बदलाव आ रहा है। कहीं लंबा सूखा है, तो कहीं भारी बाढ़। दोनों ही स्थितियाँ खाद्य उत्पादन को प्रभावित करती हैं-

1.सूखा फसलें नष्ट कर देता है और पशुओं के चरने योग्य घासभूमि कम हो जाती है।

2.बाढ़ फसलों को नष्ट कर मिट्टी का कटाव करती है और खेतों को नुकसान पहुँचाती है।

3.जल संकट सिंचाई को मुश्किल बना देता है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ पहले ही पानी की कमी है। बरसात पर निर्भर किसान सबसे ज़्यादा जोखिम में हैं।

कीटों और बीमारियों का तेज़ी से फैलाव

गर्मी बढ़ने और मौसम में बदलाव के कारण कई कीट और रोग नए क्षेत्रों में फैल रहे हैं। जैसे-

1. फॉल आर्मीवर्म (Fall Armyworm) का अफ्रीका से एशिया तक फैलना
2. टिड्डियों के झुंड, जो असामान्य मौसम के कारण बढ़े
3. फफूंद जनित रोग, जो गर्म और आर्द्र वातावरण में तेजी से फैलते हैं

इससे फसल का नुकसान बढ़ता है और किसान अधिक कीटनाशकों का उपयोग करने पर मजबूर होते हैं।

मिट्टी का क्षरण और उर्वरता में कम

1.जलवायु परिवर्तन मिट्टी को भी प्रभावित करता है-

2.भारी वर्षा के कारण मिट्टी का कटाव

3.अत्यधिक तापमान से कार्बनिक पदार्थों की कमी

4.मरुस्थलीकरण (डेजर्टिफिकेशन)

उपजाऊ मिट्टी स्वस्थ फसलों का आधार होती है, इसलिए मिट्टी का संरक्षण बहुत आवश्यक है।

पशुपालन और डेयरी उद्योग पर प्रभाव

1. पशुधन भी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रहा है। तापमान बढ़ने से हीट स्ट्रेस, जिससे दूध उत्पादन और पशुओं की वृद्धि कम होती है
2. बीमारियों का बढ़ना
3. चरागाह और पानी की कमी
4. इससे मांस, दूध और अंडों की उपलब्धता प्रभावित होती है।
5. वैश्विक खाद्य सुरक्षा पर खतरा
6. जलवायु परिवर्तन के कारण
7. खाद्य उत्पादन घट रहा है
8. खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ रही हैं
9. गरीब और विकासशील देश अधिक प्रभावित हो रहे हैं

यदि तापमान बढ़ना जारी रहा, तो करोड़ों लोग भूख और कुपोषण का सामना कर सकते हैं।

समाधान और अनुकूलन रणनीतियाँ

इन चुनौतियों से निपटने के लिए कई कदम उठाए जा सकते हैं-

जलवायु-प्रतिरोधी फसलें

सूखा, गर्मी और बाढ़ सहने वाली फसल किस्मों का विकास।

बेहतर सिंचाई प्रणाली

ड्रिप सिंचाई, वर्षा जल संचयन और पानी के कुशल उपयोग की तकनीकें।

सतत कृषि पद्धतियाँ

फसल चक्र (Crop Rotation), खेत में पेड़ लगाने (Agroforestry), जैविक खेती आदि।

स्मार्ट खेती तकनीकें

सेंसर, ड्रोन और डेटा विश्लेषण का उपयोग फसल निगरानी के लिए।

सरकारी नीतियाँ और सहायता

किसानों के लिए सब्सिडी, बीमा योजनाएँ और जलवायु-संवेदनशील कृषि नीतियाँ।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन वैश्विक कृषि प्रणालियों को तेजी से बदल रहा है और खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा पैदा कर रहा है। सतत खेती पद्धतियों, आधुनिक तकनीकों और मजबूत नीतियों के माध्यम से ही इन प्रभावों को कम किया जा सकता है। आने वाली पीढ़ियों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु तत्काल और सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है।

अक्षिता एग्रो

राघवेन्द्र सिंह
8959728253
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता
हमारे यहां सभी प्रकार के बीज एवं कीटनाशक दवाएं एवं खरपतवार नाशक दवाएं और अधिक उपज की दवाएं उचित दामों पर मिलती हैं
पता: अरैया रोड, आंतरी, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

क्या भारत अपनी पारंपरिक सर्दी खो रहा है?

कुलदीप सिंह (पीएचडी रिसर्च स्कॉलर)
सस्य विज्ञान विभाग, सैम हिगिनबॉटम यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एंड साइंसेज, प्रयागराज (उ.प्र.)

परिचय

भारत में सर्दियों का मौसम लंबे समय से ठंडी रातों, सुहाने दिनों, उत्तर भारत में घने कोहरे तथा हिमालयी क्षेत्रों में बर्फबारी के लिए जाना जाता रहा है। यह मौसम कृषि, जनजीवन और पर्यावरण संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किंतु हाल के वर्षों में, विशेष रूप से 2025 के आसपास, सर्दियों के स्वरूप में स्पष्ट बदलाव देखने को मिला है। तापमान में असामान्य उतार-चढ़ाव और गर्म दौरों की बढ़ती आवृत्ति ने यह प्रश्न खड़ा कर दिया है कि क्या भारत अपनी पारंपरिक सर्दी खो रहा है।

सर्दियों के तापमान में परिवर्तन

हालिया जलवायु आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत में सर्दियों के दौरान औसत तापमान में वृद्धि हो रही है। पहले जहाँ रात का तापमान काफी नीचे चला जाता था, अब कई क्षेत्रों में न्यूनतम तापमान अपेक्षाकृत अधिक बना रहता है। दिन के समय भी तापमान सामान्य से अधिक दर्ज किया जा रहा है। यद्यपि कभी-कभी शीत लहरें आती हैं, लेकिन उनकी अवधि कम होती जा रही है, जिससे सर्दियों की स्थिरता प्रभावित हो रही है।

शीत लहरों और पाले की घटती आवृत्ति

उत्तर भारत में पारंपरिक रूप से शीत लहरें और पाला सर्दियों की प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। ये घटनाएँ कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। हाल के वर्षों में शीत लहरों की संख्या और तीव्रता में कमी देखी गई है। पाले की घटनाएँ भी अनियमित हो गई हैं, जिससे सर्दियों का ठंडा प्रभाव कमजोर होता जा रहा है।

वैश्विक और क्षेत्रीय जलवायु प्रणालियों की भूमिका

ला नीना जैसी वैश्विक जलवायु घटनाएँ भारत की सर्दियों को प्रभावित करती हैं। हाल के वर्षों में इन प्रणालियों का प्रभाव अस्थिर रहा है, जिसके कारण लगातार ठंड के बजाय अनियमित ठंड और गर्म दौर देखने को मिले। इसके अतिरिक्त, जेट स्ट्रीम की दिशा और तीव्रता में बदलाव के कारण पश्चिमी विक्षोभों की सक्रियता भी प्रभावित हुई है, जिससे सर्दियों की वर्षा और बर्फबारी में कमी आई है।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन और वैश्विक ऊष्मीकरण सर्दियों के बदलते स्वरूप का मुख्य कारण माने जा रहे हैं। ग्रीनहाउस गैसों की बढ़ती सांद्रता के कारण पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ रहा है, जिससे सर्दियों की अवधि कम होती जा रही है। ठंड के दिनों की संख्या घट रही है और मौसम अधिक अनिश्चित बनता जा रहा है।

कृषि और पर्यावरण पर प्रभाव

सर्दियों के कमजोर होने का सबसे अधिक प्रभाव कृषि पर पड़ रहा है। गेहूं, सरसों और अन्य रबी फसलों को उचित वृद्धि के लिए ठंडे मौसम की आवश्यकता होती है। गर्म सर्दियाँ फसलों के विकास को प्रभावित कर सकती हैं। बागवानी फसलें, जिन्हें पर्याप्त 'चिलिंग आवर्स' की जरूरत होती है, भी प्रभावित हो रही हैं। इसके साथ ही पारिस्थितिक तंत्र, पक्षियों का प्रवास और मृदा नमी संतुलन भी प्रभावित हो रहा है।

मानव स्वास्थ्य और सामाजिक प्रभाव

बदलती सर्दियों का प्रभाव मानव स्वास्थ्य और दैनिक जीवन पर भी पड़ रहा है। कोहरे और वायु प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है, जिससे श्वसन संबंधी रोगों में वृद्धि हो रही है। हिमालयी क्षेत्रों में शीतकालीन पर्यटन अनिश्चित बर्फबारी के कारण प्रभावित हो रहा है।

निष्कर्ष

हालाँकि यह कहना उचित नहीं होगा कि भारत पूरी तरह अपनी सर्दी खो चुका है, लेकिन हालिया जलवायु प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि सर्दियों का स्वरूप बदल रहा है। पारंपरिक सर्दी अब कम अवधि की, अधिक अनिश्चित और परिवर्तनीय बनती जा रही है। भविष्य में इन परिवर्तनों से निपटने के लिए बेहतर मौसम पूर्वानुमान, जलवायु-सहिष्णु कृषि पद्धतियों और जागरूकता की आवश्यकता है। भारत की सर्दी समाप्त नहीं हो रही है, बल्कि वह एक नए रूप में परिवर्तित हो रही है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

अर्ध-शुष्क एवं शुष्क क्षेत्रों में कृषि प्रबंधन के माध्यम से फसली जल उत्पादकता में वृद्धि

शची तिवारी, स्वर्णिमा तिवारी शोध छात्रा, वनस्पति विज्ञान विभाग, स्वामी विवेकानन्द सुभारती यूनिवर्सिटी मेरठ (उ.प्र.)

डॉ. कृशानु रिसर्च फेलो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल, (हरियाणा)

श्वेता यादव शोध छात्रा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, (हरियाणा)

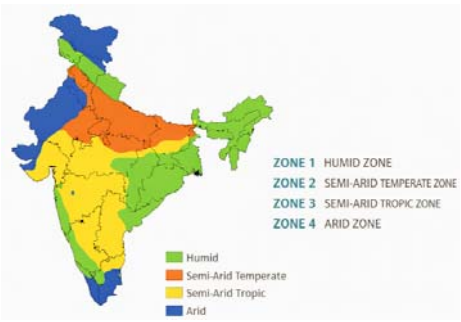

परिचय (Introduction): अर्ध-शुष्क (semi-arid) और शुष्क (dryland) क्षेत्रों की कृषि कम और अनिश्चित वर्षा, बार-बार आने वाले सूखे, उच्च वाष्पोत्सर्जन (evapotranspiration), तथा क्षीण मिट्टियों की विशेषताओं से पहचानी जाती है। ये परिस्थितियाँ प्रायः कम उपज, जल तनाव, तथा किसानों की बढ़ती असुरक्षा का कारण बनती हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की अनियमितता और तापमान में वृद्धि से जल संसाधनों पर दबाव और अधिक बढ़ने की संभावना है। ऐसे परिदृश्य में फसली जल उत्पादकता (Crop Water Productivity - CWP) – अर्थात प्रति इकाई जल उपयोग पर प्राप्त फसल उत्पादन – कृषि की स्थिरता का एक महत्वपूर्ण सूचक बन गया है।

जल उत्पादकता में सुधार केवल "कम पानी में अधिक उत्पादन" तक सीमित नहीं है, बल्कि यह लचीलापन (resilience) और दीर्घकालिक आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने का माध्यम भी है। वैज्ञानिक कृषि प्रबंधन (Agronomy) के माध्यम से बेहतर प्रथाओं का उपयोग इन नाजुक पारिस्थितिक तंत्रों में जल उत्पादकता बढ़ाने का प्रभावी उपाय प्रदान करता है।

जल-सीमित पर्यावरण के लिए फसल एवं किस्म चयन (Crop and Variety Selection for Water-Limited Environments)- जल उत्पादकता सुधार की दिशा में पहला कदम उन फसलों और किस्मों का चयन है जो अर्ध-शुष्क और शुष्क परिस्थितियों के अनुरूप हों। सूखा-सहिष्णु अनाज जैसे ज्वार, बाजरा और मक्का, तथा दलहनी फसलें जैसे अरहर (pigeon pea) और चना (chickpea) सीमित नमी में बेहतर प्रदर्शन करती हैं। हाल के वर्षों में प्रजनन (breeding) के क्षेत्र में प्रगति से अल्प-अवधि (short-duration) और शीघ्र परिपक्व होने वाली (early-maturing) किस्में विकसित हुई हैं, जो अंतिम चरण के सूखे (terminal drought) से बच निकलती हैं और उपलब्ध मिट्टी नमी का कुशल उपयोग करती हैं। उदाहरण के लिए, भारत में अल्प-अवधि वाली मूंगफली (groundnut) किस्मों ने अनिश्चित मानसूनी परिस्थितियों में पारंपरिक दीर्घ-अवधि वाली किस्मों की तुलना में अधिक उत्पादकता दिखाई है। इसी प्रकार, पूर्वी भारत में जलवायु-सहिष्णु धान किस्मों को अपनाने से उपज स्थिरता और जल उपयोग दक्षता दोनों में सुधार हुआ है।

मिट्टी की नमी बढ़ाने और जल हानि घटाने हेतु कृषि प्रथाएँ (Agronomic Practices to Enhance Soil Moisture and Reduce Losses)- शुष्क क्षेत्रों में जल उत्पादकता सुधार का आधार मिट्टी एवं जल संरक्षण है। संरक्षण जुताई (conservation tillage), अवशेष मल्चिंग (residue mulching) और समोच्च खेती (contour farming) जैसी विधियाँ बहाव को कम करती हैं और जल के अवशोषण को बढ़ाती हैं, जिससे मिट्टी में अधिक नमी उपलब्ध रहती है। मक्का और ज्वार जैसी फसलों में रिज एवं फरो (ridge and furrow) पद्धति तथा दलहनी फसलों में ब्रॉड-बेड फरो प्रणाली (broad-bed furrow system) वर्षा के जल को संरक्षित करने में अत्यधिक सफल रही हैं। फसल अवशेषों को मल्च के रूप में लगाने से वाष्पीकरण हानि में लगभग 30त्न तक की कमी आती है, साथ ही यह मिट्टी में जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव गतिविधि को भी बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त, हरी खाद (green manuring) और दलहनों का समावेश मिट्टी की संरचना व जल धारण क्षमता को सुधारते हैं, जिससे फसलों को अधिक जल उपलब्ध होता है।

पोषक प्रबंधन और जल उत्पादकता (Precision Nutrient Management and Water Productivity)- जल उत्पादकता सीधे पौधों की पोषण स्थिति से जुड़ी होती है। जब पौधों को पर्याप्त पोषण मिलता है तो वे उपलब्ध जल का अधिक कुशल उपयोग करते हैं। असंतुलित उर्वरक प्रबंधन से जड़ों की वृद्धि कमजोर होती है और मिट्टी से जल अवशोषण की क्षमता घट जाती है।

इसलिए स्थल-विशिष्ट पोषण प्रबंधन (Site-Specific Nutrient Management - SSNM) और उपकरण जैसे लीफ कलर चार्ट (LCC), ग्रीनसीकर (GreenSeeker) तथा SPAD मीटर, पोषक तत्वों की मांग के अनुसार उनकी आपूर्ति सुनिश्चित करने में उपयोगी हैं। दक्षिण एशिया के धान–गेहूँ प्रणालियों में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि सटीक नाइट्रोजन प्रबंधन से 15-20% तक उपज वृद्धि और सिंचाई की आवश्यकता में कमी आती है।

इसी प्रकार, समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन (Integrated Nutrient Management - INM) — जिसमें जैविक खाद को रासायनिक उर्वरकों के साथ मिलाया जाता है – मिट्टी के स्वास्थ्य को सुधारता है, पोषक तत्वों के रिसाव (leaching) को कम करता है और जल-सीमित परिस्थितियों में दीर्घकालिक उत्पादकता सुनिश्चित करता है।

कुशल सिंचाई और पूरक जल उपयोग (Efficient Irrigation and Supplemental Water Use)- अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में वर्षा अपर्याप्त और असमान रूप से वितरित होती है, इसलिए पूरक सिंचाई (supplemental irrigation) अत्यंत आवश्यक है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ (micro-irrigation systems) जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई ने जल उपयोग दक्षता को काफी बढ़ाया है, क्योंकि ये जल को सीधे जड़ क्षेत्र में पहुँचाती हैं। उदाहरण के लिए, कपास और मूंगफली में ड्रिप सिंचाई से 40-50% तक जल की बचत और 20-30% तक उपज वृद्धि दर्ज की गई है। जहाँ सिंचाई जल बहुत सीमित है, वहाँ अल्प सिंचाई (deficit irrigation) की रणनीतियाँ–अर्थात फूल आने और दाना भरने जैसे महत्वपूर्ण चरणों में ही जल देना–जल उत्पादकता को अधिकतम करने में सहायक होती हैं। इसके अलावा, वर्षा जल संचयन (rainwater harvesting) और फार्म पॉन्ड (farm ponds) जैसे उपायों से किसान अतिरिक्त वर्षा जल को संरक्षित कर सकते हैं और सूखे समय में पूरक सिंचाई के लिए उपयोग कर सकते हैं।

फसल विविधीकरण और एकीकृत प्रणालियाँ (Crop Diversification and Integrated Systems)- शुष्क क्षेत्रों में एक ही फसल (monocropping) की खेती जल तनाव की स्थिति में विफलता का जोखिम बढ़ाती है। फसल विविधीकरण (diversification) के तहत दलहनी, तिलहनी और सूखा-सहिष्णु अनाजों को शामिल करने से जोखिम घटता है, मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और जल का उपयोग अधिक कुशलता से होता है। अंतर-फसली प्रणाली (intercropping systems) जैसे ज्वार + अरहर या मक्का + लोबिया जल का बेहतर उपयोग करती हैं क्योंकि इन फसलों की जड़ गहराई और छत्र संरचना भिन्न होती है। इसी प्रकार, कृषि-वानिकी प्रणाली (agroforestry systems)—जहाँ फसलों के साथ पेड़ लगाए जाते हैं–सूक्ष्म जलवायु नियंत्रण, वाष्पोत्सर्जन में कमी, मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि और आय के विविधीकरण जैसे अनेक लाभ देती हैं। उदाहरणतः अफ्रीका में पार्कलैंड कृषि-वानिकी प्रणाली, जहाँ बाजरा को Faidherbia albida वृक्षों के नीचे उगाया जाता है, ने एकल फसल प्रणाली की तुलना में अधिक उपज और बेहतर जल उत्पादकता दिखाई है।

जलवायु-स्मार्ट कृषि और भविष्य की दिशा (Climate-Smart Agronomy and Future Directions)- वर्षा की बढ़ती अनिश्चितता के साथ जलवायु-स्मार्ट कृषि प्रथाओं (climate-smart agronomic practices) का महत्व तेजी से बढ़ रहा है। मौसमी पूर्वानुमानों के आधार पर बुवाई तिथियों का समायोजन, लचीली फसल चक्र व्यवस्था (resilient crop rotations) अपनाना, और वास्तविक समय मौसम-आधारित सलाह (weather-based advisories) का उपयोग किसानों को जल उपयोग के बेहतर निर्णय लेने में सहायता देता है। डिजिटल कृषि (digital agriculture) और रिमोट सेंसिंग (remote sensing) उपकरण अब फसल वृद्धि, मिट्टी की नमी और वाष्पोत्सर्जन की निगरानी करने में सक्षम हैं, जिससे जल उत्पादकता बढ़ाने हेतु सटीक हस्तक्षेप संभव हो सका है। नीतिगत स्तर पर, कृषि प्रथाओं को जलग्रहण प्रबंधन (watershed management) और सामुदायिक जल-साझाकरण संस्थाओं से जोड़ना जल संसाधनों के न्यायसंगत और सतत उपयोग को सुनिश्चित करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)- अर्ध-शुष्क और शुष्क क्षेत्रों में फसली जल उत्पादकता में वृद्धि खाद्य सुरक्षा, लचीलापन और स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु अत्यंत आवश्यक है। कृषि प्रबंधन आधारित उपाय–जैसे फसल विविधीकरण, संरक्षण कृषि, सटीक पोषण प्रबंधन, कुशल सिंचाई तथा वृक्षों व फसलों का एकीकरण–सीमित जल में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के व्यावहारिक मार्ग प्रदान करते हैं। इन प्रथाओं के सफल कार्यान्वयन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण (holistic approach) आवश्यक है जो किसान के ज्ञान, आधुनिक तकनीक और सहायक नीतियों का समन्वय करे। अंततः, "जल उपयोग" के बजाय "जल उत्पादकता" को प्राथमिकता देकर कृषि विज्ञान शुष्क क्षेत्रों की खेती को अधिक सहिष्णु, उत्पादक और सतत प्रणाली में परिवर्तित कर सकता है, जो सीमित जल संसाधनों के बावजूद बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

वर्मीवॉश : मिट्टी और फसल सुधार का प्राकृतिक उपाय

दीपचंद निषाद (शोध छात्र) सस्य विज्ञान विभाग वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर (उ.प्र.)
आदित्य भूषण श्रीवास्तव कृषि अर्थशास्त्र विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)
शिवम् श्रीवास्तव (शोध छात्र) जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग विभाग, डॉ राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या (उ.प्र.)
कार्तिकेय श्रीवास्तव (शोध छात्र) जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग विभाग
संदीप कुमार (शोध छात्र) सस्य विज्ञान विभाग
चन्दन कुमार महाराजा सुहेल देव विश्वविद्यालय आज़मगढ़ (उ.प्र.)

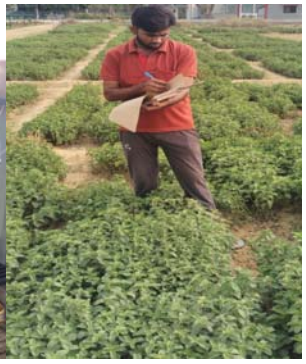

* लाभकारी सूक्ष्मजीव

वर्मीवॉश क्या है

वर्मीवॉश केंचुओं द्वारा जैविक कचरे (मेंथाल मिंट अवशेष) को पचाने की प्रक्रिया में निकलने वाला एक तरल जैव उर्वरक है। यह पौधों के लिए पोषक तत्वों, एंजाइम, हार्मोन और लाभकारी सूक्ष्मजीवों से भरपूर होता है।

वर्मीवॉश बनाने की विधि (Preparation Method)

आवश्यक सामग्री

* सीमेंट/प्लास्टिक का टैंक या ड्रम * ईंट/कंकड़
* रेत * गोबर
* सूखे पत्ते/फसल अवशेष/मेंथाल मिंट अवशेष
* केंचुए (Eisenia foetida, Eudrilus eugeniae, Perionyx excavatus)
* साफ पानी
* नल या पाइप (वर्मीवॉश निकालने के लिए)

संरचना (Structure):

1. नीचे की परत -कंकड़/ईंट (4.6 सेमी)
2. दूसरी परत -मोटी रेत (2.3 सेमी)
3. तीसरी परत -सड़ी गोबर और जैविक कचरा (50-60 सेमी)
4. ऊपर-केंचुए डालें और नमी बनाए रखें

प्रक्रिया (Process):

* 15-20 दिनों में केंचुए जैविक पदार्थ को पचा लेते हैं।
* टैंक के ऊपर से धीरे-धीरे पानी डालते हैं।
* नीचे लगे नल से हल्का भूरा तरल निकलता है कृ यही वर्मीवॉश है।
* इसे छानकर छायादार जगह में संग्रह करें।

वर्मीवॉश की संरचना (Nutrient Composition)

* नाइट्रोजन (N) * फॉस्फोरस (P) * पोटाश (K)
* कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन
* पौध वृद्धि हार्मोन (Auxins, Gibberellins)

वर्मीवॉश का प्रयोग (Uses)

बीज उपचार में प्रयोग

* 1 लीटर वर्मीवॉश 5 लीटर पानी
* बीज 8-10 घंटे भिगोएं
* लाभः अंकुरण अच्छा होता है, रोग कम लगते हैं।

पत्तियों पर छिड़काव (Foliar Spray):

* 1 लीटर वर्मीवॉश+ 10 लीटर पानी
* 15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें
* **लाभः** पौधों की वृद्धि तेज, हरी पत्तियाँ, कीट कम लगते हैं।

मिट्टी में डालना– * 2-3 लीटर वर्मीवॉश प्रति एकड़ सिंचाई जल के साथ
* **लाभः** मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है जड़ें मजबूत होती हैं।

नर्सरी पौध में प्रयोग– * 1: 10 अनुपात में घोल बनाकर सप्ताह में एक बार डालें
* **लाभः** पौध स्वस्थ और मजबूत बनती है।

गमले और बागवानी में– * महीने में 2 बार जड़ों में डालें या पत्तियों पर स्प्रे करें
* **लाभः** फूल अधिक लगते हैं। पौधे चमकदार और स्वस्थ रहते हैं।

वर्मीवॉश से होने वाले लाभ (Benefits)

पौधों पर लाभ

* तेज वृद्धि और अच्छी पैदावार
* फूल और फल अधिक लगते हैं
* रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है

मिट्टी पर लाभ

* मिट्टी की जैविक संरचना सुधरती है
* सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ती है
* जल धारण क्षमता बढ़ती है

किसान को लाभ

* रासायनिक खाद पर खर्च कम
* कम लागत में अधिक उत्पादन
* जैविक खेती को बढ़ावा

पर्यावरणीय लाभ

* मिट्टी, जल और वायु प्रदूषण कम
* लाभकारी कीट और जीव सुरक्षित रहते हैं
* टिकाऊ खेती प्रणाली विकसित होती है

सावधानियां

* वर्मीवॉश को धूप में न रखें।
* प्रयोग से पहले छानना आवश्यक है।
* अधिक मात्रा में प्रयोग न करें।
* हमेशा ताजा वर्मीवॉश का प्रयोग करें।

निष्कर्ष

वर्मीवॉश एक सस्ताए सरल और अत्यंत प्रभावी जैव उर्वरक है। इसके नियमित प्रयोग से खेती अधिक उपजाऊ, टिकाऊ और लाभकारी बनती है। यह जैविक खेती का एक महत्वपूर्ण घटक है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

रोबोटिक्स और ऑटोमेशन के माध्यम से बागवानी में नवाचार

शिवम मौर्य (परास्नातक छात्र) उद्यान विज्ञान विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर

बागवानी, कृषि की वह विशिष्ट शाखा जो फलों, सब्जियों, सजावटी पौधों और फूलों की खेती, उत्पादन और प्रबंधन से संबंधित है, वर्तमान में गहन तकनीकी परिवर्तन का सामना कर रही है। ताजे उत्पादों की वैश्विक मांग में वृद्धि, श्रम की कमी, जलवायु में अस्थिरता और पर्यावरणीय स्थिरता की चुनौतियों के कारण बागवानी प्रथाओं में रोबोटिक्स और ऑटोमेशन तकनीकों का समावेश तेजी से बढ़ रहा है। ये तकनीकें न केवल मानव श्रम पर निर्भरता को कम कर रहा हैं, बल्कि फसलों, जल, पोषक तत्वों और सूक्ष्मजलवायु परिस्थितियों के सटीक प्रबंधन की अनुमति भी देता हैं। जैसे शहरीकरण के वजह से उपजाऊ भूमि की उपलब्धता घट रही है और सतत उत्पादन की आवश्यकता बढ़ रही है, बागवानी रोबोटिक्स उत्पादकता, संसाधन उपयोग दक्षता और पर्यावरणीय संरक्षण को अधिकतम करने के लिए एक रणनीतिक उपकरण के रूप में उभर रहा है।

बागवानी में रोबोटिक्स और ऑटोमेशन की वर्तमान स्थिति: आधुनिक बागवानी प्रणालियाँ स्वायत्त रोबोटिक्स, सेंसर नेटवर्क, कंप्यूटर विज़न, मशीन लर्निंग, और एआई आधारित निर्णय लेने वाले एल्गोरिदम का उपयोग करता हैं जिससे फसल की वृद्धि और कटाई संचालन को अधिकतम किया जा सके। ये तकनीकें विभिन्न क्षेत्रों में लागू की जा रही हैं:

1.स्वायत्त कृषि प्रणालियाँ: जीपीएस और एआई एल्गोरिदम से लैस स्वायत्त कृषि वाहन जटिल बाग़ के लेआउट में नेविगेट के साथ-साथ न्यूनतम मानवीय हस्तक्षेप के साथ बुवाई, सिंचाई और फसल कटाई कर सकते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि ऐसी प्रणालियाँ श्रम पर निर्भरता को 40-60% तक कम कर देती हैं और संचालन दक्षता और फसल प्रबंधन में एकरूपता बढ़ाती हैं।

2.रोबोटिक छंटाई और प्रशिक्षण प्रणालियाँ: डीप लर्निंग एल्गोरिदम और 3-डी इमेजिंग द्वारा संचालित रोबोटिक प्रूनिंग मशीनें पौधों की संरचना का विश्लेषण कर अनावश्यक या कमजोर शाखाओं को चुनकर काटती हैं। यह सटीकता कैनोपी संरचना, सूरज की रोशनी का प्रवेश, और उच्च फसल उपज को बढ़ावा देती है। हाल के शोध बताते हैं कि एआई- निर्देशित छंटाई पौधों के विकास में समानता बढ़ाती है, श्रम लागत को कम करती है और उच्च घनत्व वाले बागों में सतत विकास प्रबंधन का समर्थन करती है।

3.स्वचालित ग्रीनहाउस प्रणाली: ग्रीनहाउस ऑटोमेशन सेंसर आधारित पर्यावरण निगरानी, एक्ट्यूएटर्स और एआई नियंत्रकों का उपयोग करके तापमान, आर्द्रता, कार्बन डाई आक्साइड स्तर और प्रकाश को नियंत्रण किया जा रहा है ताकि पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाई जा सकें। उन्नत प्रणाली भविष्यवाणी विश्लेषण को शामिल करती है, जो जलवायु नियंत्रण, पोषक तत्वों की मात्रा और रोग निवारण के लिए उपयोगी है, जिससे फसल की गुणवत्ता और दक्षता में महत्वपूर्ण सुधार होता है।

4.रोबोटिक कटाई और छंटाई: रोबोटिक हार्वेस्टर कंप्यूटर विज़न, स्पेक्ट्रल इमेजिंग और फोर्स सेंसर का उपयोग करके पके हुए फलों और सब्जियों की पहचान, चयन और कटाई करते हैं। ये प्रणालियाँ कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम करती हैं, उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखती हैं और संचालन लागत को कम करती हैं। स्वचालित छंटाई तंत्र के साथ एकीकृत होने पर, उत्पाद का वर्गीकरण आकार, रंग और दृढ़ता के आधार पर किया जाता है, जो उपभोक्ता

कृषि में रोबाटिक मशीन का उपयोग

मानकों और सप्लाई चेन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

प्रौद्योगिकी ढांचा और नवाचार: बागवानी रोबोटिक्स में तकनीकी पारिस्थितिकी तंत्र में निम्नलिखित घटक शामिल हैं:

सेंसर नेटवर्क: मिट्टी की नमी, पोषक तत्वों की मात्रा, पी.एच. तापमान और प्रकाश स्तर को वास्तविक समय में मॉनिटर करने के लिए संवेदनशील सेंसर।

क्लाउड प्लेटफ़ॉर्म: रोबोटिक उपकरणों के केंद्रीकृत डेटा प्रसंस्करण, भंडारण और दूरस्थ नियंत्रण के लिए।

एआई और मशीन लर्निंग मॉडल: फसल वृद्धि का पूर्वानुमान मॉडलिंग, रोग पहचान, और स्वायत्त निर्णय लेने के लिए।

रोबोटिक तंत्र: मोबाइल रोबोट, ड्रोन, मैनिपुलेटर और रोबोटिक आर्म्स जो कृषि कार्यों के लिए उपयोग किए जाते हैं।

बागवानी में रोबोटिक्स और ऑटोमेशन के लाभ

1.श्रम दक्षता में वृद्धि: बागवानी में श्रम की कमी और मजदूरी में वृद्धि महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। ऑटोमेशन मौसमी श्रम पर निर्भरता को कम करता है और किसानों को उच्च-मूल्य निर्णय लेने वाले कार्यों में मानव संसाधनों को आवंटित करने की अनुमति देता है।

2.उत्पादकता और उपज में सुधार: सटीक छंटाई, अनुकूल सिंचाई और स्वचालित पोषक तत्व प्रबंधन प्रकाश संश्लेषण दक्षता, फल उत्पाद और हार्वेस्ट इंडेक्स को बढ़ाते हैं। अध्ययन रिपोर्टों के अनुसार टमाटर, स्ट्रॉबेरी और अंगूर जैसी उच्च-मूल्य फसलों में रोबोटिक हस्तक्षेप से उपज में 15-30% तक सुधार देखा गया है।

3.संसाधन उपयोग दक्षता और सततता: सटीक सिंचाई, फ़र्टिगेशन और लक्षित कीट नियंत्रण पानी की खपत को 30-50त तक कम करते हैं और रासायनिक अपवाह को न्यूनतम करके पर्यावरणीय रूप से सतत कृषि को बढ़ावा देते हैं।

4.डेटा-आधारित निर्णय लेना: सेंसर-समर्थित निगरानी और एआई के संयोजन से फसल स्वास्थ्य, मिट्टी की स्थिति और रोग प्रकोप के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। डेटा-संचालित प्रबंधन समय पर हस्तक्षेप सुनिश्चित करता है और बागवानी संचालन में अनुमान लगाने की आवश्यकता को कम करता है।

चुनौतियाँ और सीमाएँ: फायदे होने के बावजूद कई चुनौतियाँ व्यापक अपनाने में बाधक हैं:

उच्च प्रारंभिक निवेश: उन्नत रोबोटिक्स, सेंसर और एआई सिस्टम के लिए पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता होती है, जो छोटे किसानों के लिए पहुंच को सीमित करता है।

तकनीकी विशेषज्ञता: संचालन और रखरखाव के लिए कुशल कर्मियों की आवश्यकता होती है, जो जटिल एआई - आधारित सिस्टम को संभाल सकें।

इंफ्रास्ट्रक्चर की आवश्यकताएँ: भरोसेमंद बिजली, इंटरनेट कनेक्टिविटी और सुरक्षित डेटा भंडारण आवश्यक हैं, जो सभी क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं हैं।

पर्यावरणीय असमानता: मिट्टी की भिन्नता, सूक्ष्मजलवायु अंतर और फसल-विशिष्ट प्रतिक्रियाएँ एक ही रोबोटिक सिस्टम की प्रभावशीलता को विभिन्न क्षेत्रों में सीमित कर सकती हैं।

भविष्य की संभावनाएँ और उभरते रुझान

1.एआई -संचालित अनुकूलन प्रणाली: भविष्य में बागवानी रोबोट पर्यावरणीय असमानताओं के प्रति स्वायत्त रूप से अनुकूलित होने हेतु डीप रिइन्फोर्समेंट लर्निंग और पूर्वानुमानात्मक मॉडलिंग का अधिक उपयोग करेंगे। यह तकनीक पोषक तत्व प्रबंधन को अनुकूलित करने, पौधों पर तनाव का तात्कालिक उत्तर देने और फसल उत्पादन को अधिकतम करने में सक्षम होगी। साहित्य में बताया गया है कि अनुमानित एआई मॉडलिंग से फसलों की वृद्धि दर, रोग प्रतिरोधक क्षमता और जल उपयोग दक्षता में सुधार संभव है।

2.मानव और रोबोट के सहयोग: हाइब्रिड सिस्टम, जो मानव पर्यवेक्षण को रोबोटिक सटीकता के साथ एकीकृत करते हैं, दक्षता में वृद्धि करते हुए लचीलापन बनाए रखेंगे। इस प्रणाली में रोबोट दोहराए जाने वाले और उच्च-सटीक कार्यों को निष्पादित करते हैं, जबकि मानव रणनीतिक योजना, गुणवत्ता मूल्यांकन और जटिल निर्णयों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। अध्ययन दर्शाते हैं कि मानव-रोबोट सहयोगी मॉडल से कार्यकुशलता में 25-40% सुधार और श्रम लागत में उल्लेखनीय कमी आती है।

3.लागत में कमी: रोबोटिक उत्पादन में बद्धता और प्रौद्योगिकी में नवाचार लागत को कम करेंगे, जिससे छोटे किसानों और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में अपनाने की संभावना बढ़ेगी। आधुनिक साहित्य में बताया गया है कि मैन्युफैक्चरिंग तकनीकों और एआई-सक्षम सॉफ्टवेयर का मानकीकरण छोटे स्तर के किसानों हेतु रोबोटिक कृषि उपकरण सुलभ बना सकता है।

4.स्मार्ट बागवानी पारिस्थितिकी तंत्र: क्लाउड कंप्यूटिंग, और एआई उपकरणों के साथ एकीकृत होने पर, ये प्रणालियाँ समग्र, डेटा-संचालित बागवानी पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करेंगी। इससे उत्पादन क्षमता, स्थिरता और जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन बढ़ेगा। अध्ययन में यह पाया गया है कि स्मार्ट कृषि नेटवर्क से जल और पोषक तत्व प्रबंधन में अधिक सटीकता आती है, साथ ही रोग और कीट नियंत्रण में समय पर हस्तक्षेप संभव होता है।

निष्कर्ष: बागवानी रोबोटिक्स और ऑटोमेशन आधुनिक कृषि के लिए एक परिवर्तनकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। स्वायत्त प्रणालियों, एआई, मशीन लर्निंग और उन्नत सेंसर तकनीकों का उपयोग करके ये नवाचार दक्षता, उत्पादकता और स्थिरता बढ़ाते हैं और श्रम की कमी की समस्याओं का समाधान करते हैं। हालांकि, उच्च प्रारंभिक लागत और तकनीकी विशेषज्ञता जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, लेकिन निरंतर प्रौद्योगिकी विकास, लागत में कमी और मानव-रोबोट सहयोगी मॉडल बागवानी रोबोटिक्स को सतत, उच्च-मूल्य फसल उत्पादन के लिए व्यवहार्य समाधान बनाते हैं। जलवायु असंतुलन और संसाधन में कमी के युग में, रोबोटिक्स वैश्विक बागवानी उत्पादन को सुरक्षित करने के लिए एक अनुकूलनीय, पैमाने योग्य और पर्यावरणीय रूप से जिम्मेदार मार्ग प्रदान करता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

पनीर: परंपरा, पोषण और आधुनिक डेयरी का उद्योग

विशाल कुमार, अनु कुमारी कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण महाविद्यालय, सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

परिचय

पनीर भारतीय भोजन संस्कृति का एक ऐसा दुग्ध उत्पाद है, जिसने सदियों से अपनी स्वीकार्यता, लोकप्रियता और पोषण-संपन्नता के कारण विशेष स्थान बनाया है। भारतीय रसोई से लेकर आधुनिक खाद्य उद्योग तक, पनीर का उपयोग लगातार बढ़ रहा है। यह न केवल शाकाहारी प्रोटीन का उत्तम स्रोत है, बल्कि अपनी बहुमुखी उपयोगिता के कारण घर, होटल, रेस्तराँ और फास्टःफूड उद्योग में समान रूप से प्रिय है। स्वास्थ्य, स्वाद और सांस्कृतिक महत्व–इन तीनों का अद्भुत मेल पनीर को भारतीय खाद्य प्रणाली का एक अपरिवर्तनीय घटक बनाता है।

पनीर का ऐतिहासिक महत्व

पनीर का उल्लेख भारतीय उपमहाद्वीप के कई प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। 'दधि-छन्न' और 'चूर्णामृत' जैसे शब्द पनीर जैसे उत्पादों की प्राचीन शैली का संकेत देते हैं। माना जाता है कि पनीर का विकास मुख्यतः उत्तर भारत में हुआ और बाद में मुगल काल में इसके व्यंजनों की विविधता बढ़ी। समय के साथ वह पूरे देश की रसोइयों में स्थापित हुआ। आज पनीर भारतीय शाकाहारी भोजन का सांस्कृतिक पहचान बन चुका है।

निर्माण प्रक्रिया: एक वैज्ञानिक और पारंपरिक तकनीक

पनीर निर्माण की तकनीक दिखने में सरल है, लेकिन गुणवत्तापूर्ण पनीर तैयार करने के लिए कई वैज्ञानिक और तकनीकी पहलुओं का ध्यान रखना आवश्यक है। पनीर बनाने के लिए सबसे पहले ताज़ा दूध को लगभग 82-85°C तक गर्म किया जाता है। इसके बाद इसे नींबू रस, सिरका या फूड-ग्रेड एसिड से फाड़ा जाता है। दही और मट्ठा अलग हो जाने पर दही को मलमल के कपड़े में छानकर दबाव दिया जाता है ताकि अतिरिक्त नमी निकल जाए और पनीर ठोस रूप में जम सके। पनीर की बनावट, कठोरता, लोच, रंग और स्वाद–ये सभी दूध की वसा मात्रा, अम्लीकरण स्तर, तापमान और दाब के नियंत्रण पर आधारित होते हैं। औद्योगिक उत्पादन में अत्यधिक स्वच्छता, स्टेनलेसःस्टील उपकरण और नियंत्रित तापमान का उपयोग करते हुए पनीर की शेल्फ लाइफ बढ़ाने के लिए वैक्यूम पैकेजिंग और रेफ्रिजरेशन तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

पनीर का पोषण मूल्य: * पनीर पोषण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। इसमें उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम, विटामिन B12, राइबोफ्लेविन और आवश्यक अमीनो एसिड पाए जाते हैं। * यह हड्डियों और दाँतों के स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। * बच्चों, गर्भवती महिलाओं और एथलीट्स के लिए पनीर ऊर्जा का एक सशक्त स्रोत माना जाता है। * पनीर का प्रोटीन धीरे पचता है, जिससे लंबे समय तक तृप्ति बनी रहती है और वजन नियंत्रण में सहायता मिलती है। * लो-फैट पनीर स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। * विविध उपयोग और पनीर आधारित उत्पाद * पनीर की बहुमुखी उपयोगिता इसे अन्य दुग्ध उत्पादों से अलग करती है। पारंपरिक भारतीय व्यंजन जैसे पनीर टिक्का, पनीर बटर मसाला, शाही पनीर, पालक पनीर, मटर पनीर आदि के साथ-साथ पश्चिमी फ्यूज़न भोजन में भी इसका उपयोग तेजी से बढ़ रहा है।

इसके अलावा पनीर से निम्नलिखित औद्योगिक/आधुनिक उत्पाद भी तैयार किए जा रहे हैं— * पनीर नगेट्स, पनीर बाइट्स * स्मोक्ड पनीर * हर्बल और फ्लेवर्ड पनीर * लो-फैट पनीर * पनीर आधारित रेडी-टू-कुक उत्पाद* फूड प्रोसेसिंग इंडस्ट्री में पनीर मूल्य संवर्धन का एक प्रभावी माध्यम भी बन चुका है।

पनीर उद्योग: बढ़ता बाजार और आर्थिक संभावना

भारत विश्व का सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश है, जिसने पनीर उद्योग को तीव्र गति से विकसित किया है। बढ़ती जनसंख्या, शहरों में रहने वाले लोगों की बदलती जीवनशैली, रेडी-टू-ईट उत्पादों की मांग और होटल एवं रेस्तराँ उद्योग के विस्तार ने पनीर को एक मजबूत बाजार प्रदान किया है। आज कई डेयरी कंपनियाँ उन्नत तकनीक का उपयोग करते हुए पैकेज्ड पनीर, स्लाइस पनीर, क्यूब पनीर और फोर्टिफाइड पनीर का उत्पादन कर रही हैं। आधुनिक पैकेजिंग पनीर की गुणवत्ता, सुरक्षा और शेल्फ लाइफ सुनिश्चित करती है, जिससे इसका व्यवसायिक विस्तार ग्रामीण और शहरी दोनों स्तरों पर बढ़ा है।

गुणवत्ता नियंत्रण और खाद्य सुरक्षा

* पनीर अत्यधिक नमी युक्त उत्पाद होने के कारण जल्दी खराब हो सकता है। इसलिए इसके उत्पादन, पैकेजिंग, परिवहन और भंडारण में स्वच्छता और गुणवत्ता नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है।

उच्च गुणवत्ता वाले पनीर की विशेषताएँ: * सफेद या हल्का क्रीम रंग * चिकनी, मुलायम और समान बनावट * ताज़ा दुग्धमय सुगंध * किसी भी प्रकार का खट्टापन या चिपचिपापन नहीं * फूड सेफ्टी एंड स्टैंडर्ड्स अथॉरिटी ऑफ इंडिया ने पनीर के लिए मानक निर्धारित किए हैं जिनका पालन डेयरी इकाइयों के लिए अनिवार्य है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण और नवीन अनुसंधान- पनीर निर्माण में उत्पन्न मट्ठा का प्रबंधन डेयरी उद्योग की प्रमुख चुनौती है। आज इस अपशिष्ट के उपयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है, जैसे– * वे प्रोटीन पाउडर * स्पोर्ट्स न्यूट्रिशन ड्रिंक्स * बेकरी और पेय उद्योग में अनुप्रयोग * इसके अलावा शोधकर्ता स्वास्थ्यवर्धक पनीर विकसित कर रहे हैं जिसमें प्रोबायोटिक्स, हर्बल अर्क, माइक्रोएन्कैप्सुलेटेड तेल, ओमेगा-3 फैटी एसिड और एंटीऑक्सीडेंट समृद्ध घटकों को जोड़कर इसकी पोषण गुणवत्ता को बढ़ाया जा रहा है।

निष्कर्ष: पनीर भारतीय आहार का न केवल स्वादिष्ट हिस्सा है, बल्कि स्वास्थ्य, पोषण और आर्थिक विकास का भी एक महत्वपूर्ण साधन है। बदलते खानपान रुझान, बढ़ती शहरी आबादी और उन्नत डेयरी तकनीकों ने पनीर को आधुनिक खाद्य प्रणाली में विशिष्ट स्थान दिलाया है। यह शाकाहारियों के लिए प्रोटीन का श्रेष्ठ स्रोत और डेयरी उद्योग के लिए राजस्व का महत्वपूर्ण घटक है। परंपरा से लेकर नवाचार तक की यात्रा में पनीर ने यह सिद्ध किया है कि वह केवल एक खाद्य पदार्थ नहीं, बल्कि भारतीय जीवन शैली का अभिन्न अंग है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

मौसम फसलों व सब्जियों के लिए अनुकूल समय

समरेन्द्र कुमार यादव अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)
अंकित शर्मा अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)
कु. सुस्मिता कुमारी मौर्या (पीएचडी स्कॉलर पादप रोग विज्ञान चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर

भारत में जनवरी का महीना रबी सीजन का महत्वपूर्ण समय होता है। इस समय ठंड का असर कम होने लगता है और मौसम फसलों व सब्जियों हेतु अनुकूल हो जाता है।

कुछ सब्जियाँ ऐसी होती हैं जिन्हे उगा कर हम अच्छा मुनाफ़ा कर सकते हैं- भारतीय किसानों के लिए यह महीना न केवल मौसमी सब्जियों की खेती के लिए उपयुक्त है बल्कि कुछ महत्वपूर्ण फसलों की बुवाई और देखभाल के लिए भी बेहद महत्वपूर्ण है। हम जानेंगे कि जनवरी के महीने में कौनकौनसी फसलें और सब्जियां बोई जा सकती हैं और उनके लिए आवश्यक तैयारी क्या है।

जनवरी में बोई जाने वाली मुख्य फसलें

1. **गेहूं:** गेहूं की बुवाई रबी मौसम में की जाती है। जनवरी में गेहूं की बुवाई मुख्यतः उन क्षेत्रों में की जाती है जहां ठंड कम होती है।

तैयारी: अच्छी जल निकासी वाली दोमट मिट्टी गेहूं हेतु उपयुक्त होती है। खेत को जोतकर और समतल कर बीज बोएं।

देखभाल: नियमित सिंचाई करें और खरपतवार हटाते रहें।

2. **जौ:** जौ ठंडे मौसम में उगने वाली फसल है। यह कम पानी में भी अच्छी पैदावार देती है।

तैयारी: मिट्टी को अच्छी तरह से जोतें और नव्यकोष जैविक खाद का प्रयोग करें।

देखभाल: जौ के पौधों को समय-समय पर खरपतवार से बचाना जरूरी है।

3. **चना :** चना की खेती के लिए ठंडा और शुष्क मौसम सबसे उपयुक्त है।

तैयारी: हल्की और दोमट मिट्टी चना के लिए सही रहती है। बुवाई से पहले नव्यकोष जैविक खाद का प्रयोग करें।

देखभाल: चने के पौधों को पानी की अधिक आवश्यकता नहीं होती लेकिन समय-समय पर सिंचाई जरूरी है।

4. **सरसों:** सरसों की खेती ठंड के मौसम में बेहतर होती है।

तैयारी: बलुई दोमट मिट्टी सरसों की खेती के लिए सही मानी जाती है।

देखभाल: पौधों की नियमित निगरानी करें और खरपतवार हटाएं।

जनवरी में उगाई जाने वाली सब्जियां

मटर: मटर की खेती के लिए ठंडा मौसम अनुकूल है।

तैयारी: बीज बोने से पहले मिट्टी को भलीभांति तैयार करें और जैविक खाद डालें।

देखभाल: मटर के पौधों को सप्ताह में एक बार पानी दें और पौधों को सहारा देने हेतु बांस का इस्तेमाल करें।

2. **पालक:** पालक ठंड के मौसम में बहुत अच्छी पैदावार देता है।

तैयारी: मिट्टी को भलीभांति जोतें और बीज को 2-3 सेंटीमीटर गहराई में बोएं।

देखभाल: नियमित सिंचाई करें और खरपतवार हटाएं।

3. **धनिया:** धनिया की खेती ठंडे मौसम में अच्छी होती है।

तैयारी मिट्टी में नमी बनाए रखें और नव्यकोष जैविक खाद का प्रयोग करें।

देखभाल: पौधों को सूखा न होने दें और समय-समय पर खरपतवार हटाएं।

4. **गाजर:** गाजर की खेती हेतु ठंडा मौसम आदर्श है।

तैयारी: मिट्टी को गहराई तक जोतें और बीज बोने से पहले नमी बनाए रखें।

देखभाल: पौधों को नियमित रूप से पानी दें और खरपतवार से बचाएं।

5. **मूली:** मूली की फसल ठंड में तेजी से बढ़ती है।

तैयारी: मिट्टी को भलीभांति तैयार करें और बीज को 2-3 सेंटीमीटर गहराई में बोएं।

देखभाल: पौधों को समय-समय पर पानी दें।

6. **बैंगन:** बैंगन की खेती हेतु ठंडा मौसम अनुकूल है।

तैयारी: मिट्टी को नव्यकोष जैविक खाद से तैयार करें।

देखभाल: पौधों को कीटों से बचाने हेतु जैविक कीटनाशकों का इस्तेमाल करें।

जनवरी में खेती करने के लिए अन्य तैयारी

1.मिट्टी की जांच: फसल या सब्जी की बुवाई से पहले मिट्टी की जांच करें।

2.सिंचाई की व्यवस्था: खेत में पानी की उचित व्यवस्था करें। ज्यादा या कम पानी फसल को नुकसान पहुंचा सकता है।

3.खरपतवार नियंत्रण: समय-समय पर खरपतवार को हटाएं।

4.फसल सुरक्षा: फसल को कीटों और बीमारियों से बचाने के लिए जैविक कीटनाशकों का इस्तेमाल करें।

जनवरी में खेती करने के फायदे

1.ठंड के कारण कीट और बीमारियां कम होती हैं।

2.फसल की गुणवत्ता बेहतर होती है।

3.बाजार में मौसमी सब्जियों की अच्छी मांग रहती है।

जनवरी का महीना भारतीय किसानों हेतु खेती का सुनहरा अवसर है। इस महीने में सही योजना और तैयारी के साथ फसल और सब्जियों की बुवाई करने से न केवल उत्पादन बढ़ता है बल्कि बाजार में भी अच्छा मूल्य प्राप्त होता है।

किसान भाई इन सुझावों का पालन कर अपनी खेती को अधिक लाभकारी बना सकते हैं।

परिचय: सर्दियों के महीने सब्जी की खेती के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। सही फसल का चयन करना किसानों को आर्थिक रूप से सफल बना सकता है। यहां सूचीबद्ध सब्जियां न केवल अधिक उपज देती हैं, बल्कि बाजार में भी अच्छी कीमत पर बिकती हैं।यदि आप जनवरी और फरवरी में उगाने के लिए सबसे अच्छी फसलों की तलाश कर रहे हैं, तो इन शीर्ष सब्जी फसलों और उनकी खेती की जानकारी के लिए पढ़ते रहें।

1. **भिंडी:** भिंडी एक अत्यधिक लाभदायक फसल है, जो सर्दियों के महीनों में विशेष रूप से मध्यम जलवायु में अच्छी तरह से उगती है।

बुवाई का समय: जनवरी-फरवरी।

बीज दर: प्रति एकड़ 2.5-3 किलोग्राम।

अपेक्षित उपज: प्रति एकड़ 4-6 टन।

बाजार लाभ: इस समय उगाई गई भिंडी ताजा होती है और सीमित आपूर्ति के कारण अच्छे दाम मिलते हैं।

2. **बरबटी:** बरबटी एक मजबूत फसल है, जो ठंडे मौसम में पनपती है और उत्कृष्ट उपज प्रदान करती है।

बुवाई का समय: जनवरी-फरवरी।

बीज दर: प्रति एकड़ 4-6 किलोग्राम।

अपेक्षित उपज: प्रति एकड़ 5-6 टन।

बाजार लाभ: बरबटी ठंडे क्षेत्रों में भी अच्छी तरह से उगती है और इस मौसम में इसकी उत्पादकता और बाजार दरें अधिक रहती हैं।

3. **मिर्ची:** मिर्ची की खेती किसानों के लिए सबसे अधिक लाभदायक होती है, क्योंकि इसका मसाले के बाजार में उच्च मांग रहती है।

बुवाई का समय: जनवरी में नर्सरी शुरू करें और फरवरी में पौधों को खेत में प्रत्यारोपित करें।

बीज दर: प्रति एकड़ 40-60 ग्राम।

अपेक्षित उपज: उचित देखभाल और उर्वरक के साथ उच्च उपज।

बाजार लाभ: जल्दी बुवाई से बेहतर कीमत मिलती है और मिर्ची की फसल से लंबे समय तक मुनाफा कमाया जा सकता है।

4. **ककड़ी:** ककड़ी एक ऐसी सब्जी है, जिसकी शुरुआती बाजार आवक के दौरान उच्च मांग रहती है, जिससे प्रीमियम मूल्य मिलता है।

बुवाई का समय: जनवरी-फरवरी।

बीज दर: प्रति एकड़ 200 ग्राम।

अपेक्षित उपज: प्रति एकड़ 20 टन।

बाजार लाभ: शुरुआती ककड़ी को ?15-20 प्रति किलोग्राम के बेहतर बाजार भाव मिलते हैं।

5. **लौकी:** लौकी एक कम लागत वाली, उच्च उपज देने वाली फसल है, जो सही खेती तकनीकों के साथ किसानों को लाखों का मुनाफा दे सकती है।

बुवाई का समय: जनवरी-फरवरी।

बीज दर: प्रति एकड़ 350-500 ग्राम।

अपेक्षित उपज: प्रति एकड़ 15-20 टन।

बाजार लाभ: लगातार मांग के कारण लौकी किसानों के लिए स्थिर लाभ सुनिश्चित करती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

जलवायु परिवर्तन और कीट प्रजातियों की जनसंख्या गतिशीलता पर प्रभाव

दीपांशु सिंह कीट विज्ञान विभाग
डॉ. कमल रवि शर्मा (सह-प्राध्यापक) कीट विज्ञान विभाग
अभिषेक द्विवेदी कीट विज्ञान विभाग
अनुराग सिंह मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
हर्षित सिंह सस्य विज्ञान विभाग,
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज,अयोध्या (उ.प्र.)

प्रस्तावना: जलवायु परिवर्तन कीटों के जीवनचक्र, वितरण और आबादी की गतिशीलता पर गहरा नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। यह कीटों की विकास दर को तेज करता है, उन्हें नए क्षेत्रों में फैलाता है, और उनकी प्रजनन क्षमता को बढ़ाता है। इसका सीधा परिणाम फसल की क्षति में वृद्धि और खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर खतरे के रूप में सामने आ रहा है।

जलवायु परिवर्तन: जलवायु परिवर्तन उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें पृथ्वी के वायुमंडल और महासागरों के औसत तापमान में धीरे-धीरे वृद्धि होती है, और माना जाता है कि यह परिवर्तन पृथ्वी की जलवायु को हमेशा के लिए बदल रहा है। 1900 से वैश्विक तापमान में लगातार वृद्धि हो रही है और तब से इसमें लगभग 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है। सबसे अधिक वृद्धि उत्तर पश्चिमी उत्तरी अमेरिका में हुई है, लेकिन भारत में तापमान में 0.2 डिग्री सेल्सियस से 1 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि हुई है, इसके अलावा, वैश्विक तापमान में वृद्धि की दर बढ़ रही है; पिछले 50 वर्षों में तापमान में वृद्धि पिछले 100 वर्षों की तुलना में दोगुनी तेजी से हुई है। भारत में खरीफ (जुलाई से अक्टूबर) के मौसम में औसत तापमान 1.7 डिग्री सेल्सियस तक और रबी (नवंबर से मार्च) के मौसम में 3.2 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ने का अनुमान है, जबकि 2070 तक औसत वर्षा में 10 प्रतिशत की वृद्धि होने की संभावना है ।

जलवायु परिवर्तन का कीटों पर प्रभाव: कीट ठंडे रक्त वाले जीव होते हैं - उनके शरीर का तापमान लगभग वातावरण के तापमान के बराबर होता है। इसलिए, तापमान संभवतः कीटों के व्यवहार, वितरण, विकास, जीवन रक्षा और प्रजनन को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरणीय कारक है। मानवजनित CO2, तापमान वृद्धि में अन्य दीर्घकालिक ग्रीनहाउस गैसों की तुलना में लगभग दोगुनी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तापमान में होने वाली वृद्धि कीटों को उनके वितरण, पोषण, प्रजनन चक्र और रोग वाहक के रूप में उनकी भूमिका सहित कई तरह से प्रभावित कर रही है।

कीटों पर CO2 उच्च स्तर के प्रभाव: सामान्य तौर पर, उच्च CO2 स्तर के वातावरण में उगने वाले मेज़बान पौधे कीटों के लिए कम पौष्टिक होते हैं, जिससे उनके व्यवहार और कार्यक्षमता पर असर पड़ सकता है। मेज़बान पौधे के फेनोटिपिक परिवर्तनों के कारण कीटों द्वारा खाए जाने वाले पत्तों का पोषण स्तर कम हो जाता है। परिणाम स्वरूप, कीटों को अपने द्वारा खाए गए भोजन को बायोमास में परिवर्तित करने में अधिक कठिनाई होती है। कम पौष्टिक भोजन के प्रभावों को कम करने के लिए, कीट अक्सर अधिक मात्रा में भोजन ग्रहण करते हैं।

कीट शाकाहारी जीवों का प्रदर्शन पत्तियों में नाइट्रोजन की सांद्रता से सकारात्मक रूप से संबंधित है। ज़्वेरेवा और कोज़लोव (2010) ने बताया कि उच्च CO2 स्तर के तहत उगाई गई सरसों और कोलार्ड की पत्तियों में नाइट्रोजन की मात्रा कम हो गई।

कीटों पर उच्च तापमान का प्रभाव: कीटों के प्रदर्शन पर तापमान में वृद्धि के कई प्रभाव तापमान के कीटों पर प्रत्यक्ष प्रभावों से संबंधित हैं। चूंकि कीट ऊष्माक्षेपी होते हैं, इसलिए वे गर्म परिस्थितियों में अधिक सक्रिय होते हैं। उच्च तापमान का एक सामान्य प्रभाव उपभोग दर में वृद्धि और परिणामस्वरूप प्यूपा बनने के समय में कमी आना है, जिससे वे प्राकृतिक शत्रुओं के लिए कम दृश्यमान हो जाते हैं और कुछ मामलों में प्रति मौसम संभावित पीढ़ियों की संख्या में वृद्धि होती है। यह अनुमान लगाया गया है कि 2 डिग्री सेल्सियस तापमान वृद्धि के साथ कीट प्रति मौसम एक से पांच अतिरिक्त जीवन चक्रों का अनुभव कर सकते हैं उच्च तापमान का पौधों के फेनोटाइप पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ सकता है, लेकिन आमतौर पर उस हद तक नहीं जितना कि उच्च CO2 का होता है, और प्रभावित कारक आमतौर पर कीट शाकाहारियों को उतना प्रभावित नहीं करते जितना कि उच्च CO2 से प्रभावित मेजबान-पौधे की विशेषताएं करती हैं । तापमान में परिवर्तन से थ्रिप्स जैसी कुछ कीट प्रजातियों के लिंग अनुपात में बदलाव आ सकता है जिससे प्रजनन दर प्रभावित हो सकती है। जो कीट अपने जीवन चक्र का महत्वपूर्ण हिस्सा मिट्टी में बिताते हैं, वे तापमान परिवर्तन से सतह पर रहने वाले कीटों की तुलना में धीरे-धीरे प्रभावित हो सकते हैं, क्योंकि मिट्टी एक इन्सुलेटिंग माध्यम प्रदान करती है जो हवा की तुलना में तापमान परिवर्तन को अधिक प्रभावी ढंग से नियंत्रित करती है

वर्षा के पैटर्न में बदलाव का कीटों पर प्रभाव: जलवायु परिवर्तन के चलते समय पर और जल्दी बुवाई करना अनिश्चित हो जाता है। 2009 की बारिश के मौसम में मानसून के आगमन में 45 दिनों की देरी के कारण अरहर की बुवाई में भी देरी हुई, जो हेलिकोवरपा आर्मिगेरा नामक कीट से क्षतिग्रस्त होने की आशंका रखती है , और इससे फसलों को भारी नुकसान हुआ। तापमान की तरह, वर्षा में परिवर्तन भी कीटों के शिकारियों, परजीवियों और रोगों को प्रभावित कर सकता है, जिससे एक जटिल स्थिति उत्पन्न होती है। कीटों के कवक रोगजनक उच्च आर्द्रता में पनपते हैं और जलवायु परिवर्तन से उच्च आर्द्रता की अवधि बढ़ने पर इनकी संख्या बढ़ जाती है, जबकि शुष्क परिस्थितियों के कारण इनकी संख्या कम हो जाती है। कुछ कीट वर्षा के प्रति संवेदनशील होते हैं और भारी बारिश से मर जाते हैं या फसलों से हट जाते हैं। प्याज के थ्रिप्स के प्रबंधन के लिए विकल्प चुनते समय इस बात का ध्यान रखना महत्वपूर्ण है ।

कीट प्रजातियों की जनसंख्या गतिशीलता: कीट प्रजातियों की जनसंख्या गतिशीलता का अर्थ समय और स्थान (पर्यावरण) के साथ कीटों की संख्या में होने वाले उतार-चढ़ाव और उन परिवर्तनों को निर्धारित करने वाले कारकों का अध्ययन है। यह गतिशीलता मुख्य रूप से तापमान, आर्द्रता, भोजन की उपलब्धता और शिकारियों जैसे पर्यावरणीय व जैविक कारकों से प्रभावित होती है। इन परिवर्तनों को समझने से फसल सुरक्षा और कीट प्रबंधन में मदद मिलती है।

जनसंख्या गतिशीलता" यानी किसी प्रजाति की आबादी समय के साथ कैसे बढ़ती, घटती, फैलती है, इसमें शामिल हैं्प्रजनन दर, जीवन चक्र, मृत्यु दर,फैलाव / वितरण, पर्यावरण के साथ इंटरैक्शन।

कीट जनसंख्या गतिशीलता की मुख्य विशेषताएं: जनसंख्या में उतार-चढ़ाव- कीटों की आबादी एक स्थिर नहीं रहती, बल्कि पर्यावरणीय दबावों के कारण इसमें भारी वृद्धि या कमी आ सकती है।

प्रभावित करने वाले कारक: अजैविक कारक-तापमान, वर्षा, और आर्द्रता, जो विकास और उत्तरजीविता दर को सीधे प्रभावित करते हैं, जैविक कारक-भोजन की उपलब्धता, परभक्षी, परजीवी और रोगजनक, जो संख्या को नियंत्रित करते हैं।

जीवन-चक्र की भूमिका: कीटों के कायापलट की विभिन्न अवस्थाएं (अंडा, लार्वा, प्यूपा, वयस्क) अलग-अलग पर्यावरणीय स्थितियों पर प्रतिक्रिया करती हैं। प्रकोप- जब पर्यावरणीय स्थितियाँ अनुकूल होती हैं, तो कीटों की आबादी तेजी से बढ़कर आर्थिक क्षति सीमा (EIL) से ऊपर जा सकती है।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव: बदलते मौसम के पैटर्न, विशेष रूप से उच्च तापमान, कीटों के तेजी से फैलने और अधिक संख्या में पनपने के अनुकूल होते हैं।

पौधों और कीट के बीच संबंध का बदलाव: पौधों और कीटों के बीच संबंध जलवायु परिवर्तन, आनुवंशिक परिवर्तनों (जीएम फसलें), और आधुनिक कृषि प्रथाओं के कारण पारंपरिक सहजीवन से बदलकर अधिक संघर्षपूर्ण हो गया है। बढ़ते तापमान के कारण कीटों का जीवन चक्र छोटा हो रहा है और वे अब तेजी से फसलों को नष्ट कर रहे हैं। पौधे रसायनों (जैसे एसएलआई1 जीन) के माध्यम से बचाव कर रहे हैं, लेकिन बढ़ते तापमान और कीटनाशकों से यह संतुलन बिगड़ रहा है।

पौधों और कीटों के बीच संबंधों में प्रमुख बदलाव: जलवायु परिवर्तन का प्रभाव गर्म तापमान और हल्की सर्दियों के कारण कीटों की आबादी तेजी से बढ़ रही है और वे नई जगहों पर फैल रहे हैं, जिससे फसलों का ज्यादा नुकसान हो रहा है।

आनुवंशिक परिवर्तन: बीटी (Bacillus thuringiensis) जैसी तकनीकें पौधों को कीट-प्रतिरोधी बना रही हैं, जिससे वे कीटों के लिए विषैली हो जाती हैं और प्राकृतिक संबंध में बदलाव आ रहा है।

कीटनाशकों का प्रभाव: कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग ने पारिस्थितिक संतुलन को प्रभावित किया है, जिससे कुछ कीटों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो गई है और अब वे प्राकृतिक शत्रुओं के प्रति भी अधिक प्रतिरोधी बन रहे हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन

आशुतोष यादव मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विभाग
विनीत कुमार मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विभाग
अनुराग सिंह मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विभाग
आशीष राव सस्य विज्ञान विभाग,
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज,अयोध्या

प्रस्तावना : समेकित पोषक तत्व प्रबंधन (INM) का अर्थ है फसल उत्पादन को बढ़ाने और मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने के लिए जैविक खाद, बायो-फर्टिलाइज़र और रासायनिक उर्वरकों का एक साथ और संतुलित उपयोग करना। यह टिकाऊ कृषि का एक तरीका है जो फसल उत्पादकता को बढ़ाता है और पर्यावरणीय प्रभावों को कम करता है, जिसमें रासायनिक उर्वरकों की लागत को कम करना, मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखना और फसल की गुणवत्ता में सुधार करना शामिल है। आईएनएम अपनाने के लिए, मिट्टी परीक्षण के आधार पर पोषक तत्वों का उपयोग करें और जैविक स्रोतों (जैसे गोबर की खाद,हरी खाद,कम्पोस्ट) और बायो-फर्टिलाइज़र के साथ-साथ अनुशंसित रासायनिक उर्वरकों का भी प्रयोग करें।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन (आईएनएम) मिट्टी की उर्वरता और पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने के एक इष्टतम स्तर को बनाए रखने की एक विधि है, जो कार्बनिक, अकार्बनिक और जैविक स्रोतों को एकीकृत करके लाभों को प्राप्त की जाती है।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन क्यों महत्वपूर्ण क्यों हैं?

* **मिट्टी का स्वास्थ्य:** यह मिट्टी के स्वास्थ्य और दीर्घकालिक उत्पादकता को बनाए रखता है।
* **लागत में कमी:** यह उर्वरकों के उपयोग को अनुकूलित करके लागत को कम करने में मदद करता है।
* **उत्पादकता में वृद्धि:** यह फसल की गुणवत्ता और उत्पादन को बढ़ाता है।
* **पर्यावरणीय लाभ:** यह अत्यधिक रासायनिक उपयोग से होने वाले पर्यावरणीय नुकसान को कम करता

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के घटक

* **रासायनिक उर्वरक:** NPK (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश) संतुलित रूप से देना।
* **सूक्ष्म पोषक तत्व :** जिंक, आयरन, बोरोन, सल्फर आदि की पूर्ति।

मिट्टी परीक्षण आधारित उर्वरक सिफारिशें अपनाना।

* **जैविक खादें:** फार्म यार्ड मैन्योर, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, ग्रीन मैन्योरिंग, ऑर्गेनिक वेस्ट कम्पोस्ट आदि इनसे मिट्टी की भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणवत्ता सुधरती है।

बायोफर्टिलाइज़र: विशेष सूक्ष्मजीव जो पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं-

राइजोबियम : दालों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण,
अजोस्पाइरिलम, अजोबैक्टरः गैर-दलहनी फसलों के लिए,
पीएसबी (फास्फोरस घोलक जीवाणु): फॉस्फोरस घुलनशील बनाते हैं
केएमबी (पोटाश मोबिलाइजिंग जीवाणु)- मिट्टी में मौजूद अघुलनशील पोटाश को घोलकर पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं,
माइकोराइज़ा : जड़ वृद्धि व पोषक तत्व अवशोषण बढ़ाते हैं।

* **फसल चक्र और अंतरफसल:** विविधता से पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता है।
* **फसल अवशेष प्रबंधन:** फसल अवशेष जलाने के बजाय खेत में मिलाना जिससे पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण होता है।
* **मिट्टी सुधारक**

चूना : अम्लीय मिट्टियों के लिए
जिप्सम : क्षारीय मिट्टियों के लिए
सल्फर : सल्फर कमी वाली मिट्टी के लिए

INM को कैसे अपनाएं?

1.मिट्टी परीक्षण: अपनी मिट्टी की स्थिति को समझने और पोषक तत्वों की आवश्यकता जानने के लिए मिट्टी का परीक्षण कराएं।

2.जैविक खादों का उपयोग: खेत की तैयारी के समय गोबर की खाद, कम्पोस्ट और हरी खाद का उपयोग करें।

3.रासायनिक उर्वरक: मिट्टी परीक्षण के परिणामों के आधार पर, अनुशंसित रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करें।

4.बायो-फर्टिलाइज़र: एज़ोटोबैक्टर, राइजोबियम, एज़ोस्पिरिलम या पीएसबी (फास्फेट सोल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया) जैसे बायो-फर्टिलाइज़र को शामिल करें।

5.सूक्ष्म पोषक तत्व: सूक्ष्म पोषक उर्वरकों को अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट के साथ मिलाकर मूल खुराक के रूप में डालें।

6.तकनीकें: फसल चक्रण, अंतर-फसल और संरक्षित जुताई जैसी अन्य पद्धतियों को भी अपनाएँ।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन(आईएनएम) के मुख्य फायदे

* **मृदा स्वास्थ्य में सुधार:** INM मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है और जैविक पदार्थों को बढ़ावा देता है, जिससे मिट्टी की संरचना और स्वास्थ्य में सुधार होता है।
* **रासायनिक निर्भरता में कमी:** यह रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग को कम करता है, जिससे किसानों की लागत घटती है और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव कम होता है।
* **फसल की उपज में वृद्धि:** पोषक तत्वों का संतुलित और कुशल उपयोग स्वस्थ पौधों के विकास को बढ़ावा देता है, जिससे फसल की पैदावार बढ़ती है।
* **पर्यावरणीय स्थिरता:** INM मिट्टी और पानी के प्रदूषण को कम करने में मदद करता है और जैव विविधता को बढ़ावा देता है।
* **आर्थिक लाभ:** रासायनिक उर्वरकों की कम लागत और उच्च फसल उपज के कारण किसानों को आर्थिक लाभ होता है।
* **जैविक नियंत्रण को बढ़ावा:** स्वस्थ मिट्टी लाभकारी जीवों को बढ़ावा देती है, जो कीटों के प्राकृतिक नियंत्रण में मदद करते हैं।
* फसल विविधीकरण: यह विभिन्न फसलों को उगाने को प्रोत्साहित करता है, जो कीटों और बीमारियों के जीवन चक्र को बाधित करता है।

चुनौतियां

* जैविक खाद की कम उपलब्धता,
* किसानों में तकनीकी ज्ञान की कमी,
* तत्काल असर की बजाय धीरे-धीरे असर दिखता है
* श्रम की अधिक आवश्यकता

निष्कर्ष

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन एक ऐसी आधुनिक और टिकाऊ कृषि पद्धति है जो मिट्टी की उर्वरता,फसल उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण–तीनों के बीच संतुलन बनाए रखने में मदद करती है। जैविक खाद, बायो-फर्टिलाइज़र और रासायनिक उर्वरकों का संयोजन करके यह पद्धति पोषक तत्वों का कुशल उपयोग सुनिश्चित करती है, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता सुधरती है, रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटती है और किसानों को बेहतर उत्पादन के साथ आर्थिक लाभ मिलता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

बायोफेंसिंग: फसल सुरक्षा का एक विकल्प

उमेश कुमार वि.व.वि. (कृषि वानिकी)
डॉ. संदीप कुमार वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं
अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, नानपारा,
बहराइच-II (उ.प्र.)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ बड़ी आबादी की आजीविका खेती पर आधारित है। देश के विभिन्न भागों में आवारा पशुओं, नीलगाय, जंगली सूअर एवं अन्य वन्यजीवों से फसलों को होने वाला नुकसान किसानों के लिए एक बड़ी चुनौती है। साथ ही, तार या कंक्रीट की फेंसिंग अधिक महँगी होने के कारण सभी किसानों के लिए संभव नहीं हो पाती। ऐसे में बायो-फेंसिंग एक प्राकृतिक, किफायती और टिकाऊ विकल्प के रूप में सामने आती है। बायोफेंसिंग वह तकनीक है जिसमें खेत, बाग या अन्य भूमि की सीमा पर जीवित पौधों को पंक्तिबद्ध रूप से लगाकर प्राकृतिक बाड़ विकसित की जाती है, जो समय के साथ सुदृढ़ सुरक्षा प्रदान करती है। राष्ट्रीय स्तर पर बायोफेंसिंग का महत्व सतत कृषि, प्राकृतिक खेती, कृषि वानिकी एवं जलवायु-स्मार्ट कृषि की अवधारणाओं से जुड़ा हुआ है। यह प्रणाली न केवल फसल सुरक्षा सुनिश्चित करती है, बल्कि हरित आवरण बढ़ाने, जैव विविधता संरक्षण, कार्बन अवशोषण तथा मिट्टी कटाव रोकने में भी सहायक है। भारत की विविध जलवायु परिस्थितियों के अनुसार करौंदा, बाबूल, नीम, ग्लिरिसिडिया, सुबबूल, अगावे, नागफनी और बांस जैसी प्रजातियाँ बायो-फेंसिंग के लिए उपयुक्त पाई जाती हैं।

उत्तर प्रदेश में बायोफेंसिंग की आवश्यकता और भी अधिक स्पष्ट होती है। राज्य के तराई, मध्य एवं बुंदेलखंड क्षेत्रों में आवारा पशुओं और वन्यजीवों से फसल क्षति एक गंभीर समस्या है। यहाँ की जलवायु और मिट्टी बायोफेंसिंग के लिए अनुकूल है तथा स्थानीय प्रजातियाँ आसानी से उपलब्ध हैं। करौंदा, बाबूल/कीकर, नीम, ग्लिरिसिडिया, सुबबूल, नागफनी, अगावे एवं बांस जैसी प्रजातियाँ उत्तर प्रदेश में सफलतापूर्वक अपनाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार की वृक्षारोपण, कृषि वानिकी एवं प्राकृतिक खेती से संबंधित योजनाएँ बायोफेंसिंग को बढ़ावा देने में सहायक हैं। इस प्रकार भारत एवं उप्र दोनों के परिप्रेक्ष्य में बायोफेंसिंग एक ऐसी बहुउपयोगी तकनीक है, जो फसल सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण और किसानों की आय वृद्धि तीनों लक्ष्यों को एक साथ साधने की क्षमता रखती है और भविष्य की कृषि हेतु एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती है।

बायोफेंसिंग की परिभाषा : बायोफेंसिंग का आशय है, खेत या परिसंपत्ति, बागानों अथवा ग्रामीण परिसंपत्तियों की सुरक्षा के लिए पौधों द्वारा तैयार की गई जीवित घेराबंदी आज की कृषि परिस्थितियों में अत्यंत महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में उभर रही है। भारतीय कृषि जिस दौर से गुजर रही है, उसमें आवारा पशुओं द्वारा फसलों को होने वाली क्षति, नीलगाय और अन्य वन्यजीवों का दबाव, खेत की सीमाओं को सुरक्षित रखने की आवश्यकता, मिट्टी कटाव तथा पर्यावरणीय चुनौतियाँ लगातार बढ़ती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में बायोफेंसिंग न केवल एक टिकाऊ संरक्षण उपाय है बल्कि मृदा-संरक्षण, जैव-विविधता और किसान की आर्थिक स्थिरता को भी सुदृढ़ करता है। बायोफेंसिंग की अवधारणा बहुत सरल है। खेत की परिधि पर ऐसे पौधों का रोपण किया जाता है जो बढ़कर एक प्राकृतिक अवरोध का निर्माण करते हैं। यह अवरोध खेत में पशुओं के प्रवेश को रोकने के साथ-साथ धूल, हवा और कटाव जैसी समस्याओं को भी नियंत्रित करता है। पारंपरिक फेंसिंग की तुलना में यह तकनीक काफी कम लागत वाली है तथा एक बार स्थापित होने पर वर्षों तक बिना भारी मरम्मत के कार्य करती रहती है। जीवित पौधे स्वयं बढ़ते हैं, घने होते हैं और खेत की सुरक्षा को स्वाभाविक रूप से मजबूत बनाते जाते हैं।

बायोफेंसिंग के प्रमुख लाभ:

1. **लागत प्रभावी तकनीक:** जीवित फेंसिंग की स्थापना की लागत पारंपरिक तारबंदी की तुलना में लगभग 60-80% कम होती है।

2. **दीर्घकालिक सुरक्षा:** एक बार स्थापित होने पर पौधे घने होकर मजबूत अवरोध बनाते हैं, जिससे पशु और वन्यजीव खेत में प्रवेश नहीं कर पाते।

3. **अतिरिक्त आय के अवसर:** कई प्रजातियाँ ईंधन, चारा, लकड़ी, फल, दवाई और फाइबर की आपूर्ति करती हैं, जिससे किसान को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

4. **पर्यावरणीय लाभ:** बायो-फेंसिंग मृदा संरक्षण, कार्बन अवशोषण, जैव विविधता संवर्धन और सूक्ष्म जलवायु सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

5. **कृषि-वानिकी से सामंजस्य:** सीमा पर लगाए गए पेड़/झाड़ियाँ खेत को प्राकृतिक रूप से संरक्षित करते हुए कृषि-वानिकी मॉडल को भी सशक्त बनाती हैं।

बायोफेंसिंग हेतु उपयुक्त प्रजातियाँ:

क. कांटेदार प्रजातियाँ: कांटेदार प्रजातियों का उपयोग बायोफेंसिंग में इसलिए किया जाता है क्योंकि ये आवारा एवं जंगली पशुओं को खेत, बाग या नर्सरी में प्रवेश करने से प्रभावी रूप से रोकती हैं। इन पौधों में घनी शाखाएँ, मजबूत तना एवं तीखे कांटे होते हैं, जिससे प्राकृतिक रूप से मजबूत बाड़ विकसित हो जाती है। प्रमुख कांटेदार प्रजातियों में करौंदा, बाबूल/कीकर, नागफनी, अगावे तथा विभिन्न कैक्टस प्रजातियाँ शामिल हैं। ये पौधे कम देख-रेख में भी लंबे समय तक सुरक्षा प्रदान करते हैं।

ख. बहुउपयोगी प्रजातियाँ: बहुउपयोगी प्रजातियाँ बायोफेंसिंग के साथ-साथ चारा, हरित खाद, ईंधन लकड़ी एवं जैव-द्रव्यमान उपलब्ध कराती हैं। इन पौधों से मिट्टी की उर्वरता में सुधार होता है तथा किसानों को अतिरिक्त लाभ भी प्राप्त होता है। इस श्रेणी की प्रमुख प्रजातियाँ हैं ग्लिरिसिडिया, सुबबूल, नीम, शीशम एवं अर्जुन। ये प्रजातियाँ पर्यावरण संरक्षण और सतत कृषि हेतु भी अत्यंत उपयोगी हैं।

ग. वन-सीमा एवं मानव-वन्यजीव संघर्ष क्षेत्र हेतु: वन सीमा एवं मानव-वन्यजीव संघर्ष वाले क्षेत्रों में ऐसी प्रजातियों की आवश्यकता होती है जो घनी, मजबूत तथा वन्यजीवों द्वारा कम पसंद की जाती हों। इनका मुख्य उद्देश्य वन्यजीवों को कृषि भूमि में प्रवेश से रोकना एवं फसल क्षति को कम करना होता है। इस उद्देश्य के लिए नागफनी, अगावे, करौंदा, बबूल, बांस तथा कैक्टस प्रजातियाँ विशेष रूप से उपयुक्त मानी जाती हैं। इस प्रकार क्षेत्र की परिस्थितियों, सुरक्षा की आवश्यकता एवं उपयोगिता के आधार पर उपयुक्त प्रजातियों का चयन कर बायो-फेंसिंग को अधिक प्रभावी, टिकाऊ एवं लाभकारी बनाया जा सकता है।

रोपण पद्धति और तकनीकी सुझाव: बायोफेंसिंग के लिए सबसे पहले खेत या बाग की सीमा रेखा का चिन्हांकन किया जाता है और मेड़ को साफ कर समतल किया जाता है। इसके बाद सीमा के साथ-साथ 30ङ्क45 सेमी गहरी और 30 सेंमी चौड़ी खाई खोदी जाती है। खाई की मिट्टी में अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाकर पुनः भराई की जाती है, जिससे पौधों को प्रारंभिक पोषण मिल सके। रोपण हेतु चुनी गई प्रजातियों के पौधों को एक पंक्ति में 1 से 1.5 फीट की दूरी पर लगाया जाता है। अधिक सुरक्षा की आवश्यकता होने पर दो पंक्तियों में तिरछे (जिग-जैग) तरीके से रोपण किया जाता है। रोपण के समय पौधे को सीधा रखकर जड़ों के चारों ओर मिट्टी अच्छी तरह दबाई जाती है ताकि वायु थैलियाँ न बनें। रोपण का सबसे उपयुक्त समय मानसून ऋतु (जून-जुलाई) होता है, जिससे पौधों की जीवित रहने की क्षमता बढ़ती है। रोपण के तुरंत बाद हल्की सिंचाई आवश्यक होती है। प्रारंभिक अवस्था में पौधों को पशुओं से बचाने हेतु अस्थायी सुरक्षा करनी चाहिए तथा समय-समय पर निराई-गुड़ाई और हल्की कटाई-छंटाई से पौधों को घना बनाया जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक तरीके से किया गया रोपण कुछ ही वर्षों में मजबूत, टिकाऊ और प्रभावी बायो-फेंसिंग विकसित करता है जो लंबे समय तक फसल सुरक्षा प्रदान करती है।

मॉडल-आधारित बायोफेंसिंग डिज़ाइन:

1. **कांटेदार + चारा मॉडल:** इस मॉडल में खेत की बाहरी सीमा पर कांटेदार प्रजातियों तथा अंदर की ओर चारा प्रजातियों का संयोजन किया जाता है। बाहरी पंक्ति में करौंदा, बाबूल या नागफनी जैसी कांटेदार प्रजातियाँ लगाई जाती हैं, जो पशुओं के प्रवेश को रोकती हैं, जबकि अंदर की पंक्ति में ग्लिरिसिडिया या सुबबूल जैसी चारा प्रजातियाँ रोपी जाती हैं। यह मॉडल फसल सुरक्षा के साथ-साथ चारे एवं जैव-द्रव्यमान की उपलब्धता सुनिश्चित करता है और छोटे किसानों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

2. **बांस परिधि मॉडल:** इस मॉडल में खेत या बाग की पूरी परिधि पर बांस की उपयुक्त प्रजातियों का रोपण किया जाता है। बांस तेजी से बढ़ने वाला, मजबूत और बहुउपयोगी पौधा है, जो कुछ ही वर्षों में सघन एवं ऊँची प्राकृतिक बाड़ का रूप ले लेता है। यह मॉडल विशेष रूप से अधिक हवा वाले क्षेत्रों, नर्सरी, बागों एवं वन-सीमा के समीप स्थित कृषि भूमि के लिए उपयुक्त माना जाता है।

3. **फल-उन्मुख मॉडल:** फल-उन्मुख मॉडल में बायोफेंसिंग के रूप में फल देने वाली झाड़ी या वृक्ष प्रजातियों का चयन किया जाता है। इसमें करौंदा, बेर, सीताफल या अंजीर जैसी प्रजातियाँ रोपी जाती हैं, जो सुरक्षा के साथ-साथ फल उत्पादन द्वारा अतिरिक्त आय प्रदान करती हैं। यह मॉडल मध्यम सुरक्षा आवश्यकताओं वाले क्षेत्रों में किसानों की आय वृद्धि हेतु लाभकारी है।

4. **अगावे बैरियर मॉडल:** अगावे बैरियर मॉडल में खेत की सीमा पर अगावे प्रजातियों को सघन रूप से लगाया जाता है। अगावे के नुकीले पत्ते एवं मजबूत संरचना पशुओं को खेत में प्रवेश से प्रभावी रूप से रोकती है। यह मॉडल कम वर्षा, सूखा-प्रवण एवं कम रख-रखाव वाले क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त है, जहाँ जल की उपलब्धता सीमित होती है। इन विभिन्न मॉडल-आधारित डिज़ाइनों का चयन क्षेत्र की परिस्थितियों, सुरक्षा की आवश्यकता एवं किसानों के उद्देश्य के अनुसार किया जा सकता है, जिससे बायोफेंसिंग अधिक प्रभावी एवं लाभकारी बनती है।

आर्थिक विश्लेषण: आर्थिक दृष्टि से बायोफेंसिंग किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती है। सौ मीटर परिधि की लागत सामान्य रूप से तीन से चार हजार रुपये के बीच आती है, जबकि पारंपरिक तारबंदी इसकी तुलना में कई गुना महंगी होती है। जीवित फेंसिंग स्थापित होने के बाद फसल क्षति में उल्लेखनीय कमी आती है, जिससे किसान को उत्पादन-सुरक्षा के रूप में प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होता है। कई प्रजातियाँ चारा, लकड़ी, फल तथा बायोमास उपलब्ध कराती हैं, जिनका वार्षिक आर्थिक मूल्य सरलता से एक से ढाई हजार रुपये या उससे अधिक तक पहुँच जाता है। इस प्रकार बायो फेंसिंग सुरक्षा के साथ-साथ आय का स्रोत भी बन जाती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

विंग्ड बीन : एक चमत्कारी फसल

रिची अवस्थी कीट विज्ञान विभाग
हर्षित सिंह सस्य विज्ञान विभाग
नेहा कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

परिचय (Introduction)

विंग्ड बीन (Psophocarpus tetragonolobus), जिसे गोआ बीन, चार-कोणीय सेम, ड्रैगन बीन अथवा मनीला बीन भी कहा जाता है, एक बहुउपयोगी एवं पोषक तत्वों से भरपूर दलहनी फसल है, जिसे "चमत्कारी फसल" माना जाता है। फैबेसी कुल की एक महत्वपूर्ण किंतु अल्प-उपयोग की जाने वाली उष्णकटिबंधीय दलहनी फसल है। यह एक लतादार पौधा है, जिसकी बेलें 3-4 मीटर तक लंबी होती हैं। इसकी उत्पत्ति न्यू गिनी मानी जाती है, तथा वर्तमान में यह दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों जैसे भारत, थाईलैंड, इंडोनेशिया, म्यांमार, फिलीपींस और श्रीलंका में उगाई जाती है।

विंग्ड बीन की सबसे अनोखी विशेषता यह है कि इसके पौधे के सभी भाग–पत्तियाँ, कोमल फलियाँ, बीज और भूमिगत कंद–खाद्य होते हैं। यह फसल प्रोटीन, तेल, विटामिन और खनिज तत्वों का उत्कृष्ट स्रोत है; इसके बीजों में 32-37%, कंदों में 17-19% तथा पत्तियों में 5-8% प्रोटीन होता है। इसके अलावा इसमें 15-20% खाद्य तेल, कार्बोहाइड्रेट, तथा विटामिन A, B-समूह, C और E प्रचुर मात्रा में मौजूद होते हैं। जिससे यह उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पोषण सुरक्षा के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है। दलहनी फसल होने के कारण यह -फसल Rhizobium जीवाणुओं के साथ सहजीवी संबंध बनाकर वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करती है, जिससे मृदा उर्वरता में सुधार होता है और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है। उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में अच्छी तरह पनपने वाली यह फसल भारत के पूर्वोत्तर और पूर्वी राज्यों में सफलतापूर्वक उगाई जाती है। उच्च उत्पादकता, पोषण सुरक्षा, बहुउपयोगिता और पर्यावरणीय लाभों के कारण विंग्ड बीन को भविष्य की एक महत्वपूर्ण "चमत्कारी फसल" माना जा रहा है।

भारत में विंग्ड बीन मुख्य रूप से पूर्वोत्तर राज्यों तथा कुछ पूर्वी और दक्षिणी क्षेत्रों में उगाई जाती है। हाल के वर्षों में उन्नत किस्मों के विकास और बढ़ती पोषण आवश्यकताओं के कारण इस फसल के महत्व में वृद्धि हुई है। अपनी बहुउपयोगिता, उच्च उत्पादकता और पर्यावरणीय लाभों के कारण विंग्ड बीन को भविष्य की एक संभावनाशील और चमत्कारी फसल के रूप में देखा जा रहा है।

विंग्ड बीन की पैकेज ऑफ प्रैक्टिसेस (बुवाई से कटाई तक)

1. जलवायु एवं मिट्टी

विंग्ड बीन उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु की फसल है। इसके लिए 22-30°C तापमान और मध्यम से अधिक वर्षा उपयुक्त होती है। अच्छी जल-निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी, जिसका pH 5.5-6.8 हो, इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। जलभराव से फसल को नुकसान होता है।

2. खेत की तैयारी

खेत को 2-3 गहरी जुताइयों के बाद भुरभुरा बनाया जाता है। अंतिम जुताई के समय 15-20 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाना लाभकारी होता है।

3. बुवाई का समय

* खरीफ: जून-जुलाई
* रबी/ग्रीष्म (सिंचित दशा में): फरवरी-मार्च

4. बीज दर एवं बुवाई विधि

बीज दर: 20-25 किग्रा/हेक्टेयर
कतार से कतार दूरी: 75-100 सेमी
पौधे से पौधे दूरी: 30-45 सेमी
बीजों को 3-4 सेंमी गहराई पर बोना चाहिए। बुवाई से पहले बीजों को Rhizobium कल्चर से उपचारित करना लाभदायक होता है।

5. खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

* गोबर की खाद: 15-20 टन/हेक्टेयर
* रासायनिक उर्वरक (आधार मात्रा):
* नाइट्रोजन: 20-25 किग्रा/हेक्टेयर
* **फास्फोरस:** 50-60 किग्रा/हेक्टेयर
* **पोटाश:** 40-50 किग्रा/हेक्टेयर

नाइट्रोजन की पूरी मात्रा बुवाई के समय दी जाती है, क्योंकि यह दलहनी फसल है।

6. सिंचाई प्रबंधन

वर्षा आधारित फसल में अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। सिंचित दशा में 7-10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें। फूल आने और फल बनने की अवस्था में नमी का विशेष ध्यान रखें।

7. खरपतवार नियंत्रण

बुवाई के 20-25 दिन बाद पहली निराई-गुड़ाई तथा 40-45 दिन बाद दूसरी निराई करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमेथालिन (1.0 किग्रा सक्रिय तत्व/हेक्टेयर) का पूर्व-उद्भव छिड़काव भी किया जा सकता है।

8. सहारा (स्टेकिंग) एवं छंटाई

विंग्ड बीन बेलदार फसल है, इसलिए पौधों को सहारा देना आवश्यक होता है। बाँस, तार या जाल की सहायता से मचान बनाकर पौधों को चढ़ाया जाता है, जिससे फलियाँ सीधी और अधिक मात्रा में प्राप्त होती हैं।

9. कीट एवं रोग प्रबंधन

मुख्य कीट: फली छेदक, माहू, सफेद मक्खी, तंबाकू की इल्ली, कटवर्म
नियंत्रण हेतु नीम आधारित कीटनाशक या आवश्यकता अनुसार अनुशंसित कीटनाशकों का प्रयोग करें।
मुख्य रोग: पाउडरी मिल्ड्यू, पत्ती धब्बा
नियंत्रण के लिए कार्बेन्डाजिम या सल्फर आधारित फफूंदनाशकों का छिड़काव करें।

10. तुड़ाई एवं उपज

हरी फलियों की तुड़ाई: बुवाई के 60-75 दिन बाद
बीज हेतु कटाई: 120-150 दिन बाद, जब फलियाँ सूख जाएँ
हरी फलियों की औसत उपज 250-400 क्विंटल/हेक्टेयर तथा बीज की उपज 25-35 क्विंटल/हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

जलागम प्रबंधन : एक समग्र दृष्टिकोण

अनुराग सिंह मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
हर्षित सिंह सस्य विज्ञान विभाग
अमन यादव कीट विज्ञान विभाग
विनीत कुमार मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

प्रस्तावना: जल संभर प्रबंधन (Watershed Management) एक एकीकृत दृष्टिकोण है जिसका उद्देश्य किसी नदी, झील या जल स्रोत के पूरे जल-ग्रहण क्षेत्र (watershed) में पानी और अन्य प्राकृतिक संसाधनों (मिट्टी, वनस्पति, वन्यजीव) की गुणवत्ता और मात्रा की रक्षा और सुधार करना है, ताकि बाढ़, सूखा और प्रदूषण के जोखिमों को कम किया जा सके और सतत विकास सुनिश्चित हो सके, जिसमें स्थानीय समुदायों और हितधारकों की भागीदारी महत्वपूर्ण होती है।

जल मानव जीवन का आधार है। कृषि, उद्योग, पेयजल, पशुपालन और पर्यावरण संतुलन–सभी जल पर निर्भर हैं। बढ़ती जनसंख्या, वनों की कटाई, अनियमित वर्षा और जल के अत्यधिक दोहन के कारण आज जल संकट एक गंभीर समस्या बन गया है। इस संकट से निपटने का एक प्रभावी उपाय जलागम (Watershed) प्रबंधन है। जिस क्षेत्र का पानी एक ही निकास बिंदु पर पहुँचता है, उसे जलागम कहते हैं।

जलागम की विशेषताएं: * यह एक प्राकृतिक इकाई होती है * इसमें भूमि, जल, वनस्पति और मानव गतिविधियाँ शामिल होती है * इसका आकार छोटा या बड़ा हो सकता है

जलागम प्रबंधन की परिभाषा: जलागम प्रबंधन वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत किसी जलागम क्षेत्र के जल, भूमि, वन और जैव संसाधनों का नियोजित एवं संतुलित उपयोग किया जाता है, ताकि उत्पादन बढ़े और पर्यावरण सुरक्षित रहे।

जलागम प्रबंधन के उद्देश्य: जलागम प्रबंधन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं

वर्षा जल का संरक्षण,मृदा अपरदन (Soil Erosion) को रोकना,भूजल स्तर में वृद्धि करना,कृषि उत्पादन बढ़ाना, सूखा और बाढ़ की समस्या को कम करना, पर्यावरण संरक्षण,ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन,किसानों की आय बढ़ाना

वाटरशेड के प्रकार: वाटरशेड को आकार, जल निकासी और भूमि उपयोग पैटर्न के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

* मैक्रो वाटरशेड (> 50,000 हेक्टेयर)
* सब-वाटरशेड (10,000 से 50,000 हेक्टेयर)
* मिली-वाटरशेड (1000 से 10,000 हेक्टेयर)
* माइक्रो वाटरशेड (100 से 1000 हेक्टेयर)
* मिनी वाटरशेड (1-100 हेक्टेयर

जलागम प्रबंधन की आवश्यकता: वर्षा का असमान वितरण, जल स्रोतों का सूखना,खेतों की उर्वरता में कमी,भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन,जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलागम प्रबंधन के घटक: जलागम प्रबंधन के प्रमुख घटक इस प्रकार हैं

मृदा संरक्षण: कंटूर बंडिंग,टेरेस खेती, मेड़बंदी, घास और वृक्षारोपण

जल संरक्षण: चेक डैम,तालाब और जलाशय, खेत तालाब, वर्षा जल संचयन

वन संरक्षण, वनीकरण,चारागाह विकास,सामाजिक वानिकी

कृषि विकास: फसल चक्र अपनाना,उन्नत बीजों का प्रयोग,जैविक खेती

जलागम प्रबंधन की प्रमुख तकनीकें:

मृदा एवं नमी संरक्षण तकनीकें: इसमें कंटूर बंडिंग (Contour Bunding), ट्रेंचिंग (Trenches), और बेंच टेरेसिंग शामिल हैं जो पानी के बहाव को रोककर मिट्टी की नमी को बढ़ाते हैं।

जल संचयन संरचनाएं (Water Harvesting Structures): वर्षा के पानी को संचय करने के लिए चेक डैम, फार्म पोंड (खेत तालाब), और रिचार्ज कुओं का निर्माण।

वृक्षारोपण और वानिकी: जलागम क्षेत्र में पेड़-पौधे लगाने से मिट्टी का कटाव रुकता है, पानी का रिसाव (Infiltration) बढ़ता है और भूजल स्तर ऊपर उठता है।

कृषि और चारागाह प्रबंधन: सूखे और बाढ़ जैसी स्थितियों को प्रबंधित करने के लिए उन्नत फसल तकनीकें और मवेशियों के लिए चारागाह विकास।

भागीदारी और तकनीकी सहयोग: जमीनी स्तर पर स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी के साथ गैर-सरकारी संगठनों के तकनीकी सहयोग से प्रबंधन।

वर्षा जल संचयन: शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में छतों पर वर्षा के पानी को टैंकों में जमा करना या भूमिगत रिचार्ज करना

जलागम प्रबंधन के मुख्य लाभ: भूजल स्तर में वृद्धि, बाढ़-सूखे की स्थिति में कमी, कृषि उत्पादन में वृद्धि, मिट्टी के कटाव पर रोक और स्थानीय समुदाय के लिए स्थायी आजीविका के अवसरों का सृजन शामिल है।

जल संरक्षण और प्रबंधन: वर्षा जल को रोककर भूजल स्तर को रिचार्ज करना और पानी की बर्बादी को कम करना।

मृदा की उर्वरता और सुरक्षा: मिट्टी के कटाव को रोकना, मिट्टी की उत्पादकता बढ़ाना और उपजाऊ भूमि को बंजर होने से बचाना।

कृषि और आय में वृद्धि: वर्ष भर सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करना, जिससे फसल की पैदावार बढ़ती है और किसानों की आय में वृद्धि होती है।

पर्यावरण संरक्षण: पारिस्थितिक संतुलन को बढ़ावा देना, वनीकरण को बढ़ावा देना और वनस्पति को पुनर्जीवित करना।

आपदा प्रबंधन: वर्षा के पानी के बहाव को नियंत्रित कर बाढ़ की तीव्रता और सूखे के प्रभाव को कम करना।

आजीविका और रोजगार: ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित गतिविधियों को बढ़ावा देकर स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर पैदा करना।

जनभागीदारी के लाभ * योजनाओं की स्थायित्व * स्थानीय ज्ञान का उपयोग * स्वामित्व की भावना * बेहतर रख-रखाव

भारत में जलागम प्रबंधन कार्यक्रम: भारत में जलागम प्रबंधन कार्यक्रम का उद्देश्य वर्षा-आधारित क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों (मिट्टी, पानी, वनस्पति) का संरक्षण, विकास और सतत उपयोग करके पारिस्थितिक संतुलन बनाना और ग्रामीण आजीविका में सुधार करना है। इसके तहत मृदा अपरदन को रोकना, वर्षा जल संचयन, भूजल पुनर्भरण और कृषि उत्पादकता बढ़ाना मुख्य गतिविधियाँ हैं।

प्रमुख बिंदु और कार्यक्रम: समेकित वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम (IWMP): 2009-10 में शुरू किया गया, जो अब प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) का हिस्सा है।

उद्देश्य: बंजर भूमि का विकास, भूजल स्तर बढ़ाना और स्थायी कृषि-आधारित आजीविका प्रदान करना।

वित्तपोषण: यह केंद्र और राज्यों के बीच 90:10 के अनुपात में वित्तपोषित है।

जल शक्ति अभियान: कैच द रेन (JSA: CTR): जनभागीदारी से भूजल पुनर्भरण, जल संरक्षण और प्रबंधन पर केंद्रित प्रमुख अभियान।

तकनीक: जीआईएस (GIS), रिमोट सेंसिंग और वैज्ञानिक योजना का उपयोग।

लाभ: सूखा-बाढ़ जैसी स्थितियों में कमी, जल भंडारण में वृद्धि और किसानों की आय में बढ़ोतरी।

भारत सरकार ने कई जलागम योजनाएँ शुरू की हैं, जैसे:एकीकृत जलागम विकास कार्यक्रम (IWDP), प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, हर खेत को पानी, जल जीवन मिशन

निष्कर्ष: प्राकृतिक संसाधनों (जल, मृदा, वनस्पति) के संरक्षण, पुनरुद्धार और सतत उपयोग का एक एकीकृत दृष्टिकोण है, जो कृषि उत्पादकता बढ़ाकर ग्रामीण आजीविका में सुधार करता है। यह मृदा अपरदन को कम करने, भूजल स्तर बढ़ाने और बाढ़-सूखा जैसी आपदाओं को कम करने के लिए सामुदायिक भागीदारी (ग्राम पंचायतों) पर जोर देता है।

सतत विकास की कुंजी: यह न केवल जल संरक्षण का एक उपाय है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाऊ कृषि, पारिस्थितिक संतुलन और आर्थिक सशक्तिकरण की आधारशिला है।

समुदायिक भागीदारी: इसकी सफलता स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी और पारंपरिक ज्ञान के साथ आधुनिक तकनीकी (जैसे जीआईएस और रिमोट सेंसिंग) के मेल पर निर्भर करती है।

आजीविका और पर्यावरण: यह भूमि और जल संसाधनों के बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग से ग्रामीण आय में वृद्धि करता है, साथ ही साथ पर्यावरण के अनुकूल विकास (जैसे वनीकरण, फसल चक्र) को बढ़ावा देता है।

नीति और दूरदर्शिता: पीएमकेएसवाई (PMKSY) जैसे कार्यक्रम इसके महत्व को दर्शाते हैं, लेकिन दीर्घकालिक स्थिरता के लिए एकीकृत नियोजन और लगातार निगरानी आवश्यक है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

खरपतवार प्रबंधन और उत्पादक उपयोग: हानिकारक प्रभाव से मूल्यवर्धित अवसर तक

अंजनी कुमार पटेल
अंबिकेश त्रिपाठी, करन भारती
अनुसंधान छात्र, कृषि विज्ञान विभाग (एग्रोनोमी),
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

परिचय: विश्व स्तर पर अब तक लगभग 2,95,383 पुष्पीय पौधों की प्रजातियों का अभिलेखन किया जा चुका है, जिनमें से 8,000 से अधिक प्रजातियाँ खरपतवारों की श्रेणी में आती हैं। इनमें लगभग 1,800 खरपतवार प्रजातियाँ ऐसी हैं जो वैश्विक स्तर पर फसल उत्पादन में लगभग 31.5% तक की कमी उत्पन्न करती हैं, जिससे प्रतिवर्ष लगभग 32 अरब अमेरिकी डॉलर का आर्थिक नुकसान होता है। भारतीय कृषि परिदृश्य में भी खरपतवार एक प्रमुख जैविक बाधा के रूप में उभर कर सामने आए हैं, जहाँ कुल वार्षिक कृषि उत्पादन हानि का लगभग 37% भाग केवल खरपतवारों के कारण होता है, जो कीट एवं रोगों से होने वाली क्षति की तुलना में अधिक है।

यद्यपि खरपतवार नियंत्रण हेतु यांत्रिक, रासायनिक तथा जैविक विधियों सहित विभिन्न पारंपरिक प्रबंधन उपायों को विश्वभर में अपनाया गया है, तथापि इनकी प्रभावशीलता दीर्घकालिक दृष्टि से सीमित, अस्थिर तथा पर्यावरणीय दृष्टिकोण से चिंताजनक रही है। इस परिप्रेक्ष्य में वर्तमान समय में खरपतवार प्रबंधन के लिए समग्र एवं सतत दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया जा रहा है। खरपतवारों का उत्पादक एवं मूल्यवर्धित उपयोग एक नवीन एवं प्रभावी रणनीति के रूप में उभर रहा है, जिसके माध्यम से इन्हें केवल समस्या के रूप में न देखकर संसाधन के रूप में उपयोग किया जा सकता है। अपनी न्यून लागत, व्यापक उपलब्धता, तीव्र अनुकूलन क्षमता तथा बदलती जलवायु परिस्थितियों में जीवित रहने की दक्षता के कारण खरपतवार एक महत्वपूर्ण जैव-संसाधन के रूप में स्थापित हो सकते हैं। इनका उपयोग आवश्यक तेलों, औषधीय उत्पादों, बायोचार, जैव-खरपतवारनाशी, भारी धातुओं के अवशोषण तथा पर्यावरणीय शोधन (फाइटोरिमेडिएशन) जैसे विविध क्षेत्रों में किया जा सकता है। अतः खरपतवारों का समुचित एवं वैज्ञानिक उपयोग न केवल एक पर्यावरण-अनुकूल खरपतवार प्रबंधन उपाय प्रदान करता है, बल्कि सतत कृषि, संसाधन संरक्षण एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

खरपतवारों के हानिकारक प्रभाव

1.कृषि एवं अर्थव्यवस्था पर खरपतवारों के हानिकारक प्रभाव: खरपतवार फसलों के साथ प्रकाश, जल, पोषक तत्व एवं स्थान के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे फसलों की सामान्य वृद्धि एवं विकास बाधित होता है और परिणामस्वरूप फसल की उपज तथा गुणवत्ता में उल्लेखनीय कमी आती है। खरपतवारों की उपस्थिति के कारण कृषि उत्पादों की बाज़ार गुणवत्ता घट जाती है। इनके नियंत्रण हेतु अतिरिक्त श्रम, यांत्रिक साधनों एवं रासायनिक खरपतवारनाशियों की आवश्यकता होती है, जिससे उत्पादन लागत में वृद्धि होकर किसानों की आर्थिक लाभप्रदता कम होती है। इसके अतिरिक्त, अनेक खरपतवार कीटों, फफूंदों, जीवाणुओं एवं विषाणुओं के लिए आश्रय स्थल का कार्य करते हैं, जिससे फसलों में रोग एवं कीट प्रकोप बढ़ता है। कुछ खरपतवार एलिलोपैथिक रसायनों का स्राव भी करते हैं, जो फसलों के बीज अंकुरण, जड़ विकास एवं पोषक तत्व अवशोषण को बाधित कर कृषि उत्पादन एवं अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

3. मानव एवं पशुधन पर खरपतवारों के हानिकारक प्रभाव: कुछ खरपतवार मानव तथा पशुधन के स्वास्थ्य के लिए गंभीर जोखिम उत्पन्न करते हैं और प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से हानि पहुँचाते हैं। धतूरा जैसे कई खरपतवार विषैले होते हैं, जिनका सेवन पशुओं एवं मनुष्यों में विषाक्तता, गंभीर बीमारी तथा कुछ मामलों में मृत्यु का कारण बन सकता है। इसके अतिरिक्त, अनेक खरपतवारों के परागकण, रस या रोएँ त्वचा पर चकत्ते, एलर्जिक प्रतिक्रियाएँ, हे फीवर तथा श्वसन संबंधी विकार उत्पन्न करते हैं, जिससे मानव स्वास्थ्य प्रभावित होता है। खरपतवारों के बीज एवं अवशेष कृषि एवं पशु उत्पादों को भी संदूषित करते हैं; इनके बीज ऊन में फँसकर उसकी गुणवत्ता एवं बाज़ार मूल्य को घटाते हैं, जबकि पशु आहार एवं जल स्रोतों के प्रदूषण से पशुधन की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र पर खरपतवारों के प्रभाव: खरपतवार प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं तथा जैव विविधता के संरक्षण के लिए एक प्रमुख चुनौती के रूप में उभरते हैं। ये देशज वनस्पति के साथ प्रतिस्पर्धा कर उन्हें धीरे-धीरे विस्थापित कर देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट होते हैं और जैव विविधता में उल्लेखनीय कमी आती है। खरपतवारों की अनियंत्रित वृद्धि मृदा अपरदन को बढ़ावा देती है तथा मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक संरचना को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, अनेक खरपतवार जल निकायों में फैलकर जल प्रवाह को अवरुद्ध करते हैं, जिससे जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा घटती है और जलीय जीवों के अस्तित्व पर संकट उत्पन्न होता है। इस प्रकार, खरपतवार पर्यावरणीय स्थिरता एवं पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यक्षमता पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

4. आधारभूत संरचनाओं पर खरपतवारों के प्रभाव: खरपतवार परिवहन तंत्र एवं विभिन्न सार्वजनिक आधारभूत संरचनाओं के सुचारु संचालन में भी गंभीर बाधा उत्पन्न करते हैं। सड़कों, रेलवे लाइनों एवं हवाई अड्डों के आसपास इनकी अनियंत्रित वृद्धि दृश्यता को प्रभावित करती है, जिससे दुर्घटनाओं का जोखिम बढ़ जाता है और यातायात सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, खरपतवार नालियों, नहरों एवं अन्य जल निकासी प्रणालियों को अवरुद्ध कर देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप जलभराव एवं बाढ़ जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। सूखे एवं घासीय खरपतवार अत्यधिक ज्वलनशील होते हैं, जो आग लगने की संभावना को बढ़ाकर संपत्ति, मानव जीवन एवं पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करते हैं।

खरपतवारों के विविध उपयोग: परंपरागत रूप से खरपतवारों को कृषि के लिए हानिकारक माना गया है, किंतु हाल के वर्षों में इनके बहुआयामी एवं मूल्यवर्धित उपयोगों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। अपनी तीव्र वृद्धि क्षमता, व्यापक उपलब्धता, कम लागत तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में अनुकूलनशीलता के कारण खरपतवार एक महत्वपूर्ण जैव-संसाधन के रूप में उभर कर सामने आए हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि खरपतवारों का उपयोग कृषि, पर्यावरण, औद्योगिक एवं औषधीय क्षेत्रों में प्रभावी रूप से किया जा सकता है।

1. औषधीय उपयोग : कई खरपतवार पौधे प्राकृतिक जैव-सक्रिय यौगिकों के समृद्ध स्रोत हैं, जिनका उपयोग प्राचीन काल से आयुर्वेद, यूनानी एवं सिद्ध जैसी पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों में मानव स्वास्थ्य देखभाल हेतु किया जाता रहा है। इन पौधों में पाए जाने वाले जैविक रूप से सक्रिय यौगिक विशिष्ट रोगों के उपचार में प्रभावी सिद्ध हुए हैं। भारत में लगभग 2000 औषधियाँ पौधों से प्राप्त की जाती हैं, जिनमें से लगभग 120 खरपतवार प्रजातियाँ औषधि उद्योग के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती हैं

तालिका 1. प्रमुख खरपतवार प्रजातियाँ एवं उनके औषधीय उपयोग

खरपतवार प्रजाति	औषधि/जैव-सक्रिय यौगिक	उपयोग/रोग
धतूरा	स्कोपोलामीन	मोशन सिकनेस की रोकथाम, पार्किंसन रोग में सहायक
मोथा घास	साइमीन, सायपेरीन, कुमारन	अस्थमा, थकान, ज्वर, निमोनिया एवं टीबी
गाजर घास	पार्थेनिन, सेस्क्वीटर्पीन लैक्टोन	साइटोस्टैटिक एवं एंटी-एजियोजेनिक प्रभाव
बथुआ	एल्कलॉइड, सैपोनिन एवं फिनोलिक यौगिक	जीवाणुरोधी एवं फफूंदरोधी गतिविधि

2. भारी धातु संचायक के रूप में खरपतवार : औद्योगिक, आवासीय एवं वाणिज्यिक गतिविधियों से निकलने वाले जैविक एवं अकार्बनिक प्रदूषक पर्यावरणीय तंत्र को गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त करते हैं। अपनी तीव्र वृद्धि, अधिक जैव-भार उत्पादन, पुनर्नवीकरणीय प्रकृति, उच्च जैव-अवशोषण क्षमता तथा कम लागत के कारण खरपतवार पौधे प्रभावी जैव-अवशोषक (Biosorbents) के रूप में व्यापक ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। इनमें प्रदूषित मृदा एवं जल से विषैली भारी धातुओं को अवशोषित एवं संकेंद्रित करने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है।

3. बायोचार के रूप में खरपतवार : खरपतवार जैव-भार से बायोचार का निर्माण एवं उसका मृदा सुधार, जैव-अवशोषण तथा कार्बन प्रबंधन में उपयोग एक सतत खरपतवार प्रबंधन रणनीति है। खरपतवार जैव-भार का पायरोलाइटिक रूपांतरण कर बायोचार बनाने से इनमें उपस्थित एलिलोकेमिकल्स नष्ट हो जाते हैं, जो अन्यथा फसलों की वृद्धि एवं स्थापना में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं। इससे मृदा उर्वरता में सुधार एवं कार्बन स्थिरीकरण को भी बढ़ावा मिलता है।

4. कम्पोस्ट के रूप में खरपतवार: कम्पोस्टिंग एक नियंत्रित, एरोबिक जैव-प्रौद्योगिकीय प्रक्रिया है, जिसमें सूक्ष्मजीवों की क्रिया द्वारा जैविक पदार्थों के जटिल पॉलिमरिक यौगिक सरल रूपों में परिवर्तित हो जाते हैं। खरपतवारों से निर्मित कम्पोस्ट एक गहरे रंग का, स्थिर, ह्यूमस-युक्त जैविक पदार्थ होता है, जो मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने के साथ-साथ उसकी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में सुधार करता है।

5. एलिलोपैथी के रूप में खरपतवार : एलिलोपैथी वह प्रक्रिया है, जिसमें एक पौधा अपने आस-पास उगने वाले अन्य पौधों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव डालता है, यह प्रभाव एलिलोकेमिकल्स के माध्यम से होता है जो लीचिंग, वाष्पीकरण, जड़ स्त्राव या अपघटन के दौरान पर्यावरण में मुक्त होते हैं। एलिलोपैथिक खरपतवारों का उपयोग विभिन्न तरीकों से किया जा सकता है, जैसे (i) आवरण फसलों के रूप में, (ii) पौधों के अर्क को प्राकृतिक खरपतवारनाशी के रूप में प्रयोग करना, अथवा (iii) सक्रिय यौगिकों की पहचान कर उन्हें जैव-खरपतवारनाशी विकास के लिए उपयोग में लाना।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

खेती में बढ़ती लागत और उसका समाधान

आशीष रजक, प्रखर राय
अभिषेक सिंह, सस्य विज्ञान विभाग,
कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया)
विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया
डॉ. रवि प्रकाश गुप्ता सहायक प्रोफेसर,
कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया)
विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

भारत की अर्थव्यवस्था की नींव कृषि पर टिकी हुई है। देश की बड़ी आबादी आज भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। इसके बावजूद, वर्तमान समय में खेती एक लाभकारी व्यवसाय के बजाय किसानों के लिए आर्थिक संघर्ष का माध्यम बनती जा रही है। खेती में लगातार बढ़ती लागत ने किसानों की आय को प्रभावित किया है और कृषि संकट को और गहरा किया है।

खेती की लागत बढ़ने के मुख्य कारण

खेती की लागत बढ़ने के पीछे कई आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय कारण हैं। सबसे प्रमुख कारण बीज, उर्वरक और कीटनाशकों की बढ़ती कीमतें हैं। उन्नत किस्मों के बीज और रासायनिक उर्वरकों पर बढ़ती निर्भरता ने उत्पादन लागत को कई गुना बढ़ा दिया है।इसके साथ ही कृषि मजदूरों की कमी और मजदूरी दरों में वृद्धि भी एक गंभीर समस्या है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन के कारण खेतों में काम करने वाले श्रमिक कम हो रहे हैं, जिससे मजदूरी महंगी हो गई है।इसके अलावा डीजल, बिजली और सिंचाई खर्च में निरंतर वृद्धि, कृषि यंत्रों की महंगाई तथा उनकी मरम्मत पर होने वाला खर्च भी खेती की कुल लागत को बढ़ाता है।जलवायु परिवर्तन, असमय वर्षा, सूखा और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाएँ फसल उत्पादन को प्रभावित करती हैं, जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत और अधिक बढ़ जाती है।

बढ़ती लागत का किसानों की आय पर प्रभाव

खेती की बढ़ती लागत का सीधा असर किसानों की आर्थिक स्थिति पर पड़ता है। उत्पादन लागत अधिक होने और फसलों का उचित मूल्य न मिलने से किसानों की शुद्ध आय घटती जा रही है। कई बार किसान लागत निकालने के लिए कर्ज लेने को मजबूर हो जाते हैं।फसल खराब होने की स्थिति में यह कर्ज बोझ बन जाता है, जिससे मानसिक तनाव और असुरक्षा की भावना बढ़ती है। यह स्थिति ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी कमजोर करती है।

रासायनिक खेती और बढ़ती लागत का दुष्चक्र

पिछले कुछ दशकों में रासायनिक खेती का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। शुरू में इससे उत्पादन में वृद्धि हुई, लेकिन लंबे समय में इससे मिट्टी की उर्वरता में कमी आई।अब अच्छी पैदावार के लिए अधिक मात्रा में उर्वरक और कीटनाशकों की आवश्यकता पड़ती है, जिससे लागत बढ़ती जाती है। यह एक ऐसा दुष्चक्र बन चुका है, जिसमें किसान हर साल अधिक खर्च करने को मजबूर होता है।

लागत कम करने में जैविक और प्राकृतिक खेती की भूमिका

खेती की बढ़ती लागत से निपटने के लिए जैविक और प्राकृतिक खेती एक प्रभावी समाधान बनकर उभर रही है। गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद और जैविक कीटनाशकों का उपयोग करके रासायनिक इनपुट पर होने वाला खर्च कम किया जा सकता है।इसके साथ ही फसल चक्र, मिश्रित खेती और फसल विविधीकरण अपनाने से मिट्टी की सेहत सुधरती है और उत्पादन जोखिम भी कम होता है।

आधुनिक तकनीक और मशीनीकरण का संतुलित उपयोग

आधुनिक कृषि तकनीकें लागत घटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई जैसी सूक्ष्म सिंचाई तकनीकें पानी, बिजली और उर्वरकों की बचत करती हैं।सटीक खेती (Precision Farming) के माध्यम से आवश्यकतानुसार ही उर्वरक और पानी का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अलावा कस्टम हायरिंग सेंटर और सामूहिक मशीन उपयोग से छोटे और सीमांत किसान भी आधुनिक मशीनों का लाभ कम लागत में उठा सकते हैं।

सरकारी योजनाएँ और नीतिगत सहयोग

सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाएँ खेती की लागत कम करने में सहायक हैं। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, कृषि यंत्रों पर सब्सिडी, उर्वरक सहायता और किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम किसानों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करते हैं।जरूरत इस बात की है कि किसानों तक इन योजनाओं की सही जानकारी पहुँचे और वे इनका प्रभावी ढंग से लाभ उठा सकें।

निष्कर्ष

खेती में बढ़ती लागत एक गंभीर और बहुआयामी समस्या है, लेकिन उचित प्रबंधन, वैज्ञानिक सोच और नीतिगत सहयोग से इसका समाधान संभव है। यदि किसान टिकाऊ खेती, आधुनिक तकनीक और प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग करें, तो खेती को फिर से लाभकारी बनाया जा सकता है।कम लागत, अधिक आय और पर्यावरण संरक्षण पर आधारित कृषि व्यवस्था ही देश के कृषि भविष्य को सुरक्षित और समृद्ध बना सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

भारतीय त्योहारों का बदलता स्वरूप: परंपरा बनाम बाज़ारीकरण

दिव्या कौशिक, आयुषी मिश्रा
शोधार्थी, मानव विकास और परिवार अध्ययन विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर-208002 (उ.प्र.)

प्रस्तावना: भारतीय समाज अपनी सांस्कृतिक विविधता और पारंपरिक समृद्धि के लिए विश्वविख्यात है। इस संस्कृति का सबसे जीवंत और अभिव्यक्तिपूर्ण पहलू हैं–यहाँ मनाए जाने वाले त्योहार। भारत में प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक प्रदेश, और लगभग हर मान्यता के अनुरूप कोई न कोई उत्सव अवश्य मौजूद है। इन त्योहारों में केवल धार्मिक आस्था ही नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता, पारिवारिक एकता, और सामूहिक जीवन की चेतना समाहित होती है। किन्तु बदलते समय के साथ त्योहारों का स्वरूप भी बदल रहा है। आज परंपरा और बाज़ारीकरण के बीच एक स्पष्ट रेखा खिंचती नज़र आती है। प्रश्न यह है कि इस परिवर्तन में हम क्या खो रहे हैं और क्या पा रहे हैं?

परंपरा का सांस्कृतिक पक्ष: भारतीय त्योहारों की जड़ें हमारी प्राचीन सभ्यता में निहित उन मूल सिद्धांतों से जुड़ी हैं, जो आत्मिक पवित्रता, प्रकृति के प्रति आभार, और सामाजिक समरसता को सर्वोच्च मानते हैं। इन उत्सवों की अवधारणा मात्र धार्मिक रीति-रिवाजों के निर्वहन तक सीमित नहीं रही, बल्कि उन्होंने मानवीय संवेदनाओं, सामूहिक सहयोग और सामाजिक सौहार्द्र को पुष्ट करने में अहम भूमिका निभाई है।

उदाहरण स्वरूप, दीपावली केवल राम के अयोध्या आगमन का उल्लासमय स्वागत नहीं है, बल्कि यह आत्मावलोकन, आध्यात्मिक जागरण और अंधकार पर प्रकाश की विजय का प्रतीक भी है। इसी प्रकार, होली महज रंगों की होड़ नहीं, बल्कि यह जात-पात, वर्ग और भेदभाव को भुलाकर एकता और भाईचारे का पर्व है। ईद, गुरुपर्व, नवरात्रि और क्रिसमस जैसे उत्सव भी केवल धार्मिक कर्मकांडों की पूर्ति नहीं, बल्कि मानवता, दया और सामूहिकता के आदर्शों से जुड़े रहे हैं। इन सभी त्योहारों का मूल भाव एक साझा तत्व में समाहित है–सामूहिक सहभागिता और रिश्तों की गहराई। इन पर्वों में उपहारों या वस्तुओं के आदान-प्रदान को केंद्रीय स्थान नहीं दिया गया, बल्कि उनका मूल उद्देश्य आपसी संवाद, प्रेम, सहयोग और भीतर की आत्मिक समृद्धि को बढ़ावा देना रहा है। त्योहार, व्यक्ति को समाज से जोड़ते हैं, और एक व्यापक सांस्कृतिक चेतना को सुदृढ़ करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय त्योहार केवल मनोरंजन या उपभोग का माध्यम नहीं, बल्कि हमारी जीवनशैली में अंतर्निहित उन मूल्यों का उत्सव हैं जो हमें आत्मीयता, सहिष्णुता और एकात्मता की भावना से जोड़ते हैं।

बाज़ारीकरण का उदय: उपभोक्तावादी संस्कृति, वैश्वीकरण और डिजिटल मीडिया की अनवरत वृद्धि ने त्योहारों को एक नए आयाम में पहुंचा दिया है। जहाँ पहले दीवाली में घर की सफाई, दीप प्रज्वलन और पारिवारिक पूजा की परंपरा थी, वहीं अब यह 'सेल', 'डिस्काउंट', 'फैन्सी लाइटिंग' और 'गिफ्ट पैकेजिंग' की प्रतिस्पर्धा में बदलती जा रही है।

त्योहार अब बाजार की योजनाओं का हिस्सा हैं–'फेस्टिव बोनांज़ा', 'सेलिब्रेशन ऑफर', 'रक्षाबंधन हैम्पर्स', 'ईद स्पेशल कलेक्शन', और यहाँ तक कि 'होली स्पा पैकेज' तक अस्तित्व में आ गए हैं। सोशल मीडिया ने भी इस परिवर्तन को और अधिक दृश्यमान और गतिशील बना दिया है – अब त्योहारों का अनुभव 'इंस्टाग्रामेबल' होना चाहिए।

यह सब उपभोग की एक ऐसी प्रवृत्ति को जन्म देता है जिसमें त्योहार अनुभूति से अधिक प्रदर्शन बन जाते हैं।

सांस्कृतिक क्षरण के संकेत: आधुनिक उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों ने त्योहारों की मूल आत्मा को स्पर्श करने के बजाय उसे आडंबर और दिखावे की चादर में ढँक दिया है। जिन पर्वों के पीछे गहरी ऐतिहासिक घटनाएँ, धार्मिक भावनाएँ, लोकपरंपराएँ और सामाजिक शिक्षाएँ थीं, वे अब धीरे-धीरे लोगों की स्मृति से ओझल होती जा रही हैं। आज के बच्चे दीपावली की पौराणिक कथा या उसके आध्यात्मिक संदेशों से अधिक, ऑनलाइन डिस्काउंट और ÷फ्लैश सेल÷ जैसे शब्दों से परिचित हैं। होली के धार्मिक महत्व की चर्चा कम होती है, और अधिक चर्चा होती है ब्रांडेड रंगों और आयोजनों की। यह प्रवृत्ति एक चिंताजनक स्थिति की ओर इशारा करती है, जहाँ सांस्कृतिक स्मृतियाँ मिट रही हैं और बाज़ारी भाषा त्योहारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती जा रही है। यह केवल विस्मरण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रदूषण की स्थिति है, जिसमें त्योहारों की आत्मिक गरिमा और गहराई बाज़ार के तामझाम में खोती जा रही है।

सामाजिक प्रभाव: बाज़ारीकरण के प्रभाव से त्योहारों की सार्वजनिक सहभागिता कम हुई है और व्यक्तिकेंद्रित उपभोग बढ़ा है। पहले जहां पूरी बस्ती, मोहल्ला, या गाँव एकसाथ किसी आयोजन में सम्मिलित होता था, अब कार्यक्रम क्लोज्ड सर्किल और डिजिटल इनवाइट्स तक सीमित रह गए हैं। सांस्कृतिक अंतर्संबंधों में दरार स्पष्ट है–संवाद घटा है, आत्मीयता में कमी आई है और पर्व 'मोमेंट्स' से 'कन्टेन्ट' में बदल गए हैं।

बाज़ारीकरण के सकारात्मक पहलू?: यह भी सत्य है कि बाज़ारीकरण पूर्णतः नकारात्मक नहीं है। इसने त्योहारों को राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर पहचान दी है। कारीगरों, हस्तशिल्पियों और छोटे व्यापारियों के लिए त्यौहार अब आर्थिक अवसर बन चुके हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने पारंपरिक वस्तुओं, जैसे–मिट्टी के दीये, हाथ से बनी राखियाँ, जैविक रंग आदि के प्रचार-प्रसार को आसान बनाया है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब बाज़ारीकरण सहायक तत्व की बजाय प्रमुख उद्देश्य बन जाता है।

समाधान और पुनर्निर्माण: त्योहारों की आत्मा को पुनर्जीवित करने के लिए केवल आलोचना पर्याप्त नहीं, रचनात्मक हस्तक्षेप की आवश्यकता है-

1. शिक्षा प्रणाली में त्योहारों के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक महत्व को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।
2. मीडिया और विज्ञापन जगत को चाहिए कि वे प्रचार करते समय परंपरा और संवेदना का संतुलन बनाए रखें।
3. परिवारों को चाहिए कि वे बच्चों को केवल उपहार न दें, बल्कि उनके साथ कथा, पूजा-पाठ, रीति-रिवाज़ों में भागीदारी कराएं।
4. स्थानीय समुदाय और नगरपालिकाएं पारंपरिक त्योहारों को सामूहिक, पर्यावरण-संवेदनशील और लोक-समर्थ आयोजन के रूप में पुनः प्रस्तुत करें।

निष्कर्ष: भारतीय त्योहार केवल कैलेंडर की तिथियाँ नहीं हैं, बल्कि वे हमारी सांस्कृतिक चेतना की जीवंत झलक हैं, जो जीवन के विविध पहलुओं को आध्यात्मिकता, सामाजिकता और भावनात्मक जुड़ाव से जोड़ती हैं। इन उत्सवों को केवल बाज़ार के विज्ञापनों, उपहारों और सेल-ऑफर्स की भाषा में सीमित कर देना, उस गहरी परंपरा और मूल्य-व्यवस्था के साथ अन्याय है जिसने हमें परस्पर सहयोग, सह-अस्तित्व और आत्मिक उन्नयन की राह दिखाई है। वर्तमान समय में परंपरा और आधुनिकता के बीच जो संघर्ष दिखता है, वह वास्तव में टालने योग्य है–यदि हम सजग और संतुलित दृष्टिकोण अपनाएं। आवश्यकता इस बात की है कि हम दोनों के बीच एक ऐसा समन्वय स्थापित करें, जिसमें आधुनिकता हमारे मूल्यों को विस्मृत न करे, बल्कि उन्हें नए संदर्भ में और अधिक प्रासंगिक बनाकर प्रस्तुत करे। बाज़ारीकरण तब तक स्वीकार्य और उपयोगी है, जब तक वह हमारी संस्कृति के संवाहक की भूमिका निभाता है; लेकिन जब वह केवल उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने लगे और परंपराओं को सतही बना दे, तब वह हानिकारक बन जाता है।

हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि भविष्य की पीढ़ियाँ त्योहारों को केवल उपहार या मनोरंजन के अवसर के रूप में नहीं, बल्कि उनसे जुड़ी भावनाओं, संबंधों और सांस्कृतिक पहचान के जीवंत अनुभव के रूप में समझें और अपनाएं।

संदर्भ

1.वर्मा, रामकुमार। भारतीय संस्कृति और परंपराएं। नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी), 2018।

2.मिश्रा, वी.एन. ग्लोबलाइजेशन और भारतीय समाज। नई दिल्ली: जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, 2020।

3.भारत सरकार। भारतीय त्योहारों की सांस्कृतिक विरासत। संस्कृति मंत्रालय प्रकाशन, 2021।

4.भारत अध्ययन केंद्र। त्योहार और उपभोक्तावाद। दिल्ली विश्वविद्यालय, शोध पत्र, 2022।

5.÷भारत में बाज़ारीकरण का सामाजिक प्रभाव।÷ सामाजिक अध्ययन पत्रिका, खंड 12, अंक 3, जुलाई-सितंबर 2021, पृष्ठ 45-59।

6."डिजिटल युग में सांस्कृतिक उत्सव।" मीडिया एवं समाज पत्रिका, अंक 27, जनवरी 2023, पृष्ठ 22-30।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

परंपरा, प्रौद्योगिकी और परिवर्तन: भारतीय कृषि आज कहां खड़ी है?

हिमांशु प्रजापति (एमएससी छात्र), सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय
डॉ. ललित कुमार सनोदिया सहायक प्रोफेसर, कृषि विज्ञान संकाय प्रो.राजेंद्र सिंह (रज्जु भैया) विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ.प्र.)

परिचय: भारतीय कृषि देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ होने के साथ-साथ हमारी संस्कृति और परंपरा का अभिन्न हिस्सा रही है। प्राचीन काल से ही भारत में खेती प्रकृति, अनुभव और पारंपरिक ज्ञान पर आधारित रही है। समय के साथ-साथ जनसंख्या वृद्धि, खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता और वैश्विक बदलावों ने कृषि में आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाने का मार्ग प्रशस्त किया। आज भारतीय कृषि एक ऐसे संक्रमण काल से गुजर रही है, जहाँ परंपरागत खेती और आधुनिक तकनीक के बीच संतुलन बनाना एक बड़ी चुनौती और अवसर दोनों है। ऐसे में यह समझना आवश्यक हो जाता है कि वर्तमान समय में भारतीय कृषि किस दिशा में आगे बढ़ रही है और भविष्य की संभावनाएँ क्या हैं।

1. भारतीय कृषि की परंपरागत जड़ें-भारतीय कृषि की जड़ें अत्यंत प्राचीन और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध परंपराओं में निहित हैं। यह केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता और सामाजिक जीवन का आधार रही है। सिंधु घाटी सभ्यता से प्राप्त प्रमाण दर्शाते हैं कि उस समय उन्नत सिंचाई प्रणाली, अनाज भंडारण और फसल उत्पादन की सुव्यवस्थित पद्धतियाँ मौजूद थीं। इससे स्पष्ट होता है कि कृषि भारतीय समाज की प्रारंभिक संरचना का प्रमुख अंग थी। वैदिक काल में कृषि को पवित्र कर्म माना गया। ऋग्वेद और अन्य ग्रंथों में भूमि, वर्षा और बीज के महत्व का उल्लेख मिलता है। किसान प्रकृति के साथ संतुलन बनाकर खेती करते थे। मिश्रित खेती, फसल चक्र और पशुपालन पर आधारित यह प्रणाली प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सहायक थी। परंपरागत कृषि की एक बड़ी विशेषता स्थानीय ज्ञान और अनुभव पर आधारित होना था। किसान मिट्टी की गुणवत्ता, मौसम के संकेत और जल स्रोतों की प्रकृति को समझकर खेती करते थे। गोबर खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट जैसे जैविक उपायों से भूमि की उर्वरता बनी रहती थी। स्थानीय बीजों का उपयोग जलवायु के अनुकूल और रोग-प्रतिरोधी फसलों को सुनिश्चित करता था।सामुदायिक सहयोग भी परंपरागत कृषि की पहचान था। सिंचाई, श्रम और भंडारण में गाँव स्तर पर सहभागिता होती थी, जिससे सामाजिक एकता मजबूत होती थी।हालाँकि यह प्रणाली पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ थी, परंतु उत्पादन सीमित था। बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं ने आगे चलकर कृषि में तकनीकी परिवर्तन की जरूरत पैदा की इस प्रकार, भारतीय कृषि की परंपरागत जड़ें आज भी सतत कृषि और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण की प्रेरणा देती हैं।

2. हरित क्रांति और संरचनात्मक परिवर्तन: स्वतंत्रता के बाद भारत गंभीर खाद्यान्न संकट से जूझ रहा था। बढ़ती जनसंख्या, कम उत्पादकता और आयात पर निर्भरता ने कृषि व्यवस्था की कमजोरियों को उजागर कर दिया। इसी पृष्ठभूमि में 1960 के दशक के मध्य हरित क्रांति का आरंभ हुआ, जिसने भारतीय कृषि की संरचना, तकनीक और उत्पादन प्रणाली में व्यापक परिवर्तन किया। हरित क्रांति का मुख्य उद्देश्य था खाद्यान्न उत्पादन में तीव्र वृद्धि कर देश को आत्मनिर्भर बनाना। इसके तहत उच्च उपज देने वाली किस्मों (HYV बीज) का उपयोग शुरू हुआ, विशेषकर गेहूँ और धान में साथ ही, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का बड़े पैमाने पर प्रयोग, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार (नहरें, ट्यूबवेल) और कृषि यंत्रीकरण (ट्रैक्टर, थ्रेशर) को बढ़ावा दिया गया। सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), सरकारी खरीद प्रणाली और कृषि अनुसंधान संस्थानों के माध्यम से इस परिवर्तन को संस्थागत समर्थन दिया।इस क्रांति ने भारतीय कृषि की संरचना को बदल दिया। कृषि केवल जीविका का साधन न रहकर धीरे-धीरे व्यावसायिक गतिविधि में परिवर्तित होने लगी। उत्पादन कुछ विशेष फसलों और क्षेत्रों जैसे पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में केंद्रित हो गया। बाजार, बैंकिंग और कृषि-इनपुट उद्योगों का विकास हुआ, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नकदी प्रवाह बढ़ा उपलब्धियों की दृष्टि से भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बना और अकाल जैसी स्थितियों पर काफी हद तक नियंत्रण पाया गया। किसानों की उत्पादकता बढ़ी और खाद्य सुरक्षा मजबूत हुई। हालाँकि, इसके कुछ दुष्प्रभाव भी सामने आए।

3. प्रौद्योगिकी का प्रवेश: आधुनिक भारतीय कृषि-हरित क्रांति के बाद भारतीय कृषि ने उत्पादन वृद्धि तो प्राप्त की, परंतु साथ ही मृदा क्षरण, जल संकट, बढ़ती लागत और पर्यावरणीय असंतुलन जैसी समस्याएँ भी सामने आईं। बदलती जलवायु और सीमित प्राकृतिक संसाधनों ने यह स्पष्ट कर दिया कि पारंपरिक और इनपुट-आधारित कृषि अब पर्याप्त नहीं है। इसी पृष्ठभूमि में 21वीं सदी में प्रौद्योगिकी का प्रवेश भारतीय कृषि के लिए एक नए युग की शुरुआत बनकर उभरा।आधुनिक भारतीय कृषि में तकनीक का उद्देश्य केवल उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि खेती को सटीक, टिकाऊ और लाभकारी बनाना है। इस दिशा में सटीक कृषि (Precision Farming) एक महत्वपूर्ण कदम है। GPS, सैटेलाइट इमेजरी, सेंसर और ड्रोन के माध्यम से खेत की मिट्टी, नमी, पोषक तत्व और फसल स्वास्थ्य का आकलन किया जाता है। इससे उर्वरकों, जल और कीटनाशकों का अनावश्यक उपयोग कम होता है तथा लागत में कमी आती है। डिजिटल प्रौद्योगिकी ने किसानों की सूचना तक पहुँच को आसान बनाया है। मोबाइल ऐप, कृषि पोर्टल, मौसम पूर्वानुमान प्रणाली और ई-नाम (e-NAM) जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म किसानों को सही समय पर बाजार मूल्य, मौसम की जानकारी और सरकारी योजनाओं से जोड़ते हैं। इससे किसानों की निर्णय लेने की क्षमता मजबूत हुई है और बिचौलियों पर निर्भरता कुछ हद तक कम हुई है। जल प्रबंधन के क्षेत्र में सूक्ष्म सिंचाई तकनीक जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर ने विशेष भूमिका निभाई है। ये तकनीकें जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के साथ-साथ फसल की उत्पादकता में भी सुधार करती हैं, जो जल-संकटग्रस्त भारत जैसे देश के लिए अत्यंत आवश्यक है।

4. परिवर्तन के दौर की चुनौतियां-परंपरा से आधुनिक प्रौद्योगिकी की ओर बढ़ती भारतीय कृषि आज एक संक्रमणकाल से गुजर रही है। जहाँ एक ओर नई तकनीकों, डिजिटल प्लेटफॉर्म और सरकारी योजनाओं ने कृषि को नई दिशा दी है, वहीं दूसरी ओर कई गंभीर संरचनात्मक, आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं। ये चुनौतियाँ कृषि परिवर्तन की गति और प्रभावशीलता को प्रभावित कर रही हैं। सबसे बड़ी चुनौती जलवायु परिवर्तन है। अनियमित वर्षा, बढ़ता तापमान, सूखा और बाढ़ जैसी चरम मौसमी घटनाएँ फसल उत्पादन को अस्थिर बना रही हैं। पारंपरिक कृषि कैलेंडर अब उतना भरोसेमंद नहीं रहा, जिससे किसानों की जोखिम क्षमता बढ़ गई है। इसके साथ ही जल संकट भी गंभीर होता जा रहा है। भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन और असंतुलित सिंचाई प्रणालियाँ कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। दूसरी प्रमुख चुनौती भूमि का विखंडन है। बढ़ती जनसंख्या के कारण जोत का आकार लगातार छोटा होता जा रहा है, जिससे आधुनिक तकनीक अपनाना कठिन हो जाता है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए उच्च लागत वाली तकनीकें, उन्नत बीज और यंत्रीकरण आज भी पूरी तरह सुलभ नहीं हैं। इससे कृषि में तकनीकी असमानता बढ़ने की आशंका बनी रहती है।

5. परंपरा और प्रौद्योगिकी का संतुलन: भारतीय कृषि वर्तमान समय में ऐसे मोड़ पर खड़ी है जहाँ केवल परंपरागत तरीकों या केवल आधुनिक तकनीक पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। भविष्य की कृषि उस मॉडल पर आधारित होगी जिसमें परंपरागत ज्ञान की स्थिरता और प्रौद्योगिकी की दक्षता दोनों का संतुलित समन्वय हो। यही संतुलन कृषि को उत्पादक, पर्यावरण-अनुकूल और आर्थिक रूप से लाभकारी बना सकता है। परंपरागत कृषि पद्धतियाँ जैसे मिश्रित खेती, फसल चक्र, जैविक खाद और स्थानीय बीजप्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सहायक रही हैं। ये विधियाँ मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता और पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आज जब मृदा क्षरण, जल संकट और रासायनिक प्रदूषण जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, तब यह पारंपरिक ज्ञान पुनः प्रासंगिक हो उठा है। दूसरी ओर, आधुनिक प्रौद्योगिकी खेती को सटीक और वैज्ञानिक बनाती है। सटीक कृषि, डिजिटल सूचना प्रणाली, सूक्ष्म सिंचाई और उन्नत बीज तकनीक उत्पादन बढ़ाने, लागत घटाने और जोखिम प्रबंधन में सहायक हैं। तकनीक के माध्यम से किसान मौसम, बाजार और पोषण प्रबंधन से संबंधित त्वरित जानकारी प्राप्त कर सकता है, जिससे निर्णय अधिक प्रभावी बनते हैं। संतुलन का अर्थ यह नहीं कि दोनों प्रणालियाँ अलग-अलग चलें, बल्कि यह कि पारंपरिक सिद्धांतों को आधुनिक तकनीक के साथ जोड़ा जाए। उदाहरण के लिए, जैविक खाद के साथ संतुलित उर्वरक उपयोग, पारंपरिक जल संरक्षण पद्धतियों के साथ आधुनिक ड्रिप सिंचाई, तथा स्थानीय बीजों के संरक्षण के साथ उन्नत किस्मों का चयन–ये सभी समन्वित कृषि के उदाहरण हैं। सरकारी नीतियाँ भी इसी दिशा में आगे बढ़ रही हैं। प्राकृतिक खेती, जैविक कृषि, किसान उत्पादक संगठन (FPO), मृदा स्वास्थ्य कार्ड और डिजिटल कृषि मिशन जैसे कार्यक्रम इस संतुलित मॉडल को बढ़ावा देते हैं। इन प्रयासों का उद्देश्य केवल उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि सतत और समावेशी कृषि प्रणाली विकसित करना है। इस प्रकार, परंपरा और प्रौद्योगिकी का संतुलन ही भारतीय कृषि को दीर्घकालिक स्थिरता, खाद्य सुरक्षा और किसानों की समृद्धि की दिशा में आगे बढ़ा सकता है। यही संतुलन भविष्य की कृषि विकास रणनीति का आधार बनता है।

निष्कर्ष: परंपरा, प्रौद्योगिकी और परिवर्तन के संगम पर खड़ी भारतीय कृषि एक निर्णायक मोड़ पर है। यदि परंपरागत ज्ञान की समझ के साथ आधुनिक तकनीक का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए, तो भारतीय कृषि न केवल किसानों की आय बढ़ा सकती है, बल्कि खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण विकास का मजबूत आधार भी बन सकती है। यही संतुलन भारतीय कृषि को एक स्थायी और समृद्ध भविष्य की ओर ले जाएगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता : भविष्य की खेती की नई दिशा

अनुराग सिंह मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
हर्षित सिंह सस्य विज्ञान विभाग
अमन यादव, हर्षित कटियार कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज,अयोध्या

भूमिका : भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ लगभग 58त्न जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। परंपरागत कृषि पद्धतियाँ अब जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि, सीमित संसाधनों और घटती उत्पादकता जैसी चुनौतियों का सामना कर रही हैं। ऐसे में कृत्रिम बुद्धिमत्ता कृषि क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में उभर रही है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) एक कंप्यूटिंग सिस्टम है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता को आसानी से उन कार्यों को करने के लिए अपनाया जा सकता है, जो मानव द्वारा कंप्यूटर के माध्यम से किये जाते हैं। यह मानव की तुलना में उन्नत प्रदर्शन करता है। एआई, कृषि में स्वचालन और रोबोटिक्स को अपनाकर विश्लेषणात्मक एवं ज्ञान दृष्टिकोण द्वारा शारीरिक श्रम को कम कर सकता है। कृषि में अधिक ऊर्जा के साथ लंबी अवधि तक कई कृषि कार्यों को करना पड़ता है। उदाहरण के लिये ट्रैक्टर चलाना, कटाई, रसायनों का अनुप्रयोग, सिंचाई आदि का संयोजन करना आदि।

भारतीय कृषि की वर्तमान चुनौतियां: भारत में कृषि क्षेत्र कई समस्याओं से जूझ रहा है अनिश्चित मौसम और जलवायु परिवर्तन, जल की कमी, कीट और फसल रोग,कम उत्पादकता, बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव, किसानों की कम आय

कृषि में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की संरचना: प्रिसिजन एग्रीकल्चर के लिए फार्म प्रबधंन में सचूना प्राद्योगिकी, रिमोर्ट सेंसिंग आरै डेटा एकत्र करना बहुत महत्वपूर्ण है। इससे कितना, कहां, क्या, कब और कैसे सवालों के जवाब मिल जाते हैं। ये प्रौद्योगिकियां मुनाफे का अनुकूलन करती हैं और विपरीत पर्यावरणीय प्रभावों को कम करती हैं। सेंसर, वास्तविक समय पर डेटा प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जैसे-मृदा और परिवेश का तापमान, नमी, सिंचाई जल, मृदा की चालकता और पी-एच मान, मृदा पोषक तत्व, सिंचाई पानी के गुण इत्यादि। इन आंकड़ों को संचार माध्यमों द्वारा तारहित माध्यम (वाइफाई, ब्लूटुथ और इंटरनेट) द्वारा प्रेषित किया जा सकता है। विभिन्न सॉफ्टवेयर का उपयोग करके डेटा का विश्लेषण किया जाता है। कृषि कार्यों के प्रबंधन के लिए उनके विश्लेषण परिणाम का उपयोग किया जाता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस कृषि संचालन के प्रबंधन में एक नई दिशा दे रहा है।

फसल निगरानी में AI की भूमिका: AI आधारित ड्रोन, सैटेलाइट और सेंसर फसलों की:वृद्धि, पत्तियों के रंग,नमी स्तर, पोषक तत्वों की कमी की निगरानी करते हैं। इससे किसान समय रहते सही निर्णय ले सकते हैं और नुकसान से बच सकते हैं।

मौसम पूर्वानुमान और जलवायु प्रबंधन:-AI बड़े स्तर पर मौसम डेटा का विश्लेषण कर:वर्षा का अनुमान,सूखा या बाढ़ की चेतावनी,तापमान परिवर्तन की जानकारी प्रदान करती है इससे किसान बुवाई, सिंचाई और कटाई की बेहतर योजना बना पाते हैं।

मृदा में नमी माप: मृदा की नमी की मात्रा समय के साथ और वाष्पीकरण के साथ बदल जाती है। इसलिए पानी के प्रति संवेदनशील फसलों के लिए मृदा नमी की निरंतर निगरानी महत्वपूर्ण है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस तकनीक से क्षेत्र में सिंचाई प्रणाली में स्वचालन संभव है। एआई इलेक्ट्रिक पंप के साथ एकीकृत, नमी सेंसर से क्षेत्र के पानी की मात्रा का विश्लेषण होता है, और वास्तविक समय के डेटा के आधार पर, एआई पंप को नियंत्रित करने के लिए, स्वचालन प्रणाली में पंप को इस प्रणाली के साथ जोड़ा जाता है। इससे बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। रसायनों के समान वितरण के कारण, निक्षेप, अधिक मात्रा में या कम मात्रा में होता है। जब एक बड़े क्षेत्र को छोटी इकाई में विभाजित करके, उपलब्ध पोषक तत्वों के स्तर पर पोषक तत्व की उपलब्धता का नक्शा बनाकर प्रसंस्करण या कंप्यूटिंग इकाई में दिया जाता है, तब एआई तकनीक के साथ पोषक तत्व नक्शा आधारित रासायनिक और उर्वरक वितरण अधिक प्रभावी है। इसी तरह इमेज प्रोसेसिंग तकनीक का उपयोग करके कीट या रोग के संक्रमण का स्तर एवं स्थान का पता लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त स्थान को अक्षांश और देशांतर स्थिति के अनुसार चिन्हित और पहचाना जाता है। इन आंकड़ों का उपयोग कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली द्वारा रोबोट या स्वचालित एप्लीकेटर द्वारा सटीक प्रबंधन को निष्पादित करने हेतु किया जाता है। इसके बाद, क्षेत्र में रसायनों और उर्वरकों का प्रयोग स्वचालन प्रणाली और रोबोटिक्स एप्लीकेशन द्वारा खेत या ग्रीनहाउस में इष्टतम दर से किया जाता है।

रोग विश्लेषण: रोगों आरै कीटों के प्रकोप के कारण फसल क्षतिग्रस्त हो जाती है। एआई फसल रोग और कीट उपस्थिति का पता लगाने में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है, जो प्रबंधन के लिए प्रमुख कारक हैं। इसलिए सेंसर आधारित वास्तविक समय डेटा संग्रह और इसका कुशलतापूर्वक विश्लेषण एआई द्वारा निरंतर करते हुए निगरानी संभव है। छवि प्रसंस्करण एक उन्नत तकनीक है, जिसका उपयोग फसल में रोग आरै कीट का पता लगाने हेतु किया जाता है, ताकि कीटनाशक के अनुकूलतम प्रयोग के साथ संक्रमण को नियंत्रित किया जा सके। समस्या से निपटने हेतु उपयुक्त मॉडल के साथ आंकड़ा सेट के विश्लेषण और प्रशिक्षण हेतु गणितीय दृष्टिकोण और तार्किक तरीकों का उपयोग किया जाता है।

स्मार्ट सिंचाई प्रणाली: मिट्टी की नमी, मौसम और फसल की आवश्यकता के अनुसार, सही मात्रा में पानी, सही समय पर सिंचाई सुनिश्चित करती है। इससे जल संरक्षण होता है और लागत कम होती है।

निराई-गुड़ाई कार्य: ए.आई. आधारित तकनीक खरपतवार का पता लगाने और यांत्रिक या रसायन स्वचालन प्रणाली द्वारा निराई के लिये बहुत उपयोगी है क्षेत्र के हरे रंग का विश्लेषण किया जाता है और तद-?सुार, खरपतवारनाशी का छिड़काव किया जाता है। इसके अलावा फसल की रूपरेखा/रूपात्मक विशेषता का पता लगाने वाली तकनीक द्वारा खरपतवारों की पहचान करने और मुख्यफसल को खरपतवारों से अलग करने के लिए उपयोग किया जाता है। फसलों और खरपतवारनाशी के मापदंडों का विश्लेषण किया जाता है और विभिन्न विशिष्ट विशेषताओं और परिकल्पना के अनुसार क्लस्टर में विभाजित किया जाता है। इससे खरपतवार और फसल की विशेषता को विकसित किया जाता है। इसका उपयोग खरपतवार सक्रंमण को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

उत्पादन और उपज में वृद्धि: आधारित एनालिटिक्स बीज चयन,उर्वरक प्रबंधन,फसल चक्र निर्धारण में सहायता करती है।इससे प्रति हेक्टेयर उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

परिपक्वता स्तर का विश्लेषण और कटाई: कटाई के लिए फसल की परिपक्वता का सही स्तर महत्वपूर्ण है। नमी की अधिक मात्रा के कारण फसल की अपरिपक्व कटाई से नुकसान होता है, जिससे किसान को हानि होती है। इसलिए उपयुक्त कटाई का समय बहुत महत्वपूर्ण है और यह विभिन्न आदानों जैसे कि भौतिक गुणों रंग, गंध, घनत्व, नमी आदि जैसे विभिन्न मापदंडों का विश्लेषण करके किया जाता है। एआई में फसल मापदंडों की परिपक्वता संबंधित मानक हस्ताक्षर से तुलना करने की क्षमता होती है। छवि प्रसंस्करण और ई-नाक सेंसर फसल की परिपक्वता का आकलन करने में प्रभावी पाए जाते हैं। इनके उपयोग से फसल के नुकसान को बचाया जा सकता है तथा किसान के लाभ को बढ़ाया जा सकता है।

बाजार मूल्य और आपूर्ति श्रृंखला में AI: किसानों को फसल के भविष्य मूल्य का अनुमान,मांग और आपूर्ति की जानकारी,सही समय पर बिक्री का सुझाव देती हैइससे किसानों की आय बढ़ती है और बिचौलियों की भूमिका कम होती है।

सरकारी पहल और एग्रीटेक स्टार्टअप्स: भारत सरकार और निजी क्षेत्र AI को बढ़ावा दे रहे हैं:डिजिटल कृषि मिशन,किसान ई-मित्र ऐप,एग्रीटेक स्टार्टअप्स ये प्लेटफॉर्म किसानों तक तकनीक और जानकारी पहुंचा रहे हैं।

AI से होने वाले लाभ:

किसानों के लिए लाभकारी-एआई का उपयोग छोटे भूमिधारकों के लिए बहुत उपयुक्त है। भारत में ऐसे छोटे किसानों की एक बड़ी संख्या है। इससे रोपण की बारीकियों (बीज की गहराई, स्थान, दर, आवश्यकताओं के अनुसार उर्वरक), रोगों की जानकारी, सिंचाई समय सारणी फसल की परिपक्वता स्तर आदि पर जानकारी मिलती है। विभिन्न मानकों पर विवरण एकत्र करने के लिए कृषि कार्यों में उपयोग किए जाने वाले सेंसर, इंटरनेट ऑफ थिंग्स भी वास्तविक समय में सूचना देने और समाधान के लिए खेतों में एक महत्वपूर्ण कारक हैं। खेती में किसान एआई द्वारा प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग कर सकते हैं, जो सेंसर के माध्यम से वास्तविक काल में उपयुक्त कदम उठाने में मदद करता है और समाधान देता है। एंड्रॉइड आधारित स्मार्टफोन अधिकतर किसानों के पास उपलब्ध एक सामान्य उपकरण है। इसका उपयोग दूरस्थ स्थानों से फसलों और उपकरणों के प्रबंधन और निगरानी के लिए किया जा सकता है।

AI के उपयोग में चुनौतियाँ: कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा उत्पन्न चुनौतियाँ:-प्रौद्योगिकी के हमेशा सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू होते हैं। अन्य तकनीकों की तरह, कृत्रिम बुद्धिमत्ता के भी कई लाभ हैं, विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में। हालांकि, कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग के कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग से जुड़ी कुछ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैं

तकनीकी कार्यान्वयन का प्रतिरोध: प्रौद्योगिकी को लेकर विभिन्न व्यक्तित्वों के अलग-अलग विचार होते हैं, खासकर मानव श्रम की आवश्यकता वाले कार्यों को कम करने के संदर्भ में। इसलिए, व्यक्ति, श्रमिक और यहां तक कि प्रबंधन भी विभिन्न कारणों से कृत्रिम बुद्धिमत्ता के एकीकरण का विरोध कर सकते हैं। कृषि क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के कार्यान्वयन का विरोध करने का एक प्रमुख कारण नौकरियों के नुकसान का डर है।

गोपनीयता और सुरक्षा संबंधी मुद्दे: कई बार, प्रौद्योगिकियां निजता या सुरक्षा के लिए अधिक जोखिम लेकर आती हैं। वे निजता और सुरक्षा पर दीर्घकालिक समस्याएं पैदा कर सकती हैं - चाहे वे सकारात्मक हों या नकारात्मक। इसलिए, कृषि क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) को एकीकृत करते समय दीर्घकालिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक अनुकूलित समाधान विकसित करना आवश्यक है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संभावित जोखिमों में से एक सूचना का रिसाव है, क्योंकि इस क्षेत्र में बड़ी मात्रा में सूचनाओं का प्रबंधन किया जाता है। साथ ही, कृत्रिम बुद्धिमत्ता की जटिलता सुरक्षा खामियों को जन्म दे सकती है, क्योंकि प्रौद्योगिकी जितनी जटिल होगी, छोटी-मोटी सुरक्षा खामियों का पता लगाना उतना ही मुश्किल होगा। इसलिए, AI पर अत्यधिक निर्भर कृषि कंपनियों को अपनी व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा और निजता के बारे में पूरी तरह आश्वस्त होना चाहिए।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

कृत्रिम गर्भाधान और सरकारी योजनाएं

डॉ. निर्भय भावसार एम.वी.एससी. - प्रसार शिक्षा विभाग, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, बरेली (उ.प्र.)
डॉ. सोनू कुमार यादव पीएच.डी.
शोधकर्ता, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

भारत विश्व के प्रमुख पशुधन-सम्पन्न देशों में शामिल है तथा अनेक पशुधन श्रेणियों में इसका वैश्विक स्तर पर अग्रणी स्थान है। देश में कुल पशुधन आबादी का अनुमान लगभग 53-54 करोड़ है जो विश्व की कुल पशुधन संख्या का लगभग 11-12 प्रतिशत भाग है। इस आधार पर भारत को विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त माना जाता है।

भारत में गायों की संख्या लगभग 19-20 करोड़ आँकी गई है जिसके कारण यह विश्व में दूसरे स्थान पर स्थित है। वहीं भैंसों की संख्या लगभग 11-12 करोड़ होने के साथ भारत इस श्रेणी में विश्व में प्रथम स्थान रखता है। विश्व की कुल भैंस आबादी का लगभग 55-60 प्रतिशत भाग अकेले भारत में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, देश में बकरियों की संख्या लगभग 14-15 करोड़ है, जिससे भारत इस वर्ग में दूसरे स्थान पर आता है, जबकि भेड़ों की संख्या लगभग 7-8 करोड़ होने के कारण भारत का स्थान तीसरे से चौथे के बीच माना जाता है। भारत मे पशुओ की इतनी व्यापकता होने के बावजूद भी अच्छी नस्ल के नंदी और नर भैंसों की कमी हैए साथ ही जिन पशुपालकों के पास नंदी और नर भैंस है वो इतने गुणवत्तापूर्ण नहीं है। अब ऐसी स्थिति में अच्छी नस्ल के बछड़े प्राप्त करने, अच्छी उत्पादन क्षमता वाली संतति प्राप्त करने और शुद्ध नस्ल को पाने का सबसे सरल और आसान तरीका है कृत्रिम गर्भाधान।

क्या है कृत्रिम गर्भाधान: कृत्रिम गर्भाधान वह वैज्ञानिक विधि है जिसमें चुने हुए उच्च.गुणवत्ता वाले नर पशु (बैल/सांड/भैंसा) के वीर्य को संग्रहित कर, उचित समय पर मादा पशु (गाय/भैंस) के प्रजनन पथ में कृत्रिम रूप से प्रविष्ट कराया जाता है ताकि गर्भधारण हो सके। इससे नस्ल सुधार, दूध उत्पादन में वृद्धि और रोग नियंत्रण में मदद मिलती है।

कृत्रिम गर्भाधान के फायदे

नस्ल सुधार: कृत्रिम गर्भाधान द्वारा श्रेष्ठ आनुवंशिक गुणों वाले नर पशुओं के वीर्य का उपयोग संभव होता है जिससे पशुओं की नस्ल, दूध उत्पादन और प्रजनन क्षमता में सुधार होता है।

अच्छे नंदी/नर भैंस की कमी की पूर्ति: जहाँ उन्नत नस्ल के नर पशु उपलब्ध नहीं हैं वहाँ कृत्रिम गर्भाधान एक प्रभावी विकल्प प्रदान करता है।

दुग्ध उत्पादन में वृद्धि: उच्च दुग्ध उत्पादक नस्लों के वीर्य के प्रयोग से प्रति पशु दूध उत्पादन बढ़ता है।

रोगों की रोकथाम: प्राकृतिक संयोग से फैलने वाले यौन एवं संक्रामक रोगों का खतरा कृत्रिम गर्भाधान में बहुत कम होता है।

कम लागत, अधिक लाभ: एक नर पशु को पालने की तुलना में कृत्रिम गर्भाधान अधिक किफायती है। एक वीर्य संग्रह से हजारों मादा पशुओं का गर्भाधान संभव है।

श्रेष्ठ नर पशुओं का संरक्षण: उत्तम नस्ल के नर पशुओं के वीर्य को लंबे समय तक सुरक्षित रखकर भविष्य में उपयोग किया जा सकता है।

दूरदराज़ क्षेत्रों में उपयोगी: ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में भी उन्नत प्रजनन तकनीक पहुंचाई जा सकती है।

कृत्रिम गर्भधान को हेतु सरकारी योजनाएं: भारत सरकार ने पशुपालन क्षेत्र के विकास, नस्ल सुधार और दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के लिए कृत्रिम गर्भाधान को केन्द्र में रखकर कई योजनाएँ प्रारंभ की हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य न केवल उच्च आनुवंशिक गुणों वाले पशुओं का संवर्धन करना है, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी सशक्त बनाना है। राष्ट्रीय गोकुल मिशन देशी नस्लों के संरक्षण एवं सुधार के लिए आरंभ की गई एक प्रमुख योजना है। इस योजना के अंतर्गत देशभर में गोकुल ग्रामों और नस्ल सुधार केंद्रों की स्थापना की गई है, जहाँ पर कृत्रिम गर्भाधान की सुविधाएँए सेक्स.सॉर्टेड सीमेन तथा उच्च गुणवत्ता वाले नंदी के वीर्य की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है। इसी प्रकार राष्ट्रीय पशुधन मिशन के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं की प्रजनन क्षमता बढ़ाने, कृत्रिम गर्भाधान सेवाओं का विस्तार करने और तकनीशियन तैयार करने पर विशेष ध्यान दिया गया है।

राष्ट्रीय कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम एक व्यापक योजना है जिसका लक्ष्य पूरे देश में कृत्रिम गर्भाधान कवरेज को 100 प्रतिशत तक पहुँचना है। इस योजना के माध्यम से गुणवत्तापूर्ण सीमेन वितरण, पशुओं की पहचान और प्रजनन रिकॉर्ड का रखरखाव किया जाता है। वहीं राष्ट्रीय डेयरी विकास कार्यक्रम दुग्ध क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ाने और कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों को मजबूत बनाने पर केन्द्रित है। इसके साथ ही सेक्स.सॉर्टेड सीमेन योजना भी किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो रही है। इसके माध्यम से कृत्रिम गर्भाधान द्वारा मादा बछियों की संख्या बढ़ाई जा रही है, जिससे दुग्ध उत्पादन में उल्लेखनीय सुधार हो रहा है। इसी क्रम में राष्ट्रीय कामधेनु आयोग भी देशी गायों के नस्ल सुधार और उनके संरक्षण के लिए कृत्रिम गर्भाधान का उपयोग बढ़ावा दे रहा है। राज्य सरकारें भी अपने स्तर पर विशेष योजनाएं चला रही हैं जैसे मोबाइल कृत्रिम गर्भाधान वैन, गाँव स्तरीय प्रजनन केंद्र और निःशुल्क गर्भाधान सेवाएँ, जिनसे किसानों को अपने गाँव में ही सेवाएँ प्राप्त होती हैं।

किसान योजनाओं का लाभ कैसे लें: किसान इन सभी योजनाओं का लाभ आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए वे अपने नजदीकी पशु चिकित्सा केंद्र, ब्लॉक पशुपालन कार्यालय, या डेयरी सहकारी समिति से संपर्क कर सकते हैं। अधिकांश राज्यों में कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन या पशु चिकित्सक गांवों में जाकर सीधे सेवाएँ प्रदान करते हैं। इसके अलावा किसान राष्ट्रीय पशुधन मिशन (NLM) गोकुल मिशन, या राज्य पशुपालन विभाग की वेबसाइटों पर जाकर योजना से जुड़ी जानकारी, आवेदन प्रक्रिया और संपर्क नंबर प्राप्त कर सकते हैं। कई राज्यों में किसान ऐप और टोल फ्री नंबर के माध्यम से भी इन सेवाओं की जानकारी उपलब्ध है।

कैसे करे कृत्रिम गर्भाधान में नस्लो का चयन

नस्ल चयन करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

* क्षेत्र की जलवायु और तापमान * उपलब्ध चारा व पोषण स्तर
* पशु का शारीरिक स्वास्थ्य और आयु * दुग्ध उत्पादन का लक्ष्य * सरकारी योजना के तहत उपलब्ध प्रमाणित सीमेन

गाय में गर्भाधान के लिए नस्ल का चयन

* देशी नस्लें (गरम जलवायु) कम खर्च, रोग प्रतिरोधक
* इनका चयन तब करें जब क्षेत्र ग्रामीण हो, चारा सीमित हो और दीर्घकालिक टिकाऊपन चाहिए
* साहीवाल -उच्च दूध व अच्छी प्रजनन क्षमता
* गिर-रोग प्रतिरोधक, लंबे समय तक दुग्ध उत्पादन
* राठी -उत्तर पश्चिम भारत के लिए उपयुक्त
* रेड सिंधी -उष्ण क्षेत्रों में बेहतर
* थारपारकर -शुष्क क्षेत्रों में अनुकूल
* संकर नस्लें (उच्च दूध उत्पादन)
* यदि पोषण, प्रबंधन और स्वास्थ्य सेवाएँ अच्छी हों
* एचएफ देशी (होल्सटीन फ्रिज़ियन क्रॉस): बहुत अधिक दूध
* जर्सी देशी-मध्यम दूध, बेहतर प्रजनन, कम रख-रखाव

भैंस में गर्भाधान के लिए नस्ल का चयन

* उच्च दुग्ध उत्पादक नस्लें
* मुर्रा दू सर्वश्रेष्ठ, पूरे भारत में उपयुक्त
* निली.रावी -उत्तर भारत में अच्छी
* जाफराबादी -भारी शरीरए अधिक दूध
* मेहसाणा - नियमित प्रजननए स्थिर उत्पादन
* सुरती -कम आकार, सीमित संसाधनों में उपयुक्त

कृत्रिम गर्भाधान पशुपालन की एक वैज्ञानिक प्रजनन तकनीक है जिसमें नर पशु और मादा पशु के प्रत्यक्ष संयोग के बिनाए चयनित और उच्च गुणवत्ता वाले नर पशु के वीर्य को उचित समय पर मादा पशु के प्रजनन अंगों में प्रविष्ट कराया जाता है। इस तकनीक का मुख्य उद्देश्य पशुओं की नस्ल सुधार, दुग्ध उत्पादन में वृद्धि, प्रजनन क्षमता में सुधार तथा संक्रामक रोगों की रोकथाम करना है।

सरकार द्वारा राष्ट्रीय गोकुल मिशन, राष्ट्रीय पशुधन मिशन और राष्ट्रीय कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम जैसी योजनाओं के अंतर्गत इस तकनीक को व्यापक रूप से बढ़ावा दिया जा रहा है। समग्र रूप सेए कृत्रिम गर्भाधान भारतीय पशुपालन में वैज्ञानिक नस्ल सुधार और टिकाऊ दुग्ध उत्पादन का एक प्रभावी और आवश्यक साधन है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

'मक्का : महत्वपूर्ण अनाज, उगाने की विधि, पोषण मूल्य और कीट प्रबंधन'

नेहा, रिची अवस्थी कीट विज्ञान विभाग
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

मक्का, जिसे हिंदी में भुट्टा कहा जाता है। एक महत्वपूर्ण अनाज फसल है और इसका वैज्ञानिक नाम Zea mays है। यह एक वार्षिक फसल है जो मुख्य रूप से मानव आहार, पशु आहार और औद्योगिक उपयोग के लिए उगाई जाती है। मक्का का पौधा लंबा और मजबूत तना वाला होता है जिसकी पत्तियां चौड़ी और हरी होती हैं और इसके फलियों में दाने होते हैं।

यह गहरी, उपजाऊ मिट्टी और हल्की गर्म जलवायु में अच्छी तरह उगता है। मक्का से रोटी, आटा, पोहा तैयार किया जाता हैए वहीं इसका भूसा और दाना पशुओं के चारे के रूप में काम आता है। इसके अलावा मक्का का इस्तेमाल स्टार्च, तेल और अन्य औद्योगिक उत्पाद बनाने में भी किया जाता है।

मक्का एक ऊर्जा-समृद्ध अनाज है और इसमें मुख्य रूप से कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, वसा, विटामिन और खनिज तत्व पाए जाते हैं। 100 ग्राम मक्का में लगभग मोटे तौर पर 350-360 कैलोरी ऊर्जा, 9-10 ग्राम प्रोटीन, 4-5 ग्राम वसा और 70-75 ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स होते हैं। मक्का में विटामिन A, B-complex जैसे थियामिन, रिबोफ्लेविन, नियासिन) और खनिज तत्व जैसे लोहाए जिंक और फास्फोरस भी मौजूद होते हैं। इसकी उच्च स्टार्च सामग्री और ऊर्जा संपन्न गुण इसे मुख्य रूप से मानव आहार और पशु चारे के लिए उपयोगी बनाते हैं। इसके अलावा, मक्का का प्रोटीन अन्य अनाजों की तुलना में कम गुणवत्ता वाला होता है, इसलिए इसे दलहन या दूध जैसी प्रोटीन युक्त चीज़ों के साथ संतुलित आहार में लिया जाता है।

2025-26 में दुनिया भर में मक्का का उत्पादन लगभग 1.26 अरब मीट्रिक टन के आसपास होने का अनुमान है, जिसमें मुख्य उत्पादक देश अमेरिका, चीन और ब्राज़ील हैं। वैश्विक औसत उत्पादकता लगभग 5-6 टन प्रति हेक्टेयर के करीब है। भारत में मक्का का उत्पादन इस समय लगभग 43.4 मिलियन टन है और इसकी औसत उत्पादकता लगभग 3.5 टन प्रति हेक्टेयर हैए जो विश्व औसत से थोड़ा कम है। मक्का भारत में मुख्य रूप से आहार, पशु चारा और उद्योगों में इस्तेमाल होता है। सरकार और विशेषज्ञ भविष्य में उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाकर देश को आत्मनिर्भर बनाने की योजना बना रहे हैं।

मक्का उगाने की विधियां

1. भूमि का चयन: * मक्का अच्छी जल निकासी वालीए उपजाऊ और हल्की दोमट मिट्टी में अच्छी तरह उगता है। पीएच लगभग 6.0-7.5 सबसे उपयुक्त है।

2. फसल का मौसम * मक्का की बुवाई गर्मियों में या वर्षा के समय की जाती है।

* भारत में सामान्यतः मार्च-अप्रैल और जुलाई-अगस्त बुवाई के लिए सही समय है।

बीज का चयन

* उच्च उपज वाले, रोग प्रतिरोधी और क्षेत्रीय जलवायु के अनुकूल बीज चुनें।
* बीज बुवाई से पहले बीज उपचार fungicide या biofertilizer करें।

बुवाई की विधि

* रेखा बुवाई (Line sowing) या ढेर बुवाई (Drill method) अपनाई जाती है।

वकतार की दूरी 60-75 सेंमी और पौधे की दूरी 20-25 सेमी रखें।

* बीज की गहराई 4-5 सेमी रखी जाती है।

5.उर्वरक प्रयोग

* नाइट्रोजन (N): 120-150 किग्रा/हेक्टेयर
* फॉस्फोरस (P2O5): 60-70 किग्रा/हेक्टेयर
* पोटाश (K2O): 40-50 किग्रा/हेक्टेयर
* जैविक खाद जैसे गोबर की खाद 10-15 टन/हेक्टेयर भी डालें।

सिंचाई

* मक्का को पर्याप्त नमी चाहिए।
* मुख्य रूप से कली, फूल और दाने बनने के समय नियमित सिंचाई करें।

7 नियंत्रण (Weed and Pest Management)

* शुरुआती चरण में खरपतवार निकालें।
* प्रमुख कीटः मक्का कीट, मक्खी और घुन।
* प्रमुख रोगः पत्तीलतिका (Leaf Blight), फफूंदी (Rust)

8. कटाई और उपज

* बुवाई के 90-120 दिनों में फसल कटाई के लिए तैयार होती है।
* दानों का रंग पीला होने पर और पत्तियाँ सूखने पर फसल काटें।
* **औसत उपज:** 3-4 टन/हेक्टेयर (भारत) उच्च उपज वाले क्षेत्र में 6-8 टन/हेक्टेयर।

मक्का के प्रमुख कीट और प्रबंधन

1. स्टेम बोरर (Stem Borer)

* **लक्षण:** पौधे के तने में छेद, पत्तियाँ पीली होना, पौधा झुकना।

प्रबंधन

* बुवाई से पहले बीज उपचार।
* फसल के अवशेषों को जलाना।
* कीटनाशक स्प्रेः फिनोबकरब, कार्बारील (निर्देशानुसार)

2. कर्न माईल्फ़लाई

लक्षण: पत्तियों पर हरा या पीला चिपचिपा पदार्थए पौधों का मुरझाना।

प्रबंधन

* नीम का अर्क या हल्के कीटनाशक का छिड़काव।
* प्राकृतिक शिकारी जैसे लेडी बर्ड बीटल को बढ़ावा।

3. सिल्क बोरर

* लक्षणः फूलों और भुट्टे के सिल्क में छेद, दानों का खराब होना।

प्रबंधन

* बुवाई का सही समय।
* प्रभावित फूल और भुट्टे हटाना और नष्ट करना।
* आवश्यक होने पर कीटनाशक छिड़काव।

4. लीफ फोल्डर

लक्षण: पत्तियों का मोड़ना और उसमें छेद होना।

प्रबंधन

* **शारीरिक नियंत्रण:** प्रभावित पत्तियों को फाड़कर नष्ट करना।
* **जैविक नियंत्रण:** Bacillus thuringiensis (Bt) का प्रयोग।
* आवश्यक होने पर रसायनिक कीटनाशक।

फालसा की वैज्ञानिक खेती, लाभ एवं कीट, रोग प्रबंधन

रविकांत, विशाल कुमार
डॉ. सुतानू माजी, पंकज कुमार
उद्यानिकी विभाग, बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

परिचय: यह सबट्रॉपिकल इलाके की एक छोटी फल वाली फसल है। यह भारत की मूल फसल है। इसे कम देखभाल और कम इनपुट की ज़रूरत होती है। इसे उत्तर भारत के लगभग सभी हिस्सों में उगाया जा सकता है, सिवाय ज्यादा ऊंचाई वाले इलाकों के। यह मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों में उगाया जाता है। फालसा U.P., बिहार, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र में बहुत तेज़ी से उगता है, इसलिए यह नालियों और नालों को भरने और बांधों की सुरक्षा के लिए एक अच्छा पौधा हो सकता है। पौधे बीज और तने की कटिंग से बढ़ते हैं। झाड़ी होने के कारण, इसे फिलर प्लांट के तौर पर उगाया जा सकता है। भारतीय मूल की एक छोटी फल फसल है। यह सबसे मज़बूत फलों के पौधों में से एक है, यह सूखे को झेल सकता है और इसे कम रखरखाव और कम संसाधनों की ज़रूरत होती है। ज़्यादा ऊंचाई वाली जगहों को छोड़कर, इसे उत्तर भारत में लगभग हर जगह उगाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और मध्यप्रदेश राज्यों में इसकी मुख्य रूप से खेती की जाती है। इसकी तेज़ी से बढ़ने की वजह से, फालसा का इस्तेमाल नालों और खाइयों को भरने के साथ-साथ मेड़ों को बचाने के लिए भी किया जा सकता है। पौधों को तने की कटिंग और बीजों से बढ़ाया जाता है। इसे आंवला, बेल और बेर के बागों में फिलर प्लांट के तौर पर उगाया जा सकता है क्योंकि यह एक झाड़ी है।

मिट्टी और जलवायु: विभिन्न प्रकार की मिट्टी की स्थितियों में, जैसे कि महीन रेत, चिकनी मिट्टी, या यहाँ तक कि और संतोषजनक उपज देता है। फालसा अक्सर अनुत्पादक चूना पत्थर पर उगाया जाता है जब मिट्टी की उर्वरता बहुत कम नहीं होती है, पौधे तेजी से बढ़ते हैं और फल देते हैं। लेकिन दोमट मिट्टी फालसा उगाने के लिए सबसे अच्छी होती है। यह शहरी बाजारों के पास की जमीन में व्यावसायिकता को तेज करने के लिए उगाया जा सकता है, लेकिन यह खारेपन को सहन नहीं कर सकता है। यह सुझाव दिया जाता है कि आदर्श मिट्टी थोड़ी क्षारीय हो। यह मध्यम उपजाऊ मिट्टी में अच्छा होता है, हालांकि उर्वरक का प्रयोग कभी-कभी पौधे के स्वास्थ्य और उपज को बढ़ाता है। विकास हेतु pH रेंज 6.0 और 7.5 के बीच है, जिसमें रेंज 5.5 से 8.0 है। हालांकि पौधा सूखा-सहिष्णु है, लेकिन फल लगने के मौसम में और सूखे के दौरान कभी-कभी सिंचाई से किसानों को फायदा होता है। गर्म जलवायु के फलों के पौधों में फालसा शामिल है। यह पौधा भारत में 1,000 मीटर की ऊंचाई तक अच्छी तरह से पनपता है और उपज देता है।

किस्म: फालसा में बहुत अधिक विविधताएं नहीं देखी जाती हैं, सिवाय लंबे और झाड़ीदार पौधे की आदत के उगाए जाने वाले अधिकांश पौधे स्थानीय जीनोटाइप के होते हैं। हालांकि, ICAR-CIAH, बीकानेर ने हाल ही में खेती हेतु "थार प्रगति" की पहचान की है।

थार प्रगति: इस किस्म में झुकी हुई शाखाएं, मोटा तना, फैलने वाली वृद्धि की आदत और घनी पत्तियां होती हैं। फल लगने के बाद, फल 60 दिनों में पक जाता है। यह सूखा-सहिष्णु, छोटा, जल्दी फल देने वाला और उच्च घनत्व रोपण के लिए उपयुक्त है। यह तीसरे वर्ष में फल देता है। यह टेबल और प्रसंस्करण किस्म के रूप में उपयोग हेतु उपयुक्त है।

1. शरबती 2. लोकल फालसा 3. बनारसी फालसा

प्रसार: मुख्य रूप से बीज और कटिंग के माध्यम से प्रचारित किया जाता है। बीजों को अंकुरित होने में 15-20 दिन लगते हैं, और अंकुरों को तब लगाया जा सकता है जब वे 3-4 महीने पुराना। तने की कटिंग से जड़ें उगाना मुश्किल होता है। वसंत ऋतु में निकलने वाली सेमी-हार्डवुड कटिंग जिन्हें आमतौर पर 1,000 ppm NAA दिया जाता है, 20% मामलों में, 5-6 महीने पुरानी टहनियों से ली गई कटिंग जिन्हें जुलाई में भारतीय मिट्टी में लगाया जाता है, जुलाई और अगस्त के बीच अधिक आसानी से जड़ें पकड़ लेती हैं यदि उन्हें जल्दी से 1000 ppm IBA में डुबोया जाए। 1000 ppm IBA के साथ अकेले या 5000 ppm IBA और 5000 ppm कैटेचोल के मिश्रण के साथ उपचार के बाद। जुलाई में स्टूल लेयरिंग से भरपूर जड़ें निकलती हैं। फरवरी और मार्च में। झाड़ियों को स्टोमा हेतु वापस मोड़ दिया जाता है।

रोपण: फालसा एक झाड़ीदार पौधा है और इसे बहुत पास-पास लगाया जा सकता है, अक्सर बाड़ की पंक्तियों में। सामान्य दूरी 2×2 मीटर है। लगाने का सबसे अच्छा समय जुलाई-अगस्त और फरवरी है। 40×40×40 सेमी आकार के गड्ढे तैयार करने और उन्हें प्रत्येक गड्ढे में 5-7 किलोग्राम खाद्ध्दूके साथ मिश्रित ऊपरी मिट्टी से भरने के बाद, रोपण किया जाता है और पौधों को स्थापित करने के लिए सिंचाई की जाती है।

फूल और फल: यह एक छोटी झाड़ी के रूप में उगता है और बहुत सारी जामुन पैदा करता है। फल मई के अंत और जून की शुरुआत तक पक जाते है। फल खराब होने वाले होते हैं और उनकी रखने की गुणवत्ता बहुत कम होती है। गर्मी का मौसम फालसा में फलों का मुख्य मौसम होता है। मौजूदा मौसम की वृद्धि पर फूल फरवरी और मार्च में पत्तियों के बगल में दिखाई देते हैं। प्रत्येक बगल में तीन से सात पेडुनकल के साथ एक पुष्पक्रम होता है। प्रत्येक पेडुनकल पर 3-6 फूल होते हैं। फूल गुलाबी या पीले रंग के होते हैं। उत्तर भारत में, फल मई से जून में, फूल आने के 45 से 70 दिन बाद पकते हैं, जबकि दक्षिण भारत में, फल दो बार, नवंबर से दिसंबर और जून से जुलाई में पकते हैं। उत्तर भारत में फालसा की एक अच्छी तरह से विकसित झाड़ी से हर साल 6-7 किलोग्राम फल मिलते हैं।

फालसा में फलों का लगना और पैदावार प्लांट ग्रोथ रेगुलेटर के इस्तेमाल से बढ़ने की बात सामने आई है। फल 10ppm GA और zppm 2,4,5-T के स्प्रे से बढ़ावा मिला। फालसा फल का आकार बढ़ा और फल पकने में 3-5 दिन की देरी हुई जब साइकोसेल का इस्तेमाल किया गया। 50% फल लगने के अंतराल पर दो बार स्प्रे करने पर फल टिकने, जल्दी पकने और उपज में वृद्धि होती है। GA (50 ppm), 2,4,5-T, और 24.D@25 ppm के इस्तेमाल से, फल का आकार और गुणवत्ता GA को फूल आने की शुरुआत में एक बार 60 ppm पर और 15 दिन बाद फिर से स्प्रे किया जाता है, और एथ्रेल को 1000 ppm पर जब बेरी पकना शुरू हो जाती है। इसके अलावा, यह कटाई की अवधि को कम करता है और फल में कुल घुलनशील ठोस पदार्थों की मात्रा को बढ़ाता है।

कटाई और कटाई के बाद प्रबंधन: फलों की शेल्फ लाइफ बहुत कम होती है और उन्हें एक दिन के भीतर बेचना पड़ता है या गर्मियों में, फालसा में नियमित रूप से तोड़ाई की आवश्यकता होती है। ब्लूबेरी की तरह एक गुच्छे में केवल कुछ फल धीरे-धीरे लेकिन लगातार पकते हैं क्योंकि वे बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं। क्योंकि फल छोटे होते हैं और दो, फालसा जामुन को तोड़ने के 24 घंटे के भीतर खा लेना चाहिए फालसा जामुन का रंग गहरा लाल से गहरा बैंगनी होता है और धीरे-धीरे पकते हैं, फालसा की कटाई समय लेने वाली और महंगी होती है। एक स्वादिष्ट स्वाद के साथ एक बढ़िया चीनी-एसिड संतुलन होता है। एंथोसायनिन नामक एक पिगमेंट फल को उसका गहरा लाल रंग देता है। फालसा के पत्ते का उपयोग उन टोकरियों हेतु लाइनर के रूप में किया जाता है जिनमें फल पैक किए जाते हैं।

उपयोग: इसे ताजे फल के रूप में सीधे खाया जा सकता है। फल, जो बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं, उनका उपयोग जूस और स्क्वैश बनाने के लिए किया जाता है। पके फलों का स्वाद खट्टा होता है और वे विटामिन A और C का अच्छा स्रोत हैं। इसका उपयोग वेदों के समय से औषधीय रूप से किया जाता रहा है। इस पौधे के फल ठंडक देने वाला प्रभाव देते हैं। फल प्रोटीन, खनिज, विटामिन और कार्बोहाइड्रेट का एक अद्भुत स्रोत हैं। फालसा फलों से जैम, स्क्वैश और अचार जैसे प्रसंस्कृत उत्पाद भी बनाए जा सकते हैं। पौधे की छाल का उपयोग गुड़ बनाने की प्रक्रिया में गुणवत्ता बढ़ाने के लिए किया जाता है। फलों और सब्जियों को दूर के बाजारों में ले जाने के लिए, छंटे हुए फालसा की टहनियों और शाखाओं का उपयोग टोकरियाँ बनाने के लिए किया जा सकता है

फालसा के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

तना छेदक (Stem Borer)

लक्षण: तने में छोटे छेद दिखाई देते हैं पौधा कमजोर होकर सूखने लगता है शाखाएँ टूट सकती हैं

प्रबंधन: प्रभावित टहनियों को काटकर नष्ट करें। तनों में केरोसिन तेल+क्लोरोपायरीफॉस डालकर छेद बंद करें। फल छेदक (Fruit Borer)

लक्षण: फल अंदर से खोखले हो जाते हैं,फल गिरने लगते हैं,उपज घटती है।

प्रबंधन: गिरे हुए व संक्रमित फलों को नष्ट करें। नीम आधारित कीटनाशी (नीम तेल 3-5 मि.ली./लीटर) का छिड़काव, आवश्यकता पड़ने पर अनुशंसित कीटनाशक का प्रयोग।

माहू (Aphids)

लक्षण: कोमल पत्तियाँ मुड़ जाती हैं पत्तियों पर चिपचिपा पदार्थ, काली फफूंदी (सूटी मोल्ड) का विकास

प्रबंधन: नीम अर्क या साबुन घोल का छिड़काव, अधिक प्रकोप पर इमिडाक्लोप्रिड का सीमित प्रयोग, पत्ती धब्बा रोग (Leaf Spot)

लक्षण: पत्तियों पर भूरे या काले धब्बे, पत्तियाँ समय से पहले गिरने लगती हैं

प्रबंधन:

* रोगग्रस्त पत्तियाँ हटाकर नष्ट करें * कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या मैनकोजेब का छिड़काव * खेत में उचित वायु संचार रखें चूर्णी फफूंदी (Powdery Mildew)

लक्षण * पत्तियों पर सफेद पाउडर जैसा आवरण * फूल और फल प्रभावित होते हैं

प्रबंधन:

* सल्फर युक्त फफूंदनाशी का छिड़काव * अधिक नमी से बचाव * संतुलित उर्वरक प्रयोग

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

पराली : खेत की समस्या या राष्ट्रीय चुनौती?

अभिषेक सिंह, प्रखर राय सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया
डॉ. अखिलेश कुमार सिंह
डॉ. अवनीश यादव सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

भूमिका

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ करोड़ों लोगों की आजीविका सीधे खेती पर निर्भर है। लेकिन आधुनिक समय में कृषि से जुड़ी कुछ समस्याएँ केवल खेतों तक सीमित नहीं रहीं। वे समाज, पर्यावरण और नीति के स्तर पर व्यापक प्रभाव डाल रही हैं। पराली जलाने की समस्या ऐसी ही एक जटिल चुनौती बन चुकी है। हर वर्ष धान की कटाई के बाद उत्तर भारत के अनेक राज्यों में बड़े पैमाने पर पराली जलाई जाती है, जिसके परिणामस्वरूप वायु प्रदूषण खतरनाक स्तर तक पहुँच जाता है।अक्सर इस समस्या को केवल किसान की जिम्मेदारी बताकर सीमित कर दिया जाता है, जबकि वास्तविकता यह है कि पराली जलाना एक व्यापक संरचनात्मक समस्या का परिणाम है। यह प्रश्न इसलिए आवश्यक हो जाता है कि पराली वास्तव में केवल खेत की समस्या है या फिर यह एक ऐसी राष्ट्रीय चुनौती है, जिसका समाधान सामूहिक दृष्टिकोण से ही संभव है।

पराली क्या है और यह क्यों उत्पन्न होती है?

पराली फसल कटाई के बाद खेत में बचा हुआ वह अवशेष है, जिसमें मुख्य रूप से डंठल और ठूंठ शामिल होते हैं। धान और गेहूँ जैसी फसलों में इसकी मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। हरित क्रांति के बाद उत्तर भारत में धान गेहूँ फसल चक्र तेजी से फैल गया, जिससे पराली की समस्या भी बढ़ती चली गई।धान की कटाई प्रायः मशीनों से होती है, जो फसल को ऊपर से काट देती हैं और नीचे का हिस्सा खेत में रह जाता है। यह अवशेष इतनी मात्रा में होता है कि उसे खेत से हटाना किसान के लिए आसान नहीं होता। समय, श्रम और लागत की सीमाएँ इस समस्या को और गंभीर बना देती हैं।

फसल चक्र और समय का दबाव

धान की कटाई और गेहूँ की बुवाई के बीच का समय बहुत सीमित होता है। किसान को इसी अवधि में खेत की सफाई, जुताई और बुवाई की तैयारी करनी होती है। यदि इस प्रक्रिया में देरी होती है, तो गेहूँ की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पराली को खेत से हटाने के लिए मजदूरों की आवश्यकता होती है, जो आज के समय में न तो पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं और न ही सस्ते हैं। मशीनों का विकल्प मौजूद है, लेकिन उनकी उपलब्धता और लागत छोटे किसानों के लिए एक बड़ी बाधा है। ऐसे में पराली जलाना किसान को सबसे सरल उपाय प्रतीत होता है, भले ही वह इसके दुष्परिणामों से अवगत हो।

पर्यावरण पर पड़ता व्यापक प्रभाव

पराली जलाने से निकलने वाला धुआँ वायुमंडल में मिलकर गंभीर प्रदूषण पैदा करता है। इसमें सूक्ष्म कण और हानिकारक गैसें होती हैं, जो हवा की गुणवत्ता को अत्यंत खराब कर देती हैं। यह प्रदूषण केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि हवाओं के माध्यम से दूर दूर तक फैल जाता है।शहरी क्षेत्रों में स्मॉग की स्थिति बनती है, दृश्यता घटती है और सामान्य जनजीवन प्रभावित होता है। इस प्रकार एक कृषि गतिविधि पूरे क्षेत्र के पर्यावरण को प्रभावित करने लगती है, जिससे यह समस्या राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बन जाती है।

स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक प्रभाव

वायु प्रदूषण का सबसे गंभीर प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ता है। पराली जलाने से उत्पन्न प्रदूषक तत्व श्वसन तंत्र को प्रभावित करते हैं और कई प्रकार की बीमारियों को जन्म देते हैं। बच्चों और बुजुर्गों में इसका प्रभाव अधिक देखने को मिलता है।लंबे समय तक इस प्रदूषित हवा में साँस लेने से दमा, ब्रोंकाइटिस और हृदय रोग जैसी समस्याएँ बढ़ती हैं। स्वास्थ्य सेवाओं पर दबाव बढ़ता है और आर्थिक रूप से भी समाज को इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि पराली जलाना केवल पर्यावरण नहीं, बल्कि जनस्वास्थ्य से जुड़ी गंभीर समस्या है।

किसान की स्थिति और सामाजिक दृष्टिकोण

सार्वजनिक विमर्श में पराली जलाने के लिए किसान को दोषी ठहराना आम बात हो गई है। लेकिन यह दृष्टिकोण समस्या की जड़ों को अनदेखा करता है। किसान स्वयं इस स्थिति से लाभान्वित नहीं होता। पराली जलाने से उसकी मिट्टी की गुणवत्ता घटती है और भविष्य में उत्पादन प्रभावित होता है।किसान के पास यदि सुलभ, सस्ता और प्रभावी विकल्प उपलब्ध हो, तो वह निश्चित रूप से पराली जलाने से बचेगा। इस दृष्टि से किसान को दोषी ठहराने के बजाय उसे समाधान का भागीदार बनाना अधिक उचित है।

नीतिगत प्रयास और उनकी सीमाएँ

सरकार ने पराली प्रबंधन के लिए अनेक योजनाएँ और कार्यक्रम प्रारंभ किए हैं। मशीनों पर अनुदान, कस्टम हायरिंग सेंटर और जागरूकता अभियान इसी दिशा में किए गए प्रयास हैं। इसके साथ ही कानूनी प्रावधान भी लागू किए गए हैं।हालाँकि, इन प्रयासों का प्रभाव सभी किसानों तक समान रूप से नहीं पहुँच पाया है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए मशीनों की उपलब्धता अब भी सीमित है। दंडात्मक दृष्टिकोण कई बार किसानों में असंतोष पैदा करता है, जिससे समाधान की प्रक्रिया कमजोर पड़ जाती है।

पराली को संसाधन के रूप में देखने की आवश्यकता

पराली को केवल समस्या मानने के बजाय यदि इसे संसाधन के रूप में देखा जाए, तो इसके कई उपयोग सामने आते हैं। इससे ऊर्जा उत्पादन, जैविक खाद और औद्योगिक कच्चा माल तैयार किया जा सकता है।यदि पराली के संग्रह और उपयोग की एक प्रभावी व्यवस्था विकसित की जाए और किसान को इससे प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ मिले, तो पराली जलाने की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से कम हो सकती है। यह दृष्टिकोण समस्या को अवसर में बदलने की क्षमता रखता है।

समाधान के लिए समग्र दृष्टिकोण

पराली समस्या का समाधान किसी एक पक्ष के प्रयास से संभव नहीं है। इसके लिए नीति निर्माताओं, वैज्ञानिकों, उद्योगों और किसानों के बीच समन्वय आवश्यक है। तकनीकी नवाचार, आर्थिक प्रोत्साहन और सामाजिक जागरूकता तीनों को साथ लेकर चलना होगा।किसान को नियमों का पालन करने वाला मात्र व्यक्ति नहीं, बल्कि समाधान का सक्रिय सहभागी बनाना ही स्थायी समाधान की दिशा में सही कदम होगा।

निष्कर्ष

पराली जलाना केवल खेत की समस्या नहीं है। यह पर्यावरण, स्वास्थ्य और सामाजिक संतुलन से जुड़ी एक गंभीर राष्ट्रीय चुनौती बन चुकी है। जब तक इसे व्यापक दृष्टिकोण से नहीं देखा जाएगा, तब तक इसके समाधान अधूरे रहेंगे।आज आवश्यकता है कि दोषारोपण से आगे बढ़कर सहयोग और समन्वय की नीति अपनाई जाए, ताकि खेती भी टिकाऊ बने और पर्यावरण भी सुरक्षित रहे। तभी हम यह कह सकेंगे कि पराली की समस्या का समाधान वास्तव में राष्ट्रीय स्तर पर किया गया है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

समन्वित खेती आधारित कम लागत कृषि-सवाई माधोपुर जिले के प्रगतिशील कृषक की सफलता की कहानी

नूपुर शर्मा विषय विशेषज्ञ (सश्य विज्ञान)
डॉ. बी.एल. मीणा वरिष्ठ वैज्ञानिक व अध्यक्ष
श्री सुनील मीना (तिलहन तकनीकी सहायक)
कृषि विज्ञान केन्द्र सवाईमाधोपुर, कृषि विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)

राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले की खण्डार तहसील के ग्राम सेवती खुर्द निवासी प्रगतिशील कृषक श्री लटूर मीणा, पिता श्री मोजीराम मीणा, ने समन्वित खेती प्रणाली को अपनाकर कम लागत में अधिक आय प्राप्त कर क्षेत्र के किसानों के लिए एक प्रेरणास्रोत प्रस्तुत किया है। श्री लटूर मीणा के पास कुल 3.5 हेक्टेयर कृषि भूमि उपलब्ध है, जिसमें से उन्होंने भूमि का सुनियोजित एवं बहुआयामी उपयोग किया है। उनकी कुल भूमि में से 1.5 हेक्टेयर क्षेत्र (लगभग 415 पौधे) में अमरूद का बाग लगाया गया है, जबकि शेष 2.0 हेक्टेयर क्षेत्र में वे बाजरा, उड़द, सोयाबीन, सरसों एवं गेहूँ जैसी फसलों की उन्नत तकनीकों से खेती कर रहे हैं। फसल उत्पादन के साथ-साथ श्री मीणा ने पशुपालन को भी अपनी कृषि प्रणाली का अभिन्न अंग बनाया है। उनके पास कुल दो भैंसें हैं, जिनसे दुग्ध उत्पादन के माध्यम से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। इसके साथ ही पशुओं से प्राप्त गोबर का उपयोग वे गोबर की सड़ी खाद एवं वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने में करते हैं। इस जैविक खाद का प्रयोग सब्जी उत्पादन एवं अन्य फसलों में कर वे रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम कर रहे हैं, जिससे उत्पादन लागत में कमी तथा मिट्टी की उर्वरता में सुधार हो रहा है। सब्जी उत्पादन के अंतर्गत श्री मीणा मुख्य रूप से टमाटर एवं मिर्च की खेती लगभग 1 हेक्टेयर क्षेत्र में कर रहे हैं। उन्नत किस्मों, संतुलित पोषण प्रबंधन एवं जैविक खादों के उपयोग से उन्हें सब्जी उत्पादन से लगभग रु. 3,50,000 प्रति हेक्टेयर की आय प्राप्त हो रही है। समन्वित खेती प्रणाली, बागवानी, फसल उत्पादन, सब्जी खेती एवं पशुपालन के सफल समन्वय से श्री लटूर मीणा अपनी कुल 3.5 हेक्टेयर भूमि से लगभग रु. 7.50 लाख प्रति वर्ष की शुद्ध आय अर्जित कर रहे हैं। उनकी यह कृषि प्रणाली कम लागत, पर्यावरण-अनुकूल एवं टिकाऊ होने के साथ-साथ क्षेत्र के छोटे एवं मध्यम किसानों के लिए एक आदर्श मॉडल प्रस्तुत करती है।

कृषक श्री लटूर मीणा का अमरूद बाग।

केंद्र के प्रयासों से कृषक वर्ष 2011 से कृषि विज्ञान केंद्र, सवाई माधोपुर से जुड़े हुए हैं। प्रारंभ में वे सामान्य एवं पारंपरिक तरीके से खेती करते थे, जिससे उन्हें 3.5 हेक्टेयर भूमि से प्रतिवर्ष मात्र 3 से 4 लाख रुपये की आय प्राप्त होती थी। इस खेती में बाजरा, उड़द, सोयाबीन, सरसों एवं गेहूं जैसी फसलें शामिल थीं।

खंडार तहसील में बागवानी फसलों एवं सब्जी उत्पादन की संभावनाओं को देखते हुए कृषि विज्ञान केंद्र द्वारा कृषक को समय-समय पर प्रशिक्षण प्रदान किया गया। साथ ही उनके खेत पर सोयाबीन की उन्नत किस्म जे एस 20-116, सरसों की किस्म बीपीएम-11 तथा गेहूँ की किस्म डी.बी.डब्ल्यू-303 के प्रदर्शन भी आयोजित किए गए। वैज्ञानिक तकनीकों की निरंतर जानकारी, कृषक-वैज्ञानिक संवाद तथा वैज्ञानिकों के खेत पर नैदानिक भ्रमण के माध्यम से कृषक को पारंपरिक खेती से हटकर कृषि के अन्य घटकों को अपनाने के लिए प्रेरित किया गया।

उन्नत तकनीकों द्वारा फसल उत्पादन

एकीकृत कृषि प्रणाली के अंतर्गत डेयरी इकाई

इसके परिणाम स्वरूप कृषक ने वर्ष 2018 में अमरूद एवं आंवला के बगीचों की स्थापना की, जिससे तीन वर्षों के बाद लगभग 1.50 लाख रुपये का शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ तथा वर्ष 2025 में यह शुद्ध लाभ बढ़कर लगभग 5.00 लाख रुपये हो गया। इसके अतिरिक्त, कृषक ने सब्जी उत्पादन में मिर्च एवं टमाटर की उन्नत किस्मों को भी शामिल किया, जिससे वर्ष 2024-25 में 1 हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 1.65 लाख रुपये की शुद्ध आय प्राप्त की।

तालिका 1-कृषक का वर्ष 2024-25 का आर्थिक विश्लेषण

घटक	विवरण
कुल क्षेत्रफल	3.5 हेक्टेयर
अमरूद बाग स्थापना वर्ष	2018
अमरूद बाग की प्रारंभिक लागत	रु.1,25,000
अमरूद-आँवला बगीचे से वार्षिक आय (2025)	लगभग रु. 4,50,000
फसल उत्पादन से शुद्ध आय (2 हे.)	रु.1,65,000
सब्जी उत्पादन से अतिरिक्त आय मिर्च एवं टमाटर	घरेलू उपयोग स्थानीय विक्रय रु. 1,65,000
हरा चारा उत्पादन से लाभ	बाहरी चारे पर निर्भरता में कमी
डेयरी एवं जैविक इनपुट से लाभ	उत्पादन लागत में कमी
कुल वार्षिक शुद्ध आय (संपूर्ण प्रणाली)	रु. 7,40,000 लाख

कृषक के पास कुल 3.5 हेक्टेयर कृषि भूमि उपलब्ध है। वर्ष 2018 में कृषक द्वारा अमरूद के बाग की स्थापना की गई, जिस पर लगभग 1,25,000 रुपये की प्रारंभिक लागत आई। अमरूद एवं आंवला के बगीचों से वर्ष 2025 में लगभग 4.50 लाख रुपये की वार्षिक आय प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त, फसल उत्पादन से 2 हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 1.65 लाख रुपये की शुद्ध आय अर्जित की गई। सब्जी उत्पादन के अंतर्गत मिर्च एवं टमाटर की खेती से घरेलू उपयोग के साथ-साथ स्थानीय बाजार में विक्रय कर लगभग 1.65 लाख रुपये की अतिरिक्त आय प्राप्त हुई। हरा चारा उत्पादन अपनाने से बाहरी चारे पर निर्भरता में कमी आई, जिससे अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक लाभ हुआ। वहीं, डेयरी एवं जैविक इनपुट के उपयोग से उत्पादन लागत में कमी दर्ज की गई। इस प्रकार संपूर्ण कृषि प्रणाली को अपनाने से कृषक की कुल वार्षिक शुद्ध आय लगभग 7.40 लाख रुपये तक पहुँच गई, जो पारंपरिक खेती की तुलना में कहीं अधिक है और कृषक की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध हुई।

निष्कर्ष संदेश

यह सफलता कहानी दर्शाती है कि कृषि विज्ञान केंद्र के वैज्ञानिक मार्गदर्शन एवं एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाकर सीमांत एवं मध्यम कृषक भी कम लागत में अधिक, स्थायी एवं सुरक्षित आय प्राप्त कर सकते हैं। श्री लटूर मीणा की यह कृषि प्रणाली क्षेत्र के अन्य कृषकों के लिए एक आदर्श मॉडल प्रस्तुत करती है तथा यह प्रमाणित करती है कि वैज्ञानिक तकनीकों, फसल विविधीकरण एवं कृषि घटकों के समन्वय से कृषकों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाया जा सकता है। यह मॉडल क्षेत्रीय कृषकों को नवाचार, आत्मनिर्भरता एवं सतत कृषि की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

फसल बीमा कानून और कानूनी सुरक्षा

आशीष कुमार (सहायक प्रोफेसर) APEX विधि विभाग, जयपुर, APEX UNIVERSITY, जयपुर (राज.)

प्रस्तावना: भारत में कृषि क्षेत्र का आर्थिक आधार मजबूत करने के लिए फसल बीमा योजनाएं अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य किसानों को प्राकृतिक आपदाओं, सूखे, बाढ़, ओलावृष्टि जैसी आपदाओं से सुरक्षा प्रदान करना है। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY) जैसी योजनाएं इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए लागू की गई हैं। हालांकि, इन योजनाओं का क्रियान्वयन और कानूनी सुरक्षा सुनिश्चित करना आवश्यक है। इस लेख में हम फसल बीमा कानूनों का विस्तृत विश्लेषण करेंगे, साथ ही इन योजनाओं के कानूनी ढांचे, प्रावधानों, और सुरक्षा उपायों पर भी चर्चा करेंगे।

फसल बीमा कानून का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: भारत में फसल बीमा का इतिहास काफी पुराना है। प्रारंभ में, राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (NAIS) 1985 में शुरू हुई। इसके बाद, 1999 में नई राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (NAIS) लागू की गई। फिर, 2016 में प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY) को लॉन्च किया गया। इन योजनाओं का उद्देश्य किसानों को प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा देना था। इन योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान, कई कानूनी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। उदाहरण के तौर पर, बीमा कंपनियों और किसानों के बीच विवाद, क्लेम प्रक्रिया में देरी, और बीमा कंपनियों की जिम्मेदारी से संबंधित मुद्दे सामने आए। इन चुनौतियों ने सरकार को नए कानूनी प्रावधान बनाने के लिए प्रेरित किया। परिणाम स्वरूप, फसल बीमा कानूनों का विकास हुआ, जो इन योजनाओं को मजबूत बनाने के लिए आवश्यक हैं।

फसल बीमा कानून का वर्तमान स्वरूप: वर्तमान में, भारत में फसल बीमा से संबंधित मुख्य कानून बीमा अधिनियम, 1938 और भारतीय बीमा नियामक एवं विकास प्राधिकरण (IRDAI) अधिनियम, 1999 हैं। इन कानूनों के तहत, बीमा कंपनियों का पंजीकरण, बीमा प्रावधान, क्लेम प्रक्रिया, और विवाद समाधान का प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त, सरकार ने फसल बीमा योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए विशेष नियम और दिशानिर्देश भी जारी किए हैं। उदाहरण के तौर पर, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY) के लिए, केंद्र सरकार ने बीमा कंपनियों के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश जारी किए हैं। इन दिशानिर्देशों में, बीमा प्रीमियम का निर्धारण, क्लेम प्रक्रिया, और शिकायत निवारण के प्रावधान शामिल हैं। इन कानूनी प्रावधानों का उद्देश्य, योजना के क्रियान्वयन में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करना है। साथ ही, किसानों के हितों की रक्षा भी इन कानूनों का मुख्य उद्देश्य है।

कानूनी प्रावधान और उनके महत्व: फसल बीमा योजनाओं के कानूनी ढांचे में कई महत्वपूर्ण प्रावधान शामिल हैं। सबसे पहले, बीमा अनुबंध का स्पष्ट रूप से निर्धारण आवश्यक है। इसमें, बीमाधारक और बीमाकर्ता के अधिकार और कर्तव्य स्पष्ट रूप से बताए गए हैं। उदाहरण के तौर पर, बीमाधारक को अपनी फसल का सही विवरण देना अनिवार्य है, और बीमाकर्ता को क्लेम का समय पर निपटान करना

चाहिए। इसके अतिरिक्त, बीमा प्रीमियम का निर्धारण, भुगतान का तरीका, और क्लेम प्रक्रिया का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इन प्रावधानों का उद्देश्य, विवादों को कम करना और प्रक्रिया को पारदर्शी बनाना है। साथ ही, बीमा कंपनियों की जिम्मेदारी और दायित्व भी इन कानूनों में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट हैं। उदाहरण के लिए, यदि बीमाकर्ता क्लेम का भुगतान नहीं करता है, तो उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जा सकती है। इसके अलावा, विवाद समाधान के लिए विशेष प्रावधान भी बनाए गए हैं, जैसे कि मध्यस्थता और सिविल कोर्ट का प्रावधान। इन प्रावधानों से, किसानों को कानूनी सुरक्षा मिलती है और उनके अधिकारों का संरक्षण होता है।

कानूनी सुरक्षा के उपाय: कानूनी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए, सरकार ने कई उपाय किए हैं। सबसे पहले, बीमा कंपनियों का पंजीकरण और निगरानी का प्रावधान है। IRDAI इन कंपनियों की निगरानी करता है और आवश्यकतानुसार कार्रवाई करता है। दूसरा, किसानों के लिए जागरूकता अभियान चलाए गए हैं, ताकि वे अपने अधिकारों को समझ सकें। तीसरा, शिकायत निवारण तंत्र मजबूत किया गया है। यदि कोई किसान बीमा कंपनी से संतुष्ट नहीं है, तो वह तुरंत शिकायत दर्ज करा सकता है। इसके अलावा, सरकार ने डिजिटल प्लेटफार्म भी विकसित किए हैं, जिससे क्लेम प्रक्रिया आसान और पारदर्शी हो गई है। इन उपायों से, कानूनी सुरक्षा बढ़ी है और किसानों का भरोसा भी मजबूत हुआ है। साथ ही, इन उपायों से बीमा कंपनियों की जिम्मेदारी भी सुनिश्चित होती है, जिससे योजना का क्रियान्वयन बेहतर होता है।

विवाद समाधान और कानूनी प्रक्रिया: फसल बीमा योजनाओं में विवाद अक्सर उत्पन्न होते हैं। इन विवादों का समाधान करने के लिए, विशेष कानूनी प्रावधान बनाए गए हैं। उदाहरण के लिए, यदि बीमाधारक को क्लेम का भुगतान नहीं मिलता है, तो वह तुरंत संबंधित बीमा कंपनी के खिलाफ शिकायत दर्ज करा सकता है। इसके बाद, मामला मध्यस्थता या न्यायालय में ले जाया जा सकता है। सरकार ने इन विवादों के त्वरित समाधान हेतु विशेष प्रावधान भी बनाए हैं। इन प्रावधानों का उद्देश्य, विवादों को जल्दी और निष्पक्ष रूप से हल करना है। इसके अलावा, बीमा कंपनियों को भी अपने दावों का सही और समय पर निपटान करना चाहिए। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जा सकती है। इन प्रावधानों से, किसानों को न्याय मिलना आसान हो जाता है और योजना की विश्वसनीयता भी बढ़ती है।

निष्कर्ष: अंत में, यह कहा जा सकता है कि फसल बीमा कानून और कानूनी सुरक्षा का ढांचा भारत में मजबूत हो रहा है। इन कानूनों ने योजना के क्रियान्वयन को पारदर्शी और जवाबदेह बनाया है। साथ ही, किसानों के अधिकारों की रक्षा के लिए भी प्रभावी प्रावधान किए गए हैं। हालांकि, अभी भी सुधार की आवश्यकता है, ताकि योजना का लाभ अधिकतम किसानों तक पहुंच सके। सरकार को चाहिए कि वे कानूनी प्रावधानों का सख्ती से पालन सुनिश्चित करें और विवाद समाधान तंत्र को और मजबूत बनाएं। इससे न केवल योजना की विश्वसनीयता बढ़ेगी, बल्कि किसानों का जीवन भी बेहतर होगा। अंततः, मजबूत कानूनी ढांचे के बिना, फसल बीमा योजनाओं का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। इसलिए, यह आवश्यक है कि हम इन कानूनों का सही ढंग से क्रियान्वयन करें और किसानों को कानूनी सुरक्षा प्रदान करें। तभी हम एक समृद्ध और सुरक्षित कृषि क्षेत्र का सपना साकार कर सकते हैं।

02/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

लो-टनल तकनीक द्वारा ऑफ सीजन में सब्जियों की खेती से आय वृद्धि

अनिता सैनी (शोध छात्रा) उद्यान विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

दीपक कुमार सैनी (फार्म मैनेजर) कृषि महाविद्यालय, कोटपूतली

लो-टनल खेती एक संरक्षित खेती की तकनीक है, जिसमें खेतों में क्यारियों के ऊपर बांस या पाइप की अर्ध-चंद्राकार संरचना बनाकर उन्हें पारदर्शी प्लास्टिक शीट से ढक दिया जाता है, जिससे ग्रीनहाउस जैसा वातावरण बनता है। यह तकनीक ठंड, पाला, बारिश और कीटों से फसलों (जैसे खीरा, लौकी, तरबूज, मिर्च) की रक्षा करती है, पौधों के विकास में मदद करती है, और ऑफ-सीजन (बेमौसमी) सब्जियों का उत्पादन करके किसानों को अच्छा मुनाफा देती है। सब्जियाँ विटामिन्स, लवणों, कार्बोहाइड्रेट्स तथा प्रोटीन्स का समृद्ध स्रोत होती है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ने अधिक जनसँख्या वृद्धि चर होने आहार पैटर्न बदलने एवं पैकेज्ड सब्जियों की उपलब्धता के फलस्वरूप देश में घरेलु व निर्यात आपूर्ति हेतु ताजा सब्जियों की साल भर माँग रहती है किन्तु प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के कारण फसल सीजन में सब्जियों की भरमार रहती है तथा ऑफ सीजन में इनके दाम आसमान छूने लगते हैं। सब्जियों का बाजार भाव फसल सीजन के शुरू एवं अंत में अधिक रहता है। सर्दी के दिनों में खुले खेतों में कम तापमान व पाले की दशा होने के कारण ग्रीष्म कालीन सब्जियां उगाना संभव नहीं होता है इसलिए इन सब्जियों को पॉलिथीन टनल्स में उगाया जाता है जहाँ इनकी बढ़द्वार व उपज के लिए उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराया जाता है। ग्रीन हाउस लो टनल तथा हाई टनल तकनीक के प्रादुर्भाव जिससे सब्जियों की बढ़द्वार हेतु तापमान एवं आर्वता पर नियंत्रण रहता है। लो टनल द्वारा फसल हेतु सूक्ष्म पारिस्थितिकी में सुधार होता है और वाष्पोत्सर्जन व जल मांग में कमी आती है परिणामत फसल उत्पादकता जल उपयोग दक्षता पोषण उपयोग दक्षता व भूमि उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है। सब्जियो की वर्ष भर खेती होने से किसान उनके उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग कर पाते है और उनकी आय में बढ़ोतरी होती है।

लो टनल तकनीक का सिद्धांतः

1. टनल के अंदर शीतकाल में ग्रीष्मकाल के समतुल्य वातावरण की दशाएँ मिल जाती है जिससे गर्मी की ऋतु में उगने वाली फसलें टनल तकनीक द्वारा सर्दी की ऋतु में पैदा की जा सकती हैं।

2. खेत में बांस लोहा एल्युमिनियम पाइप से बनी डी् आकृति की सरचना बनाई जाती है जो कि पारदर्शी पॉलिथीन की शीट से ढकी होती है।

3. मृदा को भी काले रंग की पॉलिथीन शीट से ढक दिया जाता है विन के समय सूर्य की रोशनी पारदर्शी पॉलिथीन शीट से होकर गुजरती है और काली पॉलिथीन से ढकी हुई मुवा द्वारा अवशोषित कर ली जाती है।

4. इससे टनल के अंदर का तापमान वांक्षित स्तर तक पहुँच जाता है।

5. मृदा के ऊपर प्लास्टिक शीट के तीन मुख्य उद्देश्य होते है यह ताप को रोकती है पानी के इस को कम करती है।

लो टनल ढांचाः लो टनल या प्लास्टिक टनल तकनीक खेती करने का एक आधुनिक तरीका है। लो टनल्स ग्रीन हाउस की तरह प्रभाव वाली लघुरूप सरचनाएँ होती है। स्टील की छड़ो

या पाइप को मोड़कर अर्द्ध चन्द्राकार संरचना बनाकर प्लास्टिक सीट से ढक दिया जाता है। जिसमें खेत में एक मीटर चौड़ी क्यारियां तैयार की जाती है तथा उन पर टपक सिंचाई हेतु लाइन फैलाकर रख दी जाती है। इन तैयार क्यारियों पर अर्द्धचन्द्राकार संरचना को लोहे के तारों द्वारा जोड़कर 75 से 110 से मी ऊंचाई का ढांचा तैयार कर लिया जाता है। यह ढांचा कम लागत में तैयार हो जाता है तथा उपयोग के बाद हिस्सों को अलग अलग खोल कर अगले साल प्रयोग के लिए रखा जा सकता है। इसमें खेत में तैयार की गई क्यारियों को प्लास्टिक की शीट से ढक कर सरक्षित किया जाता है

लो टनल तकनीक के फायदेः

* इस तकनीक द्वारा अगेती सब्जियों की खेती जा सकती है जिससे सब्जियों का अधिक भाव लेकर अच्छा लाग प्राप्त किया जा सकता है।
* पौधों की पोषक अंतग्रहण एवं कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग कर प्रकाश संश्लेषण क्रिया को बचाकर फसल की उपज में वृद्धि करती है।
* स्वस्थ एवं अगेती नर्सरी लगाई जा सकती है।
* उच्च गुणवत्ता व उच्च मूल्यवान फसल की वर्षा, वायु, पाले, रोग व कीटों से सुरक्षा होती है।
* फसल विविधीकरण के अवसर तथा उच्च गुणवत्ता व स्वच्छ उत्पाद पैदा करने में सहायक है।
* जिन क्षेत्रों में खुले खेतों में सब्जी उगाना संभव न हो वहाँ भी सब्जियों की खेती की जा सकती है जैसे कि अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर।
* लो टनल में कीट रोगों का खतरा कम रहता है।
* पौधों को मौसम की अनिश्चितताओं अधिक हवा, वर्षा, पाला व बर्फ से मी सुरक्षा करता है।
* लो टनल्स के अंदर का तापमान में वृद्धि होती है। मिट्टी के तापमान का नियंत्रण होता है अंकुरण व पौध वृद्धि को बढ़ावा मिलता है।
* सब्जियाँ और फल समय से पहले ही पककर तैयार हो जाते हैं।
* इस तकनीक से पानी व खाद की बचत होती है। इसके अलावा मृदा सरचना में सुधार होता है तथा पक्षियों व कीटों से फसल की सरक्षा होती है।
* लो टनल तकनीक से मुख्य रूप से उच्च गुणवत्ता व उच्च मूल्यवान पौध व फसलों जैसे कि टमाटर, मिर्च, खीरा, तरबूज, करेला, लौकी, खरबूजा, मूली, बीन्स और ग्रीष्मकालीन स्क्वैश जैसी सब्जियों उगाई जाती है। इस तकनीक का इस्तेमाल ज्यादातर सर्दी या बारिश के मौसम में किया जाता है।

खेत की तैयारीः खेत की अच्छी तरह जुताई कर पाटा लगाकर मिटटी भुरभरी बना लेनी चाहिए। तदोउपरांत एक मीटर चौड़ी 4 से 5 इंच ऊँचाई की बेड़ बना ली जाती है। अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद 1.5 से 2.0 किग्रा प्रति वर्ग मी् या वर्मीकम्पोस्ट 0.5 से 1.0 किग्रा प्रति वर्ग मी तथा नीम की खली 200 ग्रा प्रत्ति वर्ग मी की दर मिटटी में मिला देते हैं।

अन्तरशष्य एवं सिंचाईः फसल को खरपतवार रहित रखने के लिए सामान्यतः दो से तीन निराई गुड़ाई की आवश्यकता होती है। सब्जियों की समान एवं लगातार वृद्धि हेतु मिटटी में पर्याप्त नमी होना आवश्यक होती है अतः मौसम के अनुसार 10 से 15 दिन के अंतराल से सिंचाई की जाती है। शुष्क अवस्था का सब्जियों की गुणवत्ता एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

फसल एवं संस्तुत किस्में

क्रं.	फसल	किस्में
1.	तरबूज	अर्का श्यामा, अर्का ऐश्वर्या, अर्का माणिक, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा केसर, दुर्गापुरा लाल
2.	खीरा	पूसा लॉन्ग ग्रीन, काशी नूतन
3.	शिमला मिर्च	अर्का बसंत, अर्का गौरव, अर्का मोहिनी
4.	लौकी	अर्का नूतन, अर्को गंगा, अर्का बहार
5.	खरबूजा	अर्का सीरी, अर्का जीत, दुर्गापुरा मधु, आर एम. 43, एम एच वाई.5, आर एम.50
6.	करेला	अर्का हरित, पूसा हाइब्रिड 4, काशी उर्वशी
7.	मिर्च	पूसा सदाबहार, अर्का लोहित, अर्का हरिता, अर्का मेघना, आर सी एच 1
8.	तुरई	अर्का विक्रम, अर्का प्रसन
9.	टिंडा	अर्का टिंडा, पूसा रूनक
10.	टमाटर	अर्का विशेष, अर्का अपेक्षा, अर्का रक्षक, अर्का सम्राट, अर्का विकास

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

राजस्थान की रबी फसलों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव, चुनौतियाँ और समाधान

अनिल जाखड़, संगीता चौधरी विद्यावाचस्पति, सस्य विज्ञान विभाग, श्रीकर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर, जयपुर

प्रियंका चौधरी विद्यावाचस्पति, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

राहुल जाखड़ विद्यावाचस्पति, सस्य विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

शैली पुरोहित स्नातकोत्तर, उद्यान विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

प्रस्तावना: राजस्थान भारत का एक प्रमुख कृषि प्रधान राज्य है, जहाँ की जलवायु मुख्यतः शुष्क से अर्ध-शुष्क प्रकृति की है। राज्य की कृषि अर्थव्यवस्था का बड़ा हिस्सा रबी मौसम की फसलों पर निर्भर करता है, जिनमें गेहूं, सरसों, चना, जौ और इसबगोल प्रमुख हैं। परंपरागत रूप से यहाँ सर्दियों का मौसम इन फसलों के लिए अनुकूल माना जाता रहा है, किंतु हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान, वर्षा और मौसमीय परिस्थितियों में असामान्य बदलाव देखने को मिल रहे हैं। इन परिवर्तनों का सीधा प्रभाव रबी फसलों की उत्पादकता, गुणवत्ता और अंततः किसानों की आय पर पड़ रहा है, जिससे कृषि की स्थिरता पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया है।

जलवायु परिवर्तन की अवधारणा: जलवायु परिवर्तन से आशय पृथ्वी की औसत जलवायु परिस्थितियों में होने वाले दीर्घकालिक परिवर्तनों से है, जिनमें तापमान वृद्धि, वर्षा पैटर्न में बदलाव, चरम मौसम घटनाओं की आवृत्ति में वृद्धि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ता दबाव शामिल है। यद्यपि जलवायु परिवर्तन एक प्राकृतिक प्रक्रिया भी है, लेकिन वर्तमान समय में इसके लिए मानव गतिविधियाँ प्रमुख रूप से उत्तरदायी मानी जाती हैं। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने इस प्रक्रिया को तीव्र कर दिया है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण: जलवायु परिवर्तन के कारणों को मुख्यतः मानव-जनित और प्राकृतिक कारणों में विभाजित किया जा सकता है। मानव-जनित कारणों में ग्रीनहाउस गैसों का अत्यधिक उत्सर्जन सबसे प्रमुख है। कोयला, पेट्रोल, डीजल और गैस जैसे जीवाश्म ईंधनों के जलने से कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा वायुमंडल में लगातार बढ़ रही है। इसके अतिरिक्त, कृषि गतिविधियों और पशुपालन से मीथेन तथा रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन भी वैश्विक तापमान वृद्धि में योगदान देता है। वनों की कटाई से न केवल कार्बन अवशोषण की क्षमता घटती है, बल्कि वर्षा चक्र भी प्रभावित होता है। तेजी से बढ़ता औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और जनसंख्या वृद्धि संसाधनों पर दबाव बढ़ाकर जलवायु असंतुलन को और गंभीर बना रहे हैं। प्राकृतिक कारणों में सूर्य की गतिविधियों में परिवर्तन, ज्वालामुखी विस्फोट और पृथ्वी की कक्षीय गति में दीर्घकालिक बदलाव शामिल हैं। यद्यपि इनका प्रभाव सीमित अवधि या दीर्घकाल में दिखाई देता है, फिर भी वर्तमान जलवायु परिवर्तन में इनकी भूमिका तुलनात्मक रूप से कम मानी जाती है।

राजस्थान की रबी फसलों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव: राजस्थान में जलवायु परिवर्तन का सबसे स्पष्ट प्रभाव तापमान में निरंतर वृद्धि के रूप में देखा जा रहा है। पहले जहाँ सर्दियों में ठंड की अवधि अपेक्षाकृत लंबी होती थी, अब तापमान जल्दी बढ़ने लगता है। इसका प्रतिकूल प्रभाव गेहूं की दाना भरने की अवस्था पर पड़ता है, जिससे दाने सिकुड़ जाते हैं और उपज में गिरावट आती है। सरसों की फसल में भी उच्च तापमान के कारण तेल की मात्रा में कमी देखी जा रही है, जिससे फसल की गुणवत्ता प्रभावित होती है। वर्षा की अनियमितता भी एक गंभीर समस्या बन चुकी है। रबी मौसम में पर्याप्त नमी न मिलने से फसलों की प्रारंभिक वृद्धि प्रभावित होती है, जबकि कई बार जनवरी या फरवरी में अचानक वर्षा या ओलावृष्टि खड़ी फसल को भारी नुकसान पहुँचाती है। भरतपुर, अलवर, सीकर और श्रीगंगानगर जैसे जिलों में हाल के वर्षों में ओलावृष्टि से सरसों और चने की फसलों को व्यापक क्षति हुई है। इसके अतिरिक्त, पाला और गर्म हवाएँ भी रबी फसलों के लिए बढ़ता खतरा बन रही हैं। पश्चिमी राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में अचानक पाला पड़ने से चना और सरसों की फसल झुलस जाती है, वहीं मार्च के महीने में तापमान बढ़ने और गर्म हवाएँ चलने से गेहूं समय से पहले पक जाता है, जिससे उत्पादन में उल्लेखनीय कमी आती है।

कीट एवं रोगों में वृद्धि: जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप कीट और रोगों की समस्या भी गंभीर होती जा रही है। तापमान और आर्द्रता में बदलाव के कारण कई कीट अब लंबे समय तक सक्रिय रहते हैं और नए क्षेत्रों में भी फैल रहे हैं। इससे किसानों को कीटनाशकों पर अधिक खर्च करना पड़ता है, जिससे उत्पादन लागत बढ़ती है और पर्यावरणीय संतुलन भी प्रभावित होता है।

जल संसाधनों पर बढ़ता दबाव: राजस्थान पहले से ही जल संकट से जूझ रहा है और जलवायु परिवर्तन ने इस समस्या को और गंभीर बना दिया है। गिरता हुआ भूजल स्तर रबी फसलों की सिंचाई को कठिन बना रहा है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई ट्यूबवेल पर निर्भर है। अनियमित वर्षा और बढ़ते तापमान के कारण जल उपयोग दक्षता में भी कमी आ रही है।

हाल की नवाचार एवं आधुनिक तकनीकें: हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए कृषि क्षेत्र में कई नवीन तकनीकों का विकास हुआ है। जलवायु-स्मार्ट कृषि ;ब्सपउंजम.ैउंतज ।हतपबनसजनतमद्ध की अवधारणा के अंतर्गत ऐसी फसल प्रबंधन तकनीकों को अपनाया जा रहा है, जो कम संसाधनों में अधिक उत्पादन और जोखिम में कमी लाने में सहायक हैं। मौसम आधारित कृषि सलाह, मोबाइल एप्स और आईसीटी आधारित सूचना प्रणालियाँ किसानों को समय पर चेतावनी और उचित निर्णय लेने में मदद कर रही हैं। इसके अलावा, सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ, सटीक कृषि तकनीक और फसल मॉडलिंग जैसे उपाय जलवायु जोखिम को कम करने में उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

अनुकूलन उपाय एवं समाधान: राजस्थान में रबी फसलों को जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से बचाने के लिए जलवायु-सहिष्णु किस्मों का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है। बुवाई के समय में समायोजन, सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर का उपयोग, फसल विविधीकरण तथा मौसम आधारित कृषि सलाह को अपनाकर जोखिम को काफी हद तक कम किया जा सकता है। साथ ही, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

निष्कर्ष: जलवायु परिवर्तन राजस्थान की रबी फसलों के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है, जिसका प्रभाव उत्पादन, गुणवत्ता और किसानों की आय पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए वैज्ञानिक तकनीकों, नवीन कृषि नवाचारों और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाना समय की आवश्यकता है। यदि उचित रणनीतियाँ अपनाई जाएँ और किसानों को जागरूक किया जाए, तो जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को काफी हद तक कम कर कृषि को अधिक स्थिर और लाभकारी बनाया जा सकता है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

कृषि में एआई और मशीन लर्निंग का उपयोग – 2026 में क्या नया है?

शैफाली तंवर विद्यावाचस्पति शोधकर्ता, उद्यान विज्ञान विभाग
दीपेंद्र सिंह सारंगदेवोत विद्यावाचस्पति शोधकर्ता
सश्य विज्ञानं विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

आज की डिजिटल दुनिया में कृषि (Agriculture) सिर्फ मिट्टी और मौसम तक सीमित नहीं रह गई है। अब आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (Machine Learning) जैसी उच्च तकनीकों ने खेती को स्मार्ट, सटीक और लाभकारी बनाने में बड़ी भूमिका निभानी शुरू कर दी है। 2026 के लिए यह तकनीकें अब किसानों के रोज़मर्रा के निर्णयों, उत्पादन और आय बढ़ाने में नई ताकत बन गई हैं।

AI और मशीन लर्निंग किसान हेतु कैसे मददगार हैं?

1. सटीक मौसम और फसल पूर्वानुमान

AI सिस्टम बड़े डेटा (Big Data) में मौसम, वर्षा, तापमान जैसे संकेतों का विश्लेषण करता है और किसानों को सही समय पर मौसम पूर्वानुमान देता है। इससे किसान तय कर सकते हैं कि कब बोना है, कब पानी देना है और कब कटाई करनी है। उदाहरण के तौर पर 38 मिलियन भारतीय किसानों को AI आधारित मौसम पूर्वानुमान मिल चुका है, जिससे वे मानसून के बदलाव के अनुसार बेहतर निर्णय ले पाए।

2. कीट और रोग पहचान में त्वरित सहायता

ये तकनीकें छवियों (Images) और डाटा का विश्लेषण कर कीट, रोग या पोषण की कमी को जल्दी पहचान लेती हैं। किसान केवल अपने मोबाइल से फसल की तस्वीर लेकर बता सकते हैं कि क्या समस्या है और ढ्ढ उन्हें उपचार या बचाव के सुझाव देता है। इससे नुकसान कम होता है और रसायन का उपयोग भी घटता है।

3. स्मार्ट सिंचाई- पानी बचत और उपज बढ़ाना

AI आधारित सिंचाई सिस्टम मिट्टी में नमी का अध्ययन कर यह पहचान करते हैं कि किस खेत को कब और कितना पानी चाहिए। इससे जल की बर्बादी कम होती है और खेत की पैदावार बढ़ती है।

4. कीट / खरपतवार प्रबंधन सुरक्षित तरीके से

AI कैमरा और सेंसर खेतों को स्कैन कर फसल और खरपतवार में अंतर समझते हैं। यह तकनीक रसायन और जैविक उपायों को सिर्फ उस जगह पर लागू करती है जहां आवश्यक है, जिससे लागत कम होती है और पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है

5. मशीन लर्निंग आधारित निर्णय सहायता

मशीन लर्निंग मॉडल बड़े डाटा का विश्लेषण करते हैं जैसे मिट्टी की गुणवत्ता, पिछले मौसम का रिकॉर्ड, बाज़ार भाव आदि। इन डाटा के आधार पर सबसे उपयुक्त फसल, बोआई की तारीख, सिंचाई की रणनीति और मंडी का संभावित भाव बताए जाते हैं, जिससे किसान ज़्यादा लाभ कमा सकते हैं।

6. पशुधन स्वास्थ्य निगरानी (Livestock Monitoring)-AI टीकाओं और सेंसर की मदद से

पशुओं के स्वास्थ्य में आने वाली छोटी-छोटी बदलावों की पहचान कर देता है। बीमारियों का शुरुआती पता लगने पर इलाज समय पर संभव होता है जिससे दूध उत्पादन या अन्य पशु उपज में सुधार होता है।

2026 में AI से जुड़ी नयी उपलब्धियाँ

राजनीति और योजना समर्थन

महाराष्ट्र सरकार ने कृषि क्षेत्र में AI के उपयोग के लिए विशेष नीति (Agriculture AI Policy 2025-29) को मंजूरी दी है। इसके तहत पहले तीन वर्षों में रु. 500 करोड़ का बजट AI, ड्रोन्स, और प्रिडिक्टिव एनालिटिक्स जैसे आधुनिक उपकरणों को फैलाने के लिए आवंटित किया गया है।

विशेष फसल में AI अनुसंधान: गन्ना खेती में पैदावार बढ़ाने और रोगों का समय पर नियंत्रण पाने के लिए AI और मशीन लर्निंग आधारित तकनीकों पर कार्यशाला और नए समाधान विकसित किए जा रहे हैं।

* किसानों के लिए लाभ – सरल शब्दों में
* पानी, उर्वरक और रसायन की बचत
* मौसम की सटीक जानकारी
* फसल रोग और कीट नियंत्रण आसान
* उपज में सुधार और लागत में कमी
* टेक्नोलॉजी आधारित बाज़ार जानकारी
* पशुधन स्वास्थ्य पर नजर

AI अपनाने में किसानों को क्या जानना चाहिए

* AI उपकरण महंगे हो सकते हैं, इसलिए साझा उपयोग, कृषि संस्थाओं से मदद और सरकारी योजनाओं का लाभ लेना सही रहेगा।
* कई AI सलाह और पूर्वानुमान ऐप्स मोबाइल पर उपलब्ध हैं, जो खेती को सरल बनाते हैं।
* प्रशिक्षण और तकनीकी सहायता से ज्यादा से ज्यादा किसान इस तकनीक का उपयोग सीख सकते हैं।

निष्कर्ष

2026 के दौर में AI और मशीन लर्निंग सिर्फ भविष्य की तकनीक नहीं, बल्कि आज की ज़रूरत बन चुकी हैं। यह तकनीकें किसानों को खेत से जुड़े हर निर्णय में ज्ञान, सटीकता और मुनाफ़ा देती हैं। यदि किसान सही तरीके से इन आधुनिक समाधानों को अपनाएँ, तो उपज, लागत नियंत्रण और आर्थिक सुरक्षा– तीनों में बड़ा बदलाव संभव है।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

सरसों में प्रमुख रोग एवं कीट प्रबंधन

जितेंद्र कुमार शर्मा, हर्ष वर्धन सिंह शेखावत
विजय कमल मीना, लेखा एवं शक्ति सिंह भाटी
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

सरसों भारत की एक मुख्य तिलहन फसल है, लेकिन सफेद रतुआ और चेपा (माहू) जैसे रोगों और कीटों के कारण इसकी उपज में 30% से 70% तक की गिरावट आ सकती है।

प्रमुख रोग और उनका उपचार:

सफेद रतुआ: जिसे सफेद किट्ट या सफेद रोली भी कहा जाता है, मुख्य रूप से सरसों और क्रूसिफेरस परिवार की फसलों (जैसे मूली, गोभी, फूलगोभी) को प्रभावित करने वाला एक विनाशकारी रोग है।

कारक: यह रोग एल्ब्यूगो कैंडिडा 'Albugo candida' नामक फफूंद 'Oomycete' के कारण होता है।

अनुकूल परिस्थितियाँ: हवा में अधिक नमी, कम तापमान (13°C-25°C), और बारिश या ओस इस रोग के फैलने में सहायक होते हैं।

रोग के लक्षण

1. **पत्तियों पर धब्बे:** पत्तियों की निचली सतह पर सफेद या मलाईदार रंग के चमकदार फफोले दिखाई देते हैं।

2. ऊपरी सतह का पीलापन फफोलों के ठीक ऊपर वाली पत्तियों की ऊपरी सतह पर हल्के पीले धब्बे बन जाते हैं।

3. **फूलों की विकृति:** गंभीर संक्रमण की स्थिति में फूल और तने टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं और सूज जाते हैं, जिसे स्टैगहेड कहा जाता है। इससे फलियां और बीज नहीं बन पाते।

रोकथाम और उपचार:

बीज उपचार: बुवाई से पहले बीजों को एप्रन जैसे कवकनाशी से उपचारित करें।

रासायनिक नियंत्रण: संक्रमण दिखाई देने पर मेटालेक्सिल .मैनकोजेब (जैसे रिडोमिल गोल्ड) का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

कृषि प्रबंधन: रोगमुक्त बीजों का चयन करें, फसल चक्र अपनाएं और खेत की सफाई रखें। नई उन्नत किस्मों जैसे RH749 का उपयोग करें जो इस रोग के प्रति प्रतिरोधी हैं।

अल्टरनेरिया झुलसा : सरसों और गोभी वर्गीय फसलों का एक अत्यंत हानिकारक रोग है, जो उपज में 30% से 60% तक की कमी ला सकता है। यह कवक अल्टरनेरिया ब्रासिकाई द्वारा फैलता है।

मुख्य लक्षण:

* **संकेंद्रित घेरे Target Board Spots:** पत्तियों पर छोटे भूरे या काले रंग के गोलाकार धब्बे बनते हैं, जिनमें टारगेट बोर्ड जैसे संकेंद्रित घेरे 'Concentric rings' दिखाई देते हैं।

तने और फलियों पर हमला: रोग बढ़ने पर ये धब्बे तने और फलियों पर भी फैल जाते हैं, जिससे फलियां समय से पहले फट जाती हैं और दाने सिकुड़ जाते हैं।

बचाव और नियंत्रण के उपाय:

1. **स्वच्छ खेती:** पिछली फसल के अवशेषों को खेत से हटाकर नष्ट कर दें, क्योंकि यह कवक अवशेषों और खरपतवारों पर जीवित रहता है।

2. **बीज उपचार:** बुवाई से पहले बीजों को कार्बेन्डाजिम + मैंकोजेब 'Carbendazim 12% + Mancozeb 63% WP' या एप्रन 35 'Metalaxyl' से उपचारित करें।

3. छिड़काव रोग के लक्षण दिखते ही मैंकोजेब 75% या इप्रोडियोन का 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

4. **जैविक उपचार:** जैविक खेती के लिए स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस 'Pseudomonas fluorescent' या 1% लहसुन के अर्क का उपयोग प्रभावी पाया गया है।

मृदु रोमिल आसिता 'Downy Mildew': भी सरसों और गोभी वर्गीय फसलों का एक प्रमुख रोग है। यह अक्सर श्सफे रतुआ के साथ मिलकर फसल को दोहरा नुकसान पहुँचाता है।

यह रोग पेरोनोस्पोरा पेरासिटिका 'Peronospora parasitica' नामक कवक 'Oomycete' द्वारा फैलता है। आईसीएआर-सरसों अनुसंधान निदेशालय (DRMR) के अनुसार, यह रोग ठंडे और नम मौसम में अधिक उग्र होता है।

मुख्य लक्षण:

पत्तियों के नीचे: पत्तियों की निचली सतह पर सफेद या मटीले रंग के रुई जैसे धब्बे दिखाई देते हैं।

पत्तियों के ऊपर: धब्बों के ठीक ऊपर वाली ऊपरी सतह पर पीले रंग के कोणीय धब्बे बन जाते हैं।

फूलों पर प्रभाव: यदि संक्रमण फूल आने की अवस्था में हो, तो फूल विकृत होकर 'स्टैगहेड' (सूजे हुए तने) का रूप ले लेते हैं।

प्रबंधन और उपचार:

1. **बीज उपचार:** बुवाई से पहले बीजों को मेटालेक्सिल (6 ग्राम प्रति किलो बीज) से उपचारित करना सबसे प्रभावी बचाव है।

2. **छिड़काव:** रोग के शुरुआती लक्षण दिखने पर रिडोमिल गोल्ड 'Metalaxyl 4% + Mancozeb 64% WP' का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

3. **कृषि कार्य:** पौधों के बीच उचित दूरी रखें ताकि हवा का संचार बना रहे और नमी कम हो। एनआईपीएचएम (NIPHM) की सलाह के अनुसार, संक्रमित पौधों के अवशेषों को तुरंत जला देना चाहिए।

छाछ्या रोग 'Powdery Mildew' सरसों, मटर और जीरे जैसी फसलों का एक प्रमुख रोग है, जो विशेष रूप से शुष्क और गर्म मौसम में तेजी से फैलता है। यह कवक इरीसाइफी क्रुसिफेरम द्वारा होता है।

मुख्य लक्षण:

सफेद पाउडर: पत्तियों, तनों और फलियों की ऊपरी सतह पर सफेद आटे जैसा चूर्ण या पाउडर जमा हो जाता है, जिससे ऐसा लगता है जैसे किसी ने फसल पर राख या छाछ छिड़क दी हो।

प्रकाश संश्लेषण में बाधा: संक्रमण बढ़ने पर पत्तियां पीली होकर सूख जाती हैं, जिससे दानों का आकार छोटा रह जाता है और तेल की मात्रा कम हो जाती है।

नियंत्रण के उपाय:

1. **सल्फर का उपयोग:** छाछ्या रोग के नियंत्रण के लिए सल्फर युक्त फफूंदनाशकों का प्रयोग किया जा सकता है। लक्षण दिखाई देते ही उचित मात्रा में घुलनशील सल्फर का घोल बनाकर छिड़काव करें।

2. **अन्य फफूंदनाशकों का छिड़काव:** यदि रोग गंभीर अवस्था में हो तो डिनोकैप या हेक्साकोनाजोल जैसे उपयुक्त फफूंदनाशकों का विशेषज्ञ की सलाह से छिड़काव किया जा सकता है।

3. **बुवाई का समय:** समय पर बुवाई करने से इस रोग के प्रकोप को कम किया जा सकता है, जैसा कि कृषि विशेषज्ञों द्वारा सलाह दी जाती है।

4. **खेत की स्वच्छता:** रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों को खेत से हटाकर नष्ट कर देना चाहिए ताकि रोग के बीजाणु अगले मौसम में न फैलें।

माहू या चेपा सरसों की फसल का सबसे हानिकारक कीट है। यह मुख्य रूप से फसल की फली आने की अवस्था में रस चूसकर भारी नुकसान पहुँचाता है। यह कीट छोटे, कोमल शरीर वाले और पीले-हरे रंग के होते हैं, जो पौधों के कोमल भागों पर झुंड में चिपके रहते हैं।

मुख्य नुकसान:

रस चूसना: यह कीट पत्तियों, फूलों और फलियों से रस चूसते हैं, जिससे पौधा कमजोर हो जाता है और पत्तियां मुड़ जाती हैं।

हनीड्यू : ये कीट चिपचिपा पदार्थ छोड़ते हैं, जिस पर काली फफूंद 'Sooty Mold' जम जाती है। इससे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया रुक जाती है।

उपज में गिरावट: गंभीर हमले में दाने नहीं बनते या बहुत छोटे और सिकुड़े हुए रह जाते हैं, जिससे तेल की मात्रा और पैदावार 30-70% तक गिर सकती है।

नियंत्रण के उपाय

1. **समय पर बुवाई:** आईसीएआर-डीआरएमआर के अनुसार, 20 अक्टूबर तक बुवाई पूरी करने से चेपा का प्रकोप कम होता है।

2. **जैविक नियंत्रण:** खेत में लेडीबर्ड बीटल के संरक्षण को बढ़ावा दें, जो प्राकृतिक रूप से चेपा को खाती हैं। आप नीम के तेल (3000 ppm) का 5 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव कर सकते हैं।

3. **पीले चिपचिपे प्रपंच:** खेत में प्रति एकड़ 10-15 पीले चिपचिपे ट्रैप लगाने से उड़ने वाले माहू को नियंत्रित किया जा सकता है।

4. **रासायनिक छिड़काव:** जब 10: पौधों पर माहू दिखाई दे, तब थायोमेथोक्सम 25% WG (100 ग्राम/एकड़) या इमिडाक्लोप्रिड 17.8% SL (100 मिली/एकड़) का छिड़काव करें।

आरा मक्खी सरसों की फसल का एक और प्रमुख शत्रु कीट है, लेकिन यह मुख्य रूप से फसल की शुरुआती अवस्था (अंकुरण के बाद) में हमला करता है। इसे आरा मक्खी इसलिए कहते हैं क्योंकि मादा मक्खी के पास आरी जैसा अंग होता है जिससे वह पत्तियों के किनारों को चीरकर अंडे देती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

ड्रैगन फ्रूट व खजूर की खेती की संभावनाएं: राजस्थान के किसानों के लिए लाभकारी विकल्प

सरजीत यादव पी.एच.डी. स्कॉलर, विस्तार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

लक्ष्मी मीणा पी.एच.डी. स्कॉलर, विस्तार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

परिचय

राजस्थान की जलवायु मुख्यतः शुष्क और अर्ध-शुष्क है, जहां परंपरागत फसलों के साथ अब उच्च मूल्य वाली बागवानी फसलों की ओर किसानों का रुझान तेजी से बढ़ रहा है। बदलते मौसम, जल संकट और बाजार की बदलती मांग को देखते हुए ड्रैगन फ्रूट और खजूर की खेती किसानों के लिए एक उभरता हुआ और लाभकारी विकल्प बनकर सामने आई है। ये दोनों फसलें कम पानी में अच्छी वृद्धि करती हैं, गर्म तापमान सहन कर सकती हैं और बाजार में ऊँचे मूल्य पर बिकती हैं। राजस्थान के कई जिलों में इनकी सफल खेती के उदाहरण भी मिलने लगे हैं, जिससे अन्य किसानों में भी रुचि बढ़ रही है।

ड्रैगन फ्रूट

ड्रैगन फ्रूट, जिसे पिताया भी कहा जाता है, एक विदेशी फल है जो अब भारत में व्यावसायिक रूप से उगाया जा रहा है। यह फल पोषक तत्वों से भरपूर होता है और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं में इसकी मांग तेजी से बढ़ रही है। इसकी खेती के लिए गर्म और शुष्क जलवायु उपयुक्त रहती है तथा 20 से 38 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूल माना जाता है। हल्की रेतीली या दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास अच्छा हो, इसमें बेहतर उत्पादन देती है। राजस्थान के दक्षिणी और पश्चिमी क्षेत्रों में इसकी खेती की अच्छी संभावनाएँ हैं क्योंकि वहां वर्षा कम होती है और धूप पर्याप्त मिलती है।

ड्रैगन फ्रूट का पौधा बेलनुमा होता है और इसे सहारे की आवश्यकता होती है, इसलिए सीमेंट या कंक्रीट के खंभों का उपयोग किया जाता है। एक खंभे के चारों ओर तीन से चार पौधे लगाए जाते हैं। पौधों के बीच उचित दूरी रखने से वृद्धि और प्रबंधन आसान होता है। इसकी सिंचाई की आवश्यकता बहुत कम होती है और ड्रिप सिंचाई सबसे उपयुक्त पद्धति मानी जाती है। अधिक पानी से जड़ सड़न का खतरा रहता है, इसलिए जल प्रबंधन महत्वपूर्ण है। पौधे लगभग एक से डेढ़ वर्ष में फल देना शुरू कर देते हैं और तीसरे वर्ष से अच्छा उत्पादन मिलने लगता है। बाजार में इसका मूल्य सामान्य फलों की तुलना में अधिक रहता है, जिससे किसानों को बेहतर आय प्राप्त हो सकती है।

हालांकि शुरुआती निवेश संरचना और खंभों के कारण कुछ अधिक होता है और पाले से बचाव करना जरूरी है।

खजूर की खेती

खजूर की खेती मरुस्थलीय क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त मानी जाती है। राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर और जोधपुर जैसे जिलों में इसकी खेती के लिए अनुकूल परिस्थितियां उपलब्ध हैं। खजूर का पौधा अत्यधिक गर्मी सहन कर सकता है और शुष्क वातावरण में अच्छी वृद्धि करता है। यह रेतीली तथा हल्की लवणीय मिट्टी में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, जो राजस्थान की भूमि परिस्थितियों से मेल खाती है। यही कारण है कि इसे मरुस्थलीय क्षेत्रों का स्वर्ण अवसर कहा जाता है।

खजूर के लिए टिश्यू कल्चर पौधों का उपयोग अधिक लाभकारी माना जाता है क्योंकि वे शुद्ध और उच्च उत्पादक होते हैं। पौधरोपण के समय नर और मादा पौधों का संतुलित अनुपात रखना आवश्यक है ताकि परागण सही ढंग से हो सके। प्रारंभिक वर्षों में नियमित सिंचाई और देखभाल जरूरी होती है, परंतु बाद में पौधे कम पानी में भी जीवित रह सकते हैं। ड्रिप सिंचाई यहां भी उपयोगी सिद्ध होती है। खजूर के पौधे चार से पांच वर्ष बाद फल देना शुरू करते हैं और सात से आठ वर्ष में पूर्ण उत्पादन पर पहुँचते हैं। एक विकसित पौधे से अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है और ताजे तथा सूखे दोनों रूपों में इसका बाजार उपलब्ध है। भारत में खजूर का बड़ा हिस्सा आयात होता है, इसलिए घरेलू उत्पादन के लिए बाजार की अच्छी संभावना मौजूद है।

आर्थिक दृष्टि से तुलना

आर्थिक दृष्टि से देखें तो ड्रैगन फ्रूट जल्दी फल देने वाली फसल है और मध्यम निवेश में शुरू की जा सकती है, जबकि खजूर दीर्घकालीन निवेश वाली फसल है जो कई दशकों तक उत्पादन देती है। ड्रैगन फ्रूट से जल्दी नकद आय मिलती है, जबकि खजूर लंबे समय तक स्थिर आय का स्रोत बन सकता है। दोनों ही फसलों में जल उपयोग दक्षता अधिक है, जो राजस्थान जैसे जल संकट वाले राज्य के लिए महत्वपूर्ण है।

राजस्थान में विशेष अवसर

राजस्थान में इन फसलों की संभावनाएँ इसलिए भी अधिक हैं क्योंकि यहाँ माइक्रो इरिगेशन को बढ़ावा दिया जा रहा है, बागवानी फसलों पर विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत सब्सिडी उपलब्ध है और उच्च मूल्य फलों की बाजार मांग लगातार बढ़ रही है। पर्यटन क्षेत्रों, होटलों और शहरी बाजारों में इन फलों की विशेष मांग देखी जा रही है। यदि किसान समूह आधारित या एफपीओ मॉडल के माध्यम से इन फसलों की खेती करें तो विपणन और मूल्य प्राप्ति और बेहतर हो सकती है।

निष्कर्ष

अंततः कहा जा सकता है कि ड्रैगन फ्रूट और खजूर की खेती राजस्थान के किसानों के लिए आय बढ़ाने का एक मजबूत विकल्प बन सकती है। सफल उत्पादन के लिए गुणवत्तापूर्ण पौध सामग्री, वैज्ञानिक प्रबंधन, उचित सिंचाई व्यवस्था और बाजार से जुड़ाव आवश्यक है। योजनाबद्ध तरीके से अपनाने पर ये फसलें

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

भारतीय देशी गौवंश में परजीवी प्रतिरोध : आनुवंशिक क्षमता और वैज्ञानिक महत्व

डॉ. असद खान पी.एच.डी. शोधार्थी, पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, (हरियाणा)

डॉ. नितिन यादव सहायक प्राध्यापक, वेट्रनेरी पैरासिटोलॉजी विभाग, अपोलो कॉलेज ऑफ वेट्रनेरी मेडिसन, जयपुर - 302031, (राजस्थान)

डॉ. धवल कुमावत सहायक पशु चिकित्सा क्षेत्र अधिकारी, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, मध्यप्रदेश

डॉ. मारिया खान जूनियर वेट्रनेरी ऑफिसर, संवेदना डेवलपमेंट सोसायटी, बी.एफ.आई.एल.-सी.एस.आर., राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन, रायसेन (म.प्र.)

भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देश में पशुपालन प्रणाली परजीवी रोगों से गहराई से प्रभावित होती है। आंतरिक परजीवी जैसे हेलमिंथ और प्रोटोजोआ तथा बाह्य परजीवी जैसे किलनी, मक्खी और अन्य रक्तचूषक कीट, दुग्ध उत्पादन, पशु स्वास्थ्य और प्रजनन क्षमता को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। इन परजीवियों के नियंत्रण के लिए लंबे समय से कृमिनाशक और कीटनाशक दवाओं का उपयोग किया जाता रहा है लेकिन इनके अत्यधिक और अनियंत्रित प्रयोग से औषधि प्रतिरोध, पर्यावरण प्रदूषण और दूध तथा मांस में अवशेष की समस्या उत्पन्न हो गई है। इस पृष्ठभूमि में भारतीय देशी गौवंश की प्राकृतिक परजीवी प्रतिरोध क्षमता एक स्थायी और व्यवहारिक समाधान के रूप में उभरकर सामने आई है।

परजीवी प्रतिरोध का तात्पर्य केवल यह नहीं है कि पशु में संक्रमण नहीं होता बल्कि यह उस आनुवंशिक क्षमता को दर्शाता है जिसके कारण पशु परजीवियों के संक्रमण को सीमित रखता है, उनके विरुद्ध प्रभावी प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया विकसित करता है और संक्रमण के बावजूद न्यूनतम उत्पादन हानि झेलता है। यह क्षमता जन्मजात होती है और पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती है। भारतीय देशी नस्लों में यह गुण सदियों के प्राकृतिक चयन का परिणाम है क्योंकि इन नस्लों का विकास लगातार उच्च तापमान, आर्द्रता, सीमित पोषण और भारी परजीवी दबाव वाली परिस्थितियों में हुआ है।

गिर, साहीवाल, थारपारकर, रेड सिंधी और कांकरेज जैसी नस्लें लंबे समय से भारतीय उपमहाद्वीप की स्थानीय पारिस्थितिकी में अनुकूलित रही हैं। इन नस्लों में आंतरिक परजीवियों, विशेषकर जठरांत्रीय हेलमिंथ संक्रमण के प्रति बेहतर सहनशीलता पाई गई है। अनेक अध्ययनों में यह देखा गया है कि इन नस्लों में मल में कृमि अंडों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है और संक्रमण की स्थिति में भी नैदानिक लक्षण हल्के रहते हैं। इन पशुओं में ईओसिनोफिल कोशिकाओं और परजीवी-विशिष्ट प्रतिरक्षी तत्वों की सक्रियता अधिक प्रभावी पाई गई है जो कृमियों के जीवन चक्र को बाधित करने में सहायक होती है।

प्रोटोजोआ जनित रोगों, विशेषकर किलनी द्वारा फैलने

वाली थिलेरियोसिस और बेबेसियोसिस के संदर्भ में भी देशी नस्लों की प्रतिरोध क्षमता उल्लेखनीय है। जहाँ विदेशी या संकर नस्लों में ये रोग तीव्र रूप से प्रकट होकर उच्च मृत्यु दर का कारण बनते हैं वहीं देशी नस्लों में संक्रमण अपेक्षाकृत हल्का रहता है और पशु शीघ्र स्वस्थ हो जाते हैं। यह अंतर केवल किलनी भार में कमी के कारण नहीं बल्कि बेहतर कोशिकीय और ह्यूमरल प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया के कारण भी देखा जाता है। गिर और थारपारकर नस्लों में इन रोगों के प्रति सहनशीलता को अनेक क्षेत्रीय अध्ययनों में दर्ज किया गया है।

बाह्य परजीवियों, विशेषकर किलनी के प्रति प्रतिरोध, भारतीय देशी गौवंश की सबसे प्रमुख विशेषताओं में से एक है। इन नस्लों की त्वचा अपेक्षाकृत मोटी होती है, स्वेद (पसीना) ग्रंथियाँ अधिक विकसित होती हैं और ग्रूमिंग व्यवहार बेहतर होता है जिससे किलनी का स्थायी रूप से चिपकना और पनपना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त, त्वचा की गंध और जैव-रासायनिक गुण किलनी और कीटों के लिए कम आकर्षक माने जाते हैं। यही कारण है कि भारतीय जेबू गाय (बॉस इन्डिकस) वर्ग की नस्लों में किलनी का भार विदेशी नस्ल (बॉस टॉरस) की तुलना में काफी कम पाया जाता है।

आधुनिक आणविक आनुवंशिकी ने परजीवी प्रतिरोध के जैविक आधार को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शोध से यह स्पष्ट हुआ है कि प्रतिरक्षा से जुड़े जीन, विशेषकर मेजर हिस्टोकोम्पैटिबिलिटी कॉम्प्लेक्स (एम.एच.सी.) और टोल-लाइक रिसेप्टर (टी.एल.आर.) जीन, देशी नस्लों में अनुकूल रूप में विद्यमान हैं। एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपता (एस.एन.पी.) आधारित अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि इन नस्लों में ऐसे युग्मविकल्पी (एलील्स) अधिक पाए जाते हैं जो परजीवी पहचान और प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को अधिक प्रभावी बनाते हैं। यह जानकारी भविष्य में मार्कर-सहायित चयन (एम.ए.एस.) के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

भारतीय देशी गौवंश की यह आनुवंशिक संपदा केवल संरक्षण योग्य धरोहर नहीं है, बल्कि पशुपालन के भविष्य के लिए एक व्यावहारिक समाधान भी है। यदि परजीवी प्रतिरोध को दुग्ध उत्पादन जैसे पारंपरिक चयन मानदंडों के साथ संतुलित रूप से प्रजनन कार्यक्रमों में शामिल किया जाए तो दवाओं पर निर्भरता कम की जा सकती है और टिकाऊ, कम लागत तथा पर्यावरण-अनुकूल पशुपालन प्रणाली विकसित की जा सकती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि गिर, साहीवाल और थारपारकर जैसी भारतीय देशी नस्लें परजीवी प्रतिरोध की दृष्टि से प्राकृतिक रूप से समृद्ध हैं। बदलते जलवायु परिदृश्य और बढ़ती औषधि प्रतिरोध की चुनौती के बीच इन नस्लों की आनुवंशिक क्षमता को पहचानना, संरक्षित करना और वैज्ञानिक रूप से उपयोग में लाना समय की आवश्यकता है। भारतीय पशुपालन की दीर्घकालिक स्थिरता इन्हीं देशी नस्लों की समझ और समुचित उपयोग पर निर्भर करती है।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

हरियाणा में महिलाओं की पारिवारिक आय बढ़ाने में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका

डॉ. विजय कुमार कौशिक
जिला विस्तार विशेषज्ञ (फार्म प्रबंधन), चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविधालय, कृषि विज्ञान केंद्र, उचानी, करनाल (हरियाणा)

भूमिका

ग्रामीण भारत में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी लंबे समय तक सीमित रही है, जिसका मुख्य कारण शिक्षा की कमी, संसाधनों तक कम पहुँच, सामाजिक बंधन तथा रोजगार के अवसरों का अभाव रहा है। हरियाणा जैसे कृषि प्रधान राज्य में भी अधिकांश ग्रामीण महिलाएँ घरेलू कार्यों तक ही सीमित रही हैं। ऐसे में स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups – SHGs) महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण का एक प्रभावशाली माध्यम बनकर उभरे हैं। SHGs ने न केवल महिलाओं को संगठित किया है, बल्कि उन्हें आय सृजन के अवसर प्रदान कर उनकी पारिवारिक आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वयं सहायता समूहों की अवधारणा

स्वयं सहायता समूह 10-20 महिलाओं का ऐसा स्वैच्छिक समूह होता है, जो आपस में बचत करता है, अपनी पूंजी बनाता है और आवश्यकता पड़ने पर सदस्यों को ऋण उपलब्ध कराता है। ये समूह सामूहिक निर्णय, आपसी सहयोग और आत्मनिर्भरता के सिद्धांत पर कार्य करते हैं। हरियाणा में सात्नह्य को राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM), राज्य सरकार तथा विभिन्न स्वयंसेवी संगठनों द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा है।

महिलाओं की आय बढ़ाने में SHGs की प्रमुख भूमिकाएँ

1. **बचत की आदत विकसित करना**–SHGs महिलाओं में नियमित बचत की आदत विकसित करते हैं। छोटी-छोटी बचत से समूह की सामूहिक पूंजी बनती है, जिसका उपयोग महिलाएँ छोटे व्यवसाय शुरू करने या पारिवारिक आवश्यकताओं को पूरा करने में करती हैं। इससे साहूकारों पर निर्भरता घटती है और परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है।

2. **आसान ऋण सुविधा**–SHGs के माध्यम से महिलाओं को कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध होता है। यह ऋण कृषि आधारित गतिविधियों, पशुपालन, कुटीर उद्योग, सिलाई-कढ़ाई, खाद्य प्रसंस्करण आदि में लगाया जाता है। इससे महिलाओं की आय के स्रोत बढ़ते हैं।

3. **स्वरोजगार और उद्यमिता विकास**–SHGs महिलाओं को स्वरोजगार के लिए प्रेरित करते हैं। हरियाणा में अनेक SHG महिलाएँ डेयरी, मशरूम उत्पादन, अचार-मुरब्बा, पापड़-बड़ी, अगरबत्ती, मोमबत्ती, सिलाई-बुटीक, सब्जी उत्पादन और जैविक खाद निर्माण जैसे कार्यों से जुड़ी हैं। इन गतिविधियों से उन्हें नियमित आय प्राप्त होती है।

4. **कौशल विकास और प्रशिक्षण**–सरकारी विभागों, KVKs और NGOs के सहयोग से सात्नह्य को विभिन्न कौशल प्रशिक्षण दिए जाते हैं। जैसे– खाद्य प्रसंस्करण, पैकेजिंग, गुणवत्ता नियंत्रण, विपणन, लेखा-जोखा आदि। कौशल बढ़ने से महिलाओं की उत्पादकता और आय दोनों में वृद्धि होती है।

5. **सामूहिक विपणन (Collective Marketing)**-SHGs सामूहिक रूप से उत्पाद बेचते हैं, जिससे उन्हें बेहतर मूल्य मिलता है। अकेले बेचने की तुलना में समूह के माध्यम से बिक्री करने से बिचौलियों की भूमिका कम होती है और लाभांश बढ़ता है।

6. **महिलाओं का आत्मविश्वास और निर्णय-क्षमता बढ़ना**–आर्थिक रूप से सक्षम होने से महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ता है। वे परिवार के आर्थिक निर्णयों में सक्रिय भागीदारी करने लगती हैं, जिससे पारिवारिक आय का बेहतर प्रबंधन होता है।

हरियाणा में SHGs के माध्यम से आय सृजन की प्रमुख गतिविधियाँ

डेयरी और पशुपालन	मशरूम उत्पादन	मधुमक्खी पालन
सब्जी और फल उत्पादन	सिलाई-कढ़ाई एवं बुटीक	खाद्य प्रसंस्करण (अचार, जैम, पापड़ आदि)
जैविक खाद एवं वर्मी कम्पोस्ट	हस्तशिल्प एवं घरेलू उद्योग	

इन गतिविधियों से महिलाओं को मासिक आय प्राप्त होती है, जिससे परिवार की कुल आय में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

सामाजिक और आर्थिक प्रभाव

महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता में वृद्धि	परिवार की जीवन-स्तर में सुधार	बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर अधिक खर्च
गरीबी में कमी	ग्रामीण रोजगार के अवसरों में वृद्धि	

चुनौतियाँ

* विपणन की सीमित सुविधा * तकनीकी जानकारी की कमी
* पूंजी की अपर्याप्तता
* उत्पादों के लिए स्थायी बाजार का अभाव

सुधार के सुझाव

* SHGs को अधिक प्रशिक्षण और तकनीकी सहायता
* उत्पादों के लिए ब्रांडिंग और पैकेजिंग
* सरकारी योजनाओं से बेहतर जोड़
* डिजिटल मार्केटिंग और ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म से जुड़ाव

निष्कर्ष

हरियाणा में स्वयं सहायता समूह महिलाओं की पारिवारिक आय बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम बन चुके हैं। SHGs के माध्यम से महिलाएँ न केवल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन रही हैं, बल्कि समाज में सम्मानजनक स्थान भी प्राप्त कर रही हैं। यदि SHGs को निरंतर समर्थन, प्रशिक्षण और बाजार से जोड़ दिया जाए, तो वे ग्रामीण हरियाणा की महिलाओं की आर्थिक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

कीट एवं रोग प्रबंधन में सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों की भूमिका

डॉ. कृशानु रिसर्च फेलो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल, (हरियाणा)

रजनीश पाल शोध छात्र, कीट विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय (मेरठ)

शची तिवारी शोध छात्रा, वनस्पति विज्ञान विभाग, स्वामी विवेकानन्द सुभारती यूनिवर्सिटी मेरठ

श्वेता यादव शोध छात्रा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान करनाल, हरियाणा

प्रस्तावना: कृषि मानव जीवन की आधारशिला है तथा बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु फसल उत्पादन में निरंतर वृद्धि आवश्यक है। किंतु कृषि उत्पादन में कीटों एवं रोगों की समस्या एक प्रमुख बाधा रही है। अनुमानतः भारत में कुल फसल उत्पादन का लगभग 20ङ्क30 प्रतिशत भाग कीटों एवं रोगों के कारण नष्ट हो जाता है। इन समस्याओं के समाधान हेतु लंबे समय से रासायनिक कीटनाशकों एवं फफूंदनाशकों का उपयोग किया जाता रहा है, परंतु इनके अत्यधिक एवं अविवेकपूर्ण प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण, मृदा की उर्वरता में कमी, कीटों एवं रोगजनकों में प्रतिरोध, लाभकारी जीवों का विनाश तथा मानव एवं पशु स्वास्थ्य पर गंभीर दुष्प्रभाव देखने को मिले हैं।

इन परिस्थितियों में सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशक एक सुरक्षित, पर्यावरण-अनुकूल एवं टिकाऊ विकल्प के रूप में उभरकर सामने आए हैं।

सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों की अवधारणा: सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशक वे जैविक पदार्थ हैं, जिनका निर्माण या स्रोत जीवित सूक्ष्मजीव जैसे बैक्टीरिया, फफूंद, विषाणु, एक्टिनोमायसीट्स आदि होते हैं। ये सूक्ष्मजीव कीटों एवं रोगजनकों को संक्रमित कर उनके जीवन चक्र को बाधित करते हैं और उनकी संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे बनाए रखते हैं। सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशक न केवल कीट नियंत्रण में, बल्कि फसली रोगों के प्रबंधन में भी अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुए हैं।

सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों के प्रकार: सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है–बैक्टीरियल, फफूंद आधारित एवं विषाणु आधारित जैव-कीटनाशक। इन सभी का उद्देश्य कीटों एवं रोगजनकों को जैविक रूप से नियंत्रित कर फसलों को सुरक्षित रखना है।

बैक्टीरियल जैव-कीटनाशक: बैक्टीरियल जैव-कीटनाशकों में ऐसे लाभकारी बैक्टीरिया का उपयोग किया जाता है, जो कीटों अथवा रोगजनकों के विरुद्ध विषैले तत्व, एंजाइम एवं टॉक्सिन उत्पन्न करते हैं। बैसिलस थुरिंगिएन्सिस लेपिडॉप्टेरन वर्ग के कीटों के नियंत्रण में अत्यंत प्रभावी माना जाता है, क्योंकि यह कीट के पाचन तंत्र को नष्ट कर देता है। स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस का प्रयोग मुख्यतः मृदा एवं जड़ जनित रोगों के नियंत्रण हेतु किया जाता है जबकि बैसिलस सबटिलिस फफूंद जनित रोगों के विरुद्ध प्रभावी जैव-एजेंट के रूप में व्यापक रूप से उपयोग में लाया जाता है।

फफूंद आधारित जैव-कीटनाशक: फफूंद आधारित जैव-कीटनाशक कीटों एवं रोगजनकों को सीधे संक्रमित कर उनके शरीर में वृद्धि करते हैं, जिससे अंततः उनकी मृत्यु हो जाती है। ब्यूवेरिया बासियाना सफेद मक्खी, माहू एवं थ्रिप्स जैसे चूसक कीटों के

नियंत्रण में उपयोगी है। मेटारहिज़ियम एनिसोप्लिया दीमक एवं टिड्डियों के विरुद्ध प्रभावी सिद्ध हुआ है। ट्राइकोडर्मा हर्ज़ियानम मृदा जनित रोगों जैसे विल्ट एवं रूट रॉट के नियंत्रण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त, वर्टिसिलियम (लेकेनिसिलियम) लेकानी का उपयोग चूसक कीटों के जैविक नियंत्रण में किया जाता है।

विषाणु आधारित जैव-कीटनाशक: विषाणु आधारित जैव-कीटनाशकों में कीट-विशिष्ट विषाणुओं का उपयोग किया जाता है, जो केवल लक्षित कीट को ही संक्रमित करते हैं और अन्य जीवों के लिए सुरक्षित रहते हैं। न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस वायरस (एनपीवी) का प्रयोग हेलिकोवर्पा आर्मिगेरा तथा स्पोडोप्टेरा लिटुरा जैसे हानिकारक कीटों के नियंत्रण में किया जाता है। इसी प्रकार, ग्रैनुलोसिस वायरस फल एवं तना छेदक कीटों के विरुद्ध प्रभावी जैव-नियंत्रक के रूप में जाना जाता है।

कीट एवं रोग प्रबंधन में कार्य-विधि: कीट प्रबंधन में सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशक कीट के शरीर में प्रवेश कर विषैले एंजाइम एवं टॉक्सिन उत्पन्न करते हैं, जिससे कीट का पाचन तंत्र, तंत्रिका तंत्र अथवा कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं और कुछ ही दिनों में उसकी मृत्यु हो जाती है। रोग प्रबंधन की प्रक्रिया में ये सूक्ष्मजीव रोगजनक फफूंद अथवा बैक्टीरिया के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं, उनके विकास को अवरुद्ध करते हैं तथा पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाकर फसल को रोगों से सुरक्षित रखते हैं।

कृषि में सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों का महत्व: कृषि क्षेत्र में सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों का महत्व अत्यंत व्यापक है। ये जैव-अपघटनीय होते हैं, जिससे मृदा, जल एवं वायु प्रदूषित नहीं होती और पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित होता है। ये मानव एवं पशु स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित माने जाते हैं, क्योंकि इनका कोई भी विषैला अवशेष खाद्य पदार्थों में नहीं रहता। इसके अतिरिक्त, ये मित्र कीटों, परभक्षियों एवं परागण करने वाले कीटों को नुकसान नहीं पहुँचाते। सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों के उपयोग से कीटों एवं रोगजनकों में प्रतिरोध विकसित होने की संभावना भी बहुत कम होती है। समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन (IPM एवं IDM) प्रणालियों में इनका उपयोग रासायनिक, सांस्कृतिक एवं यांत्रिक विधियों के साथ मिलकर एक स्थायी एवं प्रभावी समाधान प्रदान करता है।

सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों की सीमाएं: यद्यपि सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशक अत्यंत उपयोगी हैं, फिर भी इनकी कुछ सीमाएँ हैं। इनकी प्रभावशीलता अपेक्षाकृत धीमी होती है, जिससे तुरंत परिणाम प्राप्त नहीं होते। इनका प्रभाव तापमान एवं आर्द्रता जैसी पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त, भंडारण एवं शेल्फ-लाइफ की समस्या तथा किसानों में तकनीकी जानकारी के अभाव के कारण इनके व्यापक उपयोग में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।

भविष्य की संभावनाएं: जैव-प्रौद्योगिकी, नैनो-फार्मुलेशन एवं उन्नत उत्पादन तकनीकों के माध्यम से सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों की प्रभावशीलता, स्थायित्व एवं स्वीकार्यता को बढ़ाया जा सकता है। सरकार की जैव-कृषि नीतियाँ एवं जैव-इनपुट्स को प्रोत्साहन देने की योजनाएँ इनके व्यापक उपयोग की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

निष्कर्ष: सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशक कीट एवं रोग प्रबंधन का एक प्रभावी, सुरक्षित एवं पर्यावरण-अनुकूल विकल्प हैं। ये न केवल फसल उत्पादन में वृद्धि करते हैं, बल्कि सतत कृषि, पर्यावरण संतुलन एवं मानव स्वास्थ्य संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भविष्य की टिकाऊ कृषि प्रणाली में सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशकों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

कल्प दास सब्जी विज्ञान विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)

शीतकालीन सब्जियों में कम लागत वाली कटाई उपरान्त प्रबन्ध तकनीकें

प्रस्तावनाः भारत को सब्जी उत्पादन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण देश माना जाता है और प्रति वर्ष लाखों टन सब्जियों का उत्पादन किया जाता है। सब्जी उत्पादन में वृद्धि होने के बावजूद, उत्पादन के बाद कटाई उपरान्त प्रबन्ध पर अपनाया गया कम ध्यान भारत की कृषि व्यवस्था की एक गम्भीर समस्या बन चुका है। अत्यधिक परिमाण में उत्पादन होने के बाद भी यदि उत्पाद को सही तरीके से संभाला न जाए तो उसे बाजार तक गुणवत्तायुक्त अवस्था में पहुंचाना मुशिकल हो जाता है।

विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि भारत में सब्जियों में 20 से 30 प्रतिशत तक हानि केवल कटाई के बाद होती है। यह हानि केवल सब्जियों के सड़ने या फेंक दिए जाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें ताजगी में कमी, भार में घटा, सुयोग्य पोषण तत्व का ह्रास होना और बाजार मूल्य में कमी भी शामिल है। इसका सीधा प्रभाव किसानों की आय पर पड़ता है, क्योंकि उन्हें अपनी मेहनत से उत्पादित सब्जियों का उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता है। उत्पादक के साथ-साथ उपभोक्ता भी इस हानि से प्रभावित होते हैं। उपभोक्ता तक पहुँचने वाली सब्जियां अक्सर ताजा नहीं रहती, उनका स्वरूप एवं स्वाद प्रभावित हो जाता है और कुछ मामलों में स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं। इस प्रकार, कटाई उपरान्त हानि केवल एक आर्थिक समस्या न होकर खाद्य सुरक्षा और पोषण सुरक्षा से भी जुड़ी हुई है। रबी ऋतु की सब्जियां जैसे गोभी वर्ग, गाजर, मटर, पालक, प्याज, चुकन्दर आदि अपनी अच्छी पोषण गुणवत्ता एवं बाजार मांग के कारण विशेष महत्व रखती हैं। यह सभी सब्जियां कटाई के बाद भी जीवित उत्तक रहती हैं और उनके अन्दर श्वसन, वाष्पोत्सर्जन, एंजाइम क्रियाएं एवं सूक्ष्म जीव गतिविधियां निरन्तर चलति रहती हैं। उदाहरण के रूप में, यदि गाजर या मटर को कटाई के बाद धूप में खुला छोड़ दिया जाए तो उनमें पानी की हानि तेजी से होती है, जिससे वे जल्दी मुझा जाती हैं और उनकी बाजार मूल्य में तत्काल कमी आ जाती है। इसी प्रकार, गोभी या पालक को यदि गलत पैकजिंग में रखा जाए तो उनमें फंगस एवं सड़न की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए कटाई उपरान्त प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि कटाई के बाद सब्जियों में चल रही शारीरिक एवं जैव रासायनिक प्रक्रियाओं को यथासंभव धीमा किया जाए। यदि कटाई का उपयुक्त समय चुना जाए, तत्काल छांटाई और ग्रेडिंग की जाए, सब्जियों को छाया और ठण्डे वातावरण में रखा जाए और कम लागत वाली भंडारण तकनीकों का प्रयोग किया जाए तो सब्जियों की ताजगी एवं गुणवत्ता को लम्बे समय तक बनाए रखा जा सकता है। छोटे एवं सीमित संसाधन वाले किसानों के लिए महत्वपूर्ण यह है कि कटाई उपरान्त प्रबन्ध के लिए महंगे या अत्यधिक आधुनिक साधनों की ही आवश्यकता नहीं है। शून्य ऊर्जा कूल चैम्बर, हवादार छायागृह, उचित पैकजिंग और सही परिवहन जैसे कम लागत वाले व्यावहारिक उपाय भी गुणवत्ता संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अतः शीतकालीन सब्जियों के सन्दर्भ में कम लागत वाली कटाई उपरान्त प्रबन्ध तकनीकों को अपनाना न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक है, बल्कि उपभोक्ताओं को ताजा, सुरक्षित और गुणवत्तायुक्त सब्जियां उपलब्ध कराने की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है।

कटाई उपरान्त हानि के मुख्य कारण

कारण	प्रभाव
गलत समय पर कटाई	ताजगी में कमी, शीघ्र मुरझाना
यांत्रिक क्षति	सड़न, फंगस संक्रमण
अधिक तापमान	तेजी से श्वसन, गुणवत्ता क्षति
नमी का असन्तुलन	झुरियाँ, फंगस वृद्धि
गलत पैकजिंग	दबाव, टूट-फूट

1. कटाई का उपयुक्त समय

सब्जियों की गुणवत्ता कटाई के समय से ही तय हो जाती है।

* सुबह शुरु होते ही या शाम को कटाई करना सर्वोत्तम होता है क्योंकि इस समय तापमान कम और नमी अधिक रहती है।
* दोपहर में कटाई करने पर सब्जियों की श्वसन दर बढ़ जाती है, जिससे वे जल्दी मुरझा जाती हैं।
* कटाई से पहले हल्की सिंचा करने से उत्तक कठोर नहीं होते और यांत्रिक क्षति कम होती है।
* बाजार योग्य परिक्वता पर ही कटाई करने से भंडारण अवधि बढ़ती है।

2. प्राथमिक प्रसंस्करण

2.1 छांटाई एवं ग्रेडिंग

कटाई के तत्काल बाद की गई छांटाई सब्जियों की गुणवत्ता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

* रोग ग्रस्त, कीट प्रभावित एवं टूटी फूटी सब्जियों को आवश्यक रूप से अलग कर देना चाहिए। * ग्रेडिंग से उत्पाद में एकरूप सौन्दर्य आता है, जिससे बाजार मूल्य में वृद्धि होती है।

2.2 सफाई एवं सुखाना

* मिट्टी एवं गन्दगी हटाने से सूक्ष्मजीव संक्रमण की संभावना कम होती है। * धोने के बाद सब्जियों को छाया में सुखाना आवश्यक है ताकि सतह पर रही नमी से फंगस न बढ़े।

3. कम लागत भंडारण तकनीकें

3.1 शून्य ऊर्जा कूल चैम्बर

यह तकनीक छोटे और सीमित संसाधन वाले किसानों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।

* इसके निर्माण में ईट, रेत एवं पानी का प्रयोग होता है और यह बिना बिजली के कार्य करता है। * वाष्पीकरणीय शीतलकरण के सिद्धांत पर आधारित यह पद्धति तापमान को 8 से 12 डिग्री सेलसियस तक कम कर सकती है। * इस तकनीक से सब्जियों की ताजगी 7 से 10 दिन तक बनाए रखी जा सकती है।

3.2 हावादार छायागृह

* बांस, लकड़ी या स्थानीय सामग्री से बनाई गई सादी संरचनाएं सब्जियों को सीधी धूप से बचाती हैं। * उचित वायु संचार से ताप तनाव एवं सड़न की समस्या कम होती है।

4. पैकजिंग एवं परिवहन प्रबन्ध

4.1 पैकजिंग सामग्री का चयन

पैकजिंग	लाभ
छिद्रयुक्त प्लास्टिक क्रेट	कम क्षति, अच्छा वायु संचार
गत्ते के डिब्बे	हल्की सब्जियों के लिए उपयुक्त
बोरी/टोकरी	केवल छोटी दूरी हेतु

4.2 परिवहन प्रबन्ध * ढीले-ढाले परिवहन से बचना चाहिए। * लम्बी दूरी के लिए ढ़के हुए या छाया वाले वाहन अधिक उपयुक्त होते हैं। * तापमान एवं नमी नियन्त्रण से गुणवत्ता बनाए रखी जा सकती है।

कटाई उपरान्त प्रबन्ध का फलो चार्ट

सुबह/शाम कटाई

* छांटाई एवं ग्रेडिंग * सफाई एवं छाया में सुखाना * शून्य ऊर्जा कूल चैम्बर/छायागृह * उचित पैकजिंग * सुरक्षित परिवहन * उच्च गुणवत्ता सब्जियां बाजार तक

निष्कर्षः शीतकालीन सब्जियों में कटाई उपरान्त हानि भारत के छोटे एवं सीमित संसाधन वाले किसानों के लिए एक गम्भीर आर्थिक और व्यावहारिक समस्या बन चुकी है। अत्यधिक परिमाण में उत्पादन होने के बावजूद, यदि कटाई के बाद सब्जियों को उचित तरीके से संभाला न जाए तो उन्हें बाजार तक गुणवत्तायुक्त अवस्था में पहुँचाना मुशिकल हो जाता है। इसी कारण से किसानों को अक्सर अपनी उमीद के अनुरूप मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता और उनकी आय में निरन्तर अस्थिरता बनी रहती है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कटाई उपरान्त हानि को पूरी तरह खत्म करना शायद संभव न हो, परन्तु वैज्ञानिक, सरल एवं कम लागत वाली तकनीकों को अपनाकर इसे बड़ी हद तक कम किया जा सकता है। उचित समय पर कटाई करना, जैसे सुबह या शाम के समय कटाई, सब्जियों की प्राथमिक छांटाई एवं ग्रेडिंग, छाया में सुखाना एवं तत्काल भंडारण जैसे उपाय शीतकालीन सब्जियों की ताजगी को बन्धक समय तक बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के रूप में, यदि गाजर, पालक या गोभी को कटाई के बाद धूप में छोड़ दिया जाए तो उनमें पानी की हानि तेजी से होती है, जिससे वे जल्दी मुरझा जाती हैं, जबकि छाया में रखी गई सब्जियां अधिक समय तक ताजा रहती हैं। शून्य ऊर्जा भंडारण संरचनाएं, जैसे शून्य ऊर्जा कूल चैम्बर, छोटे किसानों के लिए एक अत्यंत उपयुक्त एवं व्यावहारिक विकल्प हैं। बिना बिजली के काम करने वाली यह संरचनाएं तापमान एवं नमी को नियंत्रित करके सब्जियों की भंडारण अवधि को बढ़ाने में सहायक हैं। इसी प्रकार, उचित पैकजिंग सामग्री, जैसे छिद्रयुक्त प्लास्टिक क्रेट का प्रयोग, सब्जियों को यांत्रिक क्षति से बचाता है और परिवहन के दौरान होने वाली हानि को कम करता है। सही पैकजिंग एवं परिवहन से केवल गुणवत्ता ही नहीं, बल्कि उत्पाद की बाजार योग्य अवधि भी बढ़ जाती है। यह भी देखा गया है कि यदि किसान कटाई उपरान्त प्रबन्ध को केवल एक अतिरिक्त काम न मानकर, बल्कि उत्पादन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिसस्सा मानते हैं, तो उनके सब्जी उत्पादन में निरन्तर सुधार होता है। इस प्रकार, कटाई उपरान्त तकनीकों का प्रयोग किसानों को अत्यधिक निवेश के बिना ही अधिक लाभ प्रदान कर सकता है। अतः यह कहना उचित होगा कि कम लागत वाली कटाई उपरान्त तकनीकें शीतकालीन सब्जियों के लिए केवल गुणवत्ता संरक्षण का माध्यम नहीं, बल्कि टीकाऊ सब्जी उत्पादन, खाद्य सुरक्षा एवं किसान सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपकरण हैं। यदि इन तकनीकों को विस्तार से अपनाया जाए और किसानों को इस विषय में प्रशिक्षण प्रदान किया जाए तो शीतकालीन सब्जियों में होने वाली हानि को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इससे न केवल किसानों की आय में स्थायी वृद्धि संभव है, बल्कि उपभोक्ताओं को भी ताजा, सुरक्षित एवं गुणवत्तायुक्त सब्जियां निरन्तर उपलब्ध हो सकती हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

नवजात गाय के बछड़ों में संक्रमण एवं उनकी समुचित देखभाल

डॉ. किरण कुमारी, डॉ. अनुज सिंह पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, किशनगंज (बिहार)

डॉ. अर्चना पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना

गाय के नवजात बछड़े जीवन के शुरुआती दिनों में अत्यंत संवेदनशील होते हैं। जन्म के समय उनकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता पूरी तरह विकसित नहीं होती, इसलिए यदि उचित देखभाल न की जाए तो कई प्रकार के बैक्टीरिया, वायरस एवं परजीवी संक्रमण आसानी से हो सकते हैं। शुरुआती 10-15 दिन उनके भविष्य की सेहत, वृद्धि दर और दूध उत्पादन क्षमता को तय करते हैं। इसलिए जन्म से ही सही प्रबंधन और स्वच्छ वातावरण प्रदान करना बहुत आवश्यक है।

(1) निमोनिया (फेफड़ों का संक्रमण)-ठंडी हवा, नमी, भीड़ भाड़ और धूल भरे वातावरण में नवजात बछड़ा जल्दी निमोनिया से ग्रस्त हो जाते हैं। बछड़े में तेज सांस, नाक से स्राव, खांसी एवं थकावट जैसे लक्षण दिखते हैं।

(1) नाभि संक्रमण (नैवल इल)-गंदगी या अस्वच्छ स्थान पर जन्म लेने के कारण नाभि में कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। इससे नाभि सूज जाती है, मवाद बन सकता है और बछड़ा सुस्त हो जाता है।

सावधानी * नाभि को जन्म के तुरंत बाद आयोडीन/क्लोरहेक्सिडिन घोल से साफ करें। ज बिछावन सूखा रखें और नाभि को संक्रमित होने से बचाएँ।

2. नवजात बछड़ों में होने वाले प्रमुख संक्रमण

नवजातों में कई तरह के रोग जल्दी फैलते हैं, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं:

उपचार एवं रोकथाम * बछड़े को गर्म, हवादार लेकिन बंद स्थान से मुक्त वातावरण दें। * गंभीर स्थिति में तुरंत पशु चिकित्सक द्वारा एंटीबायोटिक और एंटी-इंफ्लेमेटरी दवाएँ दी जानी चाहिए।

(3) अतिसार (डायरिया / दस्त)

बछड़ों में सबसे सामान्य संक्रमणों में से एक है। यह बैक्टीरिया, वायरस या प्रोटोजोआ (जैसे-कॉकसिडिया, क्रिप्टोस्पोरिडियम) के कारण हो सकता है। लगातार दस्त से निर्जलीकरण होता है और समय पर इलाज न होने पर मृत्यु भी हो सकती है।

प्रबंधन: * इलेक्ट्रोलाइट का घोल नियमित रूप से दें।* अत्यधिक कमजोरी होने पर ग्लूकोज / सलाइन की आवश्यकता पड़ सकती है। * स्वच्छ दूध पिलाएँ और बर्तन रोजाना साफ करें।

(4) कंजक्टिवाइटिस (आँख का संक्रमण)

धूल, मक्खियों और बैक्टीरिया के कारण आँखों में लालिमा, आंसू बहना और सूजन देखी जाती है।

उपचार * आँखों को उबले ठंडे पानी या सलाइन से साफ करें। * आवश्यकता पड़ने पर आँखों में एंटीबायोटिक ड्रॉप डालें।

(5) जॉइंट इल (जोड़ों में सूजन) नाभि संक्रमण के शरीर में फैलने से जोड़ों में दर्द और सूजन आ जाती है। बछड़ा लंगड़ाने लगता है।

उपचार: * एंटीबायोटिक और दर्दनाशक दवाओं का प्रयोग * बछड़े को कठोर और गंदे फर्श से दूर रखें।

2. नवजात बछड़ों की समुचित देखभाल

संक्रमण से बचाव के लिए जन्म के क्षण से ही निम्नलिखित प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है:

(1) जन्म के तुरंत बाद देखभाल

* बछड़े का मुँह और नाक साफ करके उसे सहज सांस लेने दें।

* शरीर को सूखे साफ कपड़े से पोंछें।

* ठंडी हवा से बचाने के लिए गर्म वातावरण उपलब्ध कराएँ।

* नाभि की डोरी 5-7 सेमी छोड़कर काटें और आयोडीन से अच्छी तरह साफ करें।

(2) कोलोस्ट्रम अवश्य पिलाएं (पीला पहला दूध)

पहला दूध बछड़े के लिए जीवनरक्षक होता है। इसमें एंटीबॉडी (प्रतिरक्षात्मक तत्व) अत्यधिक मात्रा में होते हैं जो संक्रमण से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

* जन्म के पहले 2 घंटे के भीतर कोलोस्ट्रम अवश्य पिलाएं। * कुल मात्रा बछड़े के शरीर वजन के लगभग 10% के बराबर होनी चाहिए (4-5 लीटर/दिन)। * 3 दिन तक नियमित रूप से पिलाते रहें।

(3) स्वच्छ एवं सूखा बिछावन

* बिछावन पर नमी, गोबर या मूत्र न जमा होने दें। * बिछावन रोज बदलें और सर्दियों में मोटा बिछावन उपयोग करें। * मक्खियों को नियंत्रित करें ताकि संक्रमण न फैले।

(4) उचित तापमान व वेंटिलेशन

ना अत्यधिक ठंड और ना ही अत्यधिक गर्मी- दोनों से बछड़े जल्दी बीमार पड़ते हैं।

* तापमान 20-25°C उपयुक्त माना जाता है। * कमरे में साफ हवा जरूर आए, पर सीधी हवा न लगे।

(5) दूध पिलाने का प्रबंधन

* बर्तन हमेशा उबलते पानी से धोकर ही उपयोग करें। * अधिक ठंडा या बहुत गरम दूध न दें। * दिन में 2-3 बार उचित मात्रा में दूध दें। * धीरे-धीरे स्किम्ड मिल्क, मिल्क रिप्लेसर और काफ स्टार्टर शुरू करें।

दूध एवं आहार तालिका

1-3 सप्ताह : 2500ml दूध

4-7 सप्ताह: 2500 ml दूध + 200g स्टार्टर + 900 g घास

8-10 सप्ताह: 3000 ml दूध + 500g स्टार्टर + 750 g घास

10-12 सप्ताह: 2500 ml स्किम्ड दूध + 1200 g स्टार्टर + 1600 g घास

(6) काफ स्टार्टर व चारा

एक अच्छे स्टार्टर से बछड़े की वृद्धि तेज होती है और पेट की क्षमता विकसित होती है। 4-5 दिन बाद थोड़ी मात्रा और 2-3 सप्ताह बाद नियमित रूप में देना शुरू करें। इसके बाद 8-10 सप्ताह में बछड़ा दूध पर निर्भरता से बाहर आ सकता है।

काफ स्टार्टर (100 भाग मिश्रण)

मक्का/चोकर- 50 भाग
* सोयाबीन / मूंगफली की खल-25 भाग
* गेहूँ चोकर - 9 भाग
* महुआ खली- 10 भाग
* शीरा 5 भाग
* रोबिमिक्स - 10 ग्राम / क्विंटल
* नमक - 500 ग्राम / क्विंटल
* ऑरॉ फैक- 20 ग्राम / क्विंटल

दूध विकल्प (Milk Replacer) – फॉर्मुलेशन (100 किग्रा मिश्रण हेतु)

* गेहूँ का आटा-8 किग्रा
* सोयाबीन / मेथी खल- 12 किग्रा
* अलसी आटा-40 किग्रा
* स्किम्ड मिल्क पाउडर -16 किग्रा
* नारियल तेल -7 किग्रा
* अलसी तेल- 3 किग्रा
* साइट्रिक एसिड - 1.4 किग्रा
* गुड़- 8 किग्रा
* खनिज मिश्रण 3 किग्रा
* ब्यूट्रिक एसिड-0.66 किग्रा
* एंटीबायोटिक प्रीमिक्स -300 ग्राम
* विटामिन A, B2, D3 प्रीमिक्स - 15 ग्राम

(7) टीकाकरण व नियमित स्वास्थ्य जांच * बछड़ों को समय पर टीके लगवाएँ (एफएमडी, एचएस, बीक्यू आदि)। * कृमिनाशक दवा 15-20 दिन बाद ना शुरू करें। * नियमित अंतराल पर मल परीक्षण करवाएँ।

3. समग्र रोकथाम एवं प्रबंधन के मुख्य बिंदु

* जन्म स्थान, बाड़ा व बिछावन हमेशा स्वच्छ रखें। * दूध पिलाने के सभी बर्तन रोज साफ करें। * मक्खियों, मच्छरों और नमी को नियंत्रित करें। * बछड़े को तनावमुक्त वातावरण दें। * हर नए पशु को मुख्य समूह से अलग रखकर अवलोकन करें। * बीमारी के लक्षण दिखते ही शीघ्र उपचार कराएँ।

निष्कर्ष: नवजात बछड़े को स्वस्थ व मजबूत बनाने का सबसे प्रभावी तरीका है-जन्म के तुरंत बाद से ही वैज्ञानिक देखभाल अपनाना। उचित स्वच्छता, कोलोस्ट्रम का सही समय पर सेवन, संतुलित आहार और समय पर टीकाकरण से अधिकांश संक्रमणों को पूरी तरह रोका जा सकता है। अच्छी देखभाल न केवल बछड़े के भविष्य के उत्पादन और वृद्धि को बढ़ाती है बल्कि पशुपालक को आर्थिक लाभ भी सुनिश्चित करती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

माह फरवरी में होने वाली कृषि की मुख्य क्रियाएं

आलोक कुमार जिला कृषि पदाधिकारी
कालीकान्त चौधरी उप परियोजना निदेशक आत्मा
रौशन कुमार उप परियोजना निदेशक (आत्मा)
प्रमोद कुमार तिवारी प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी (आत्मा)
वैभव पाण्डेय प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी सिवान सदर
मनीष पाण्डेय प्रखण्ड तकनीकी प्रबंधक, जिला कृषि कार्यालय सिवान कृषि विभाग (बिहार)

'बदलते मौसम एवं तापमान में उतार-चढ़ाव फसल के वृद्धि एवं विकास पर होने वाले प्रतिकूल प्रभावों के मुख्य कारक है। समेकित शस्य प्रणाली द्वारा फसल को इन प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाया जा सकता है।'

चारा उत्पादन हेतु किए जाने वाले कार्य

बरसीम: बरसीम की कटाई 25-30 दिनों के अंतराल पर करें। प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें जिससे बरसीम की निरंतर वृद्धि एवं विकास होगा और गुणवत्तापूर्ण हरा चारा मिलता रहेगा। बीज उत्पादन हेतु बरसीम की 3-4 कटाई के बाद बंद कर दें।

हरे चारे वाली जई: जई की फसल में प्रथम कटाई बुआई के 55-60 दिन बाद करें। बहु कटाई वाली प्रजातियों को काटते समय सतह से 8-10 सेंमी. छोड़कर कटाई करें जिससे कल्लों का विकास अच्छा होगा। कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें। पहली कटाई के बाद प्रति हेक्टेयर 20-25 किलोग्राम नत्रजन की टॉप ड्रेसिंग कर दें।

गरमा हरे चारे की बुआई हेतु मुख्य बिन्दु: गरमा हरे चारे की बुआई हेतु मक्का, लोबिया, मकचरी एवं ज्वार मुख्य चारे की फसले हैं। निम्नलिखित चारे की फसलों की बुआई माह के दूसरे पखवाड़े से प्रारंभ की जा सकती है।

फसले	बीज़ दर (किलोग्राम\हे०)	उन्नतशील प्रभेद	हरा चारा उत्पादन छमता (टन\हे०)
मक्का	40-50	अफ्रीकन टाल, जे- 1006, पीएमसी-6, विजय, मोती एवं जवाहर	50-60
लोबिया	35-40	यूपीसी-5276, बुंदेल लोबिया -1, यूपीसी-4200,	35-40
मकचरी	35-40	इम्प्रोवड टीवोसेंटे, टीअल-1 एवं 2	30-40
ज्वार	10-12	यूपी चारी -1 MP Chari, HC 136 PC 33 एवं 2 पीसी-6,9 एवं 23	35-45

सफल फसलोत्पादन हेतु मुख्य कृषि क्रियाएं

गेहूँ: बुआई के हिसाब से गेहूँ की फसल में सिंचाई करें। यदि बुआई नवम्बर माह के दूसरे पखवाड़े में हुई है तो आवश्कता पड़ने पर चौथी सिंचाई बालियां निकलते समय करें। देर से बोए गए गेहूँ में दूसरी सिंचाई 35-40 दिन बाद एवं तीसरी सिंचाई 55-60 दिन बाद करें। बची हुई नत्रजन की मात्र को टॉप ड्रेसिंग के रूप में करें। अनावृत कडुआ रोग से ग्रसित बालियां खेत में दिखाई देने पर उन्हें खेत से निकाल कर जला दें। खेत में 15 चूहों के बिल से अधिक का प्रकोप दिखाई देने पर जिंक फॉस्फाइड या एल्युमिनियम फास्फाइड की टिकिया को भुने हुए चावल या मक्का (1:49) में मिलाकर चूहों के बिल के पास रख दें।

जौ: जौ फसल में उचित शस्य प्रबंधन द्वारा अधिक उपज प्राप्त किया जा सकता है। जौ में यदि तीन सिंचाई उपलब्ध हो तो दूसरी सिचाई बुआई के 55-60 दिन बाद गांठ बनने की अवस्था में और तीसरी सिंचाई दुग्धावस्था में बुआई के 90-100 दिन बाद करें। अनावृत कडुआ रोग से ग्रसित बालियां खेत में दिखाई देने पर उन्हें खेत से निकलकर जला दें। यदि माहू/चेपा का प्रकोप दिखाई देने पर एमीडाक्लोप्रीड 17.5 एस.एल. की 1.1.5 मिली ग्राम कीटनाशक दवा का एक लीटर पानी में मिलाकर आवश्यकता अनुसार पर्णीय छिड़काव करें।

मक्का: रबी मक्का का बिहार में एक विशेष स्थान है। रबी मक्का में निर्धारित बची हुई पोषक तत्वों की मात्रा का उचित नमी खेत में बनाकर प्रयोग करें। रबी मक्का में तीसरी सिंचाई बुआई के 75-80 दिन पर तथा चौथी सिंचाई 105-110 दिन बाद करेंद्य गरमा मक्के की बुवाई फरवरी माह के प्रथम पखवाड़े से प्रारंभ कर सकते हैं। बुआई के 10-15 दिन पूर्व खेत में अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद का 15-20 टन.हे. की दर से

प्रयोग करें। अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु गुणवत्तापूर्ण बीजों का चुनाव करना अति आवश्यक है। प्रति हेक्टेयर 20 किलोग्राम संकर प्रभेदो एवं 22-25 किलोग्राम संकुल प्रभेदों की बीजों की बुआई करना उपयुक्त है। बुआई उचित दूरी पर करें, पौध से पौध की दूरी 20 सेंमी. एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेंमी. रखें। रासायनिक उर्वरको का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करेंए यदि मिट्टी की जाँच संभव ना हो तो प्रति हेक्टेयर 120 -140 किलो ग्राम नत्रजन 60-80 किलोग्राम फॉस्फोरस व 40-50 किलो ग्राम पोटाश उपयुक्त है। नत्रजन की एक तिहाई फॉस्फोरस एवं पोटाश को पूरी मात्र अंतिम जुताइ या बुआइ से पहले करें। शेष नत्रजन की मात्रा को दो भागों में बांट लें। एक भाग प्रथम सिंचाई के बाद 25-30 दिनों पर एवं शेष मात्रा नर मंजरी बनते समय दें। विगत वर्षो में मक्के की फसल में फाल आर्मीवर्म (FAW) नामक कीट की जटिल समस्या पाई गई है। यदि खेत में इस कीट की समस्या दिखाई दे तो ग्रसित पौधे को उखाड़ कर जला दें। समेकित कीट प्रणाली से नियंत्रित करने के लिये 10 से 15 लकड़ी का 'टी' आकार का पक्षी बैठका प्रति हे. खेत पर लगाकर अथवा बीस से पचीस ट्राइकाकार्ड का प्रयोग करें या क्लोरएंट्रानिलिप्रोएल 18.5 एससी. लैम्डाण्साइहलोथ्रिन 5 ईसी कीटनाशक दवा की 1.5.2 मिलीग्राम मात्रा का एक लीटर पानी में घोल बनाकर आवश्यकता अनुसार 2-3 छिड़काव 10-12 दिन के अंतराल पर करें।

चना: अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु चने फसल में फलियां बनते समय सिंचाई करना लाभदायक होता है। ध्यान रखें सिंचाई करते समय आवश्यकता से अधिक पानी खेत में न टिकने पाए। चने की फसल में फली बेधक कीट का प्रकोप दिखाई देने पर ग्रसित पौधे को उखड़ कर जला दें। या एमामेक्टिनबेनजोयेट नामक कीटनाशी का 1.1.5 मिलीग्राम/लीटर पानी में घोल बना कर आवश्यकतानुसार 2-3 छिड़काव 10-12 दिन के अंतराल पर करें। चने की फसल में उकठा रोग कम उपज का एक व्यापक कारक है। इसके रोकथाम हेतु रोगग्रसित पौधों को उखाड़ कर जला दें। या जिंक मंग्नीज कार्बामेट 2 किलोग्राम अथवा टेब्कोनाज़ोल 50% कवकनाशी का 1.1.5 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बना कर 8-10 दिन के अंतराल पर 1.2 छिड़काव करें।

मटर : मटर में फलियां बनते समय सिंचाई आवश्यक है। सिंचाई करते समय ध्यान रखें पानी खेत में ज्यादा देर तक टिकने न पाये, मटर में बुकनी रोग (पाउडरी मिल्ड्यू) रोग दिखाई देने पर खेत से रोग ग्रसित पौधों को निकल दें। अथवा इस रोग की रोकथाम हेतु प्रति हेक्टेयर 3 किलोग्राम घुलनशील गंधक को 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर या टेब्कोनाज़ोल 50% नामक कवकनाशी का 1.1.5 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 10-12 दिन के अंतराल पर दो से तीन छिड़काव करें।

सरसों: सरसों की फसल में आवश्कतानुसार सिंचाई करें। फरवरी माह में सरसों का व्यापक कीट माहू (चेपा) का प्रकोप दिखाई देने पर ग्रसित पौधों को उखाड़कर जला दें। अथवा डाईमेथोएट 30 ईसी 1.1.5 लीटर मात्रा को 600-800 लीटर पानी में घोल बना कर प्रति हेक्टेयर की दर से पर्णीय छिड़काव करें। या इमेडाक्लोप्रिड 17.5 एस.एल. की 1.1.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में मिला कर 10-12 दिन के अंतराल पर पर्णीय छिड़काव करें।

गन्ना: गरमा गन्ने की बुवाई फरवरी के प्रथम पखवाड़े से प्रारंभ कर सकते हैं। गन्ने की बुआई देर से काटे गये धान के खेत में या तोरिया/मटर /आलू की फसल से खाली हुए खेत में करें। शरदकालीन गन्ने के बुआई के 110-120 दिन बाद नत्रजन की शेष आधी मात्रा (60-70) किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें। एक हेक्टेयर गन्ने की बुआई के लिए 60-70 कु. गन्ने का बीज उपयुक्त होता है। गन्ने के प्रमाणित बीजों का ही चुनाव करें ए गन्ने की बुआई से पूर्व बीज सोधन का कार्य आवश्य पूरा कर लें। बीजों को एग्लाल या ऐरीटान नामक पारायुक्त कवकनाशी की 1.5.2 मिलीग्राम मात्र को 1 ली. पानी में घोल बना कर उसमें गन्ने के बीजों को डुबो दें। उपचारित बीजों की बुआई 75-90 सेंमी. की दूरी पर कतारों में 10 सेंमी. की गहराई पर करें। बुआई के समय उचित नमी होना आवश्यक है जिससे गन्ने का अंकुरण तेज़ी से होता है। गरमा गन्ने की बुवाई हेतु 10-15 दिन पूर्व खेत में अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद का 20-25 टन/हे. की दर से प्रयोग करें। रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें। यदि मिट्टी की जांच संभव ना हो तो प्रति हे. 150 किलो ग्राम नत्रजन 100 किलो ग्राम फॉस्फोरस व 80 किलो ग्राम पोटाश उपयुक्त है। नत्रजन की एक तिहाई एवं फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्र अंतिम जुताई या बुआई से पहले करें। यदि पिछली फसल में ज़स्ते की कमी देखी गई हो तो 25-30 किलो ग्राम प्रति हे. जिंक सल्फेट का प्रयोग अवश्य करें। हमारे किसान भाई बहन उचित कृषि शष्य विधियों द्वारा बदलते मौसम एवं फसलों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव से अपनी फसल को बचा सकते है। साथ ही साथ अधिक से अधिक उपज प्राप्त कर अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

कम्प्लीट फीड ब्लॉक तकनीक- एक लाभकारी नवाचार

डॉ. अंजली कुमारी, डॉ. अमित कुमार
(सहायक प्राध्यापक) सह कनीय वैज्ञानिक, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर (बिहार)

डॉ. कुमारी चंद्रकला, डॉ. रंजना सिन्हा
(सहायक प्राध्यापक) सह कनीय वैज्ञानिक, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

भारत आज विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है। परन्तु आज भी यहाँ दुधारू पशुओं का पोषण मुख्यतः फसल अवशेषों पर निर्भर है। ऐसी परिस्थिति में यह अत्यंत आवश्यक है कि पशुओं को दिया जाने वाला आहार हर दृष्टि से संतुलित हो। पशुओं से अधिकतम उत्पादन और लाभ प्राप्त करने के लिए उनका स्वस्थ रहना अनिवार्य है। पशुओं का स्वास्थ्य सीधे तौर पर उनके आहार की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। इन सभी समस्याओं का समाधान कम्प्लीट फीड ब्लॉक नामक एक नवीन तकनीक द्वारा संभव है। यह तकनीक दुधारू पशुओं को संतुलित आहार उपलब्ध कराकर दुग्ध उत्पादन बढ़ाने तथा डेयरी किसानों की आय में वृद्धि करने में सहायक है। यह न केवल आर्थिक रूप से लाभकारी है, बल्कि आसान परिवहन, कम भंडारण लागत, बहु-पोषक तत्वों की कमी को दूर करना, आसान उपयोग और स्थानीय रूप से उपलब्ध आहार संसाधनों के प्रयोग से भोजन लागत में कमी जैसे इसके अन्य लाभ भी हैं। यह लगभग एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है, इसलिए चारे की कमी वाले समय में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

कम्प्लीट फीड ब्लॉक: कम्प्लीट फीड ब्लॉक वह संपीडित आहार है जिसमें चारा, सान्द्र आहार एवं अन्य पोषक तत्वों को उपयुक्त अनुपात में मिलाया जाता है, जिससे पशु की संपूर्ण पोषण आवश्यकता पूरी हो सके। यह एक ऐसा संपूर्ण मिश्रित आहार है जो चौकोर, गोल या आयताकार ब्लॉक के रूप में तैयार किया जाता है। इस तकनीक में चारे (50-60) प्रतिशत, सांद्रित चारे, गुड़ और योजक पदार्थों के संतुलित, एक समान मिश्रण को 3,000-4,000 पी.एस.आयी. हाइड्रोलिक दबाव का उपयोग करके सघन, परिवहन योग्य ब्लॉकों (1.5-2 किलोग्राम) में संपीड़ित किया जाता है। यह तकनीक स्थानीय तथा गैर-पारंपरिक चारा स्रोतों जैसे पत्तियाँ एवं कृषि-औद्योगिक उप-उत्पादों का बेहतर उपयोग संभव बनाती है, जिससे महंगे सान्द्र आहार पर निर्भरता कम होती है। प्रत्येक फीड ब्लॉक एक गाय या भैंस की 24 घंटे की पूर्ण आहार आवश्यकता को पूरा करता है। यह तकनीक चारे की कमी को दूर करती है, चारे की बर्बादी को कम करती है, रूमेन के स्वास्थ्य में सुधार करती है, दुग्ध उत्पादन को 14 प्रतिशत तक बढ़ाती है और आसान, दीर्घकालिक भंडारण को सक्षम बनाती है।

कम्प्लीट फीड ब्लॉक के घटक

कम्प्लीट फीड ब्लॉक के घटकों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1. **मुख्य घटक** * चारा (जैसे गेहूँ का भूसा, धान का पुआल, ज्वार डंठल, मक्का ठूंठ, गन्ने की पत्तियाँ) * सान्द्र आहार

2. **द्वितीयक घटक** * खनिज मिश्रण * विटामिन * फीड एडिटिव्स एवं सूक्ष्म पोषक तत्व

पहाड़ी क्षेत्रों में फसल अवशेषों के स्थान पर जंगली घास और वृक्षों की पत्तियों का भी उपयोग किया जा सकता है।

घटकों का अनुपात: फीड ब्लॉक में चारे और सान्द्र आहार का अनुपात पशु की दुग्ध उत्पादन क्षमता पर निर्भर करता है।

सामग्री	अनुपात
अनाज	25 भाग
गेहूं या धान की भूसी	37 भाग
तेल खली	35 भाग
खनिज मिश्रण	2 भाग
नमक	1 भाग

सान्द्र मिश्रण के घटक

सान्द्र मिश्रण में निम्नलिखित घटक शामिल होते हैं।

* प्रोटीन स्रोत- तेल खली
* ऊर्जा स्रोत- अनाज, शीरा एवं उप-उत्पाद
* उच्च दुग्ध उत्पादक पशुओं के लिए बायपास प्रोटीन एवं बायपास फैट को शामिल किया जाता है
* सूक्ष्म पोषक तत्व- विटामिन, खनिज, प्रोबायोटिक्स, एंजाइम, एंटीऑक्सीडेंट, हर्बल एडिटिव्स आदि

ये सभी घटक पशु की उत्पादन क्षमता, प्रजनन क्षमता और रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने में सहायक होते हैं तथा रूमेन में मीथेन उत्सर्जन को भी कम करते हैं।

फीड ब्लॉक बनाने की प्रक्रिया

1. सान्द्र आहार सामग्री को पीसना
2. फीड एडिटिव्स मिलाना
3. निर्धारित अनुपात में भूसा एवं शीरा मिलाना
4. मिश्रण को समान रूप से मिलाना
5. हाइड्रोलिक प्रेस मशीन द्वारा 4000 पी.एस.आयी. दबाव पर ब्लॉक बनाना

इस प्रक्रिया से चारा और सान्द्र आहार आपस में मजबूती से जुड़ जाते हैं, जिससे पशु चयनात्मक भोजन नहीं कर पाता और आहार की पाचन क्षमता बढ़ जाती है।

पशुओं को खिलाने की प्रक्रिया: प्रारंभ में पशुओं को फीड ब्लॉक छोटे टुकड़ों में और कम मात्रा में देना चाहिए। धीरे-धीरे मात्रा बढ़ानी चाहिए। लगभग 15 दिन बाद, जब पशु इसके अभ्यस्त हो जाएँ, तब पूरा ब्लॉक दिया जा सकता है।

कम्प्लीट फीड ब्लॉक तकनीक के लाभ

* इसके सेवन से पशुओं की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ण पूर्ति होती है।
* स्थानीय चारा संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है।
* वर्ष भर गुणवत्तापूर्ण आहार उपलब्ध रहता है।
* फीड ब्लॉक भंडारण एवं परिवहन में सस्ता होता है।
* इसके निर्माण से श्रम एवं समय की बचत होती है।
* फीड ब्लॉक बहु-पोषक तत्वों की कमी दूर करता है।
* फीड ब्लॉक तकनीक से चारे की बर्बादी में कमी आती है।
* यह तकनीक प्राकृतिक आपदाओं में उपयोगी होती है।
* इस तकनीक से मीथेन उत्सर्जन में कमी आती है।
* इसके सेवन से पशुओं में दुग्ध उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता में सुधार आती है।

किसानों को आर्थिक लाभ: अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि कम्प्लीट फीड ब्लॉक खिलाने से पशुओं द्वारा पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग होता है। इससे दुग्ध उत्पादन बढ़ता है, खनिजों का बेहतर अवशोषण होता है और पशुओं का स्वास्थ्य सुधरता है। खेत स्तर पर किए गए अध्ययनों से यह पाया गया है कि किसानों को पारंपरिक आहार की तुलना में अतिरिक्त आय प्राप्त हुई। साथ ही दवा, श्रम एवं चारा बर्बादी पर होने वाला खर्च भी कम हुआ है।

निष्कर्ष: कम्प्लीट फीड ब्लॉक तकनीक किसानों के लिए एक वरदान है। यह न केवल संतुलित आहार प्रदान करती है, बल्कि चारे की कमी के समय राहत भी देती है। यह तकनीक श्रम, समय और लागत की बचत करती है तथा पशुओं के स्वास्थ्य, उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता में सुधार लाती है। इसकी आर्थिक उपयोगिता को देखते हुए किसान, दुग्ध सहकारी समितियाँ एवं फीड उद्योग इसे बड़े पैमाने पर अपना सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

प्राकृतिक खेती: अवधारण और परिदृश्य

आशीष राय, सुनील कुमार मंडल
संजय कुमार
क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र झंझारपुर, मधुबनी,
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय,
पूसा, समस्तीपुर, (बिहार)

प्राकृतिक खेती एक ऐसी कृषि पद्धति है जो रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के उपयोग से बचाती है और इसके बजाय मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के लिए प्राकृतिक प्रक्रियाओं का उपयोग करती है। यह देशी (स्थानीय नस्ल) के गोबर और मूत्र जैसे क्षेत्रीय संसाधनों पर आधारित है, जिससे खेती की लागत बहुत कम हो जाती है तथा यह पर्यावरण के लिए अनुकूल भी है। प्राकृतिक खेती में जुताई नहीं की जाती है और मल्चिंग (फसल अवशेषों से मिट्टी को ढ़कना) तथा सहजीवी संबंधों को बढ़ावा दिया जाता है जो मिट्टी के स्वास्थ्य और जैव-विविधता में सुधार करते हैं। भारत में सरकार प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दे रही है और आंध्रप्रदेश, गुजरात और कर्नाटक जैसे राज्यों के अंतर्गत इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल की गई है।

प्राकृतिक खेती की अवधारणा

रासायनिक-मुक्त: यह एक रसायन मुक्त कृषि पद्धति है जिसमें संश्लेषित (सिथेंटिक) रासायनिक उर्वरकों, खरपतवारनाशकों और कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता है।

स्थानीय संसाधनों पर आधारित: यह पूरी तरह से स्थानीय और पारंपरिक संसाधनों पर निर्भर करती है। खासकर देशी गाय के गोबर और मूत्र से बने 'बीजामृत' और 'जीवामृत' जैसे उपादानों (इनपुट) पर आधारित है।

मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार: यह जुताई की आवश्यकता को समाप्त करती है और आवरण फसलों, मल्चिंग तथा जैव-विविधता के माध्यम् से मिट्टी की संरचना, उर्वरता एवं सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों को बढ़ाती है।

लागत प्रभावी: बाहरी और महंगे आदानों पर निर्भरता नहीं होने के कारण किसानों की उत्पादन लागत बहुत कम हो जाती है।

पर्यावरण के अनुकूल: यह मिट्टी के कटाव को कम करती है, जल का संरक्षण करती है और जैव विविधता को बढ़ाती है।

इस प्रकार प्राकृतिक खेती एक रसायन-मुक्त कृषि प्रणाली है, जो भारतीय परंपरा में निहित है। पारिस्थितिकी संसाधन पुनर्चक्रण और कृषि संसाधन अनुकूलन की आधुनिक समझ से समृद्ध है। इसे कृषि पारिस्थितिकी आधारित विविध कृषि प्रणाली माना जाता है, जो फसलों, पेड़ों और पशुधन को कार्यात्मक जैव-विविधता के साथ एकीकृत करती है। यह मुख्य रूप से कृषि-आधारित बायोमास पुनर्चक्रण पर आधारित है, जिसमें कार्बनिक मल्चिंग, कृषि आधारित गोबर-मूत्र मिश्रण के उपयोग, मृदा वातन और सभी कृत्रिम रासायनिक आदानों के वहिस्कार पर विशेष जोर दिया जाता है। प्राकृतिक खेती से खरीदे गये आदानों पर निर्भरता कम होने की उम्मीद है। इसे एक लागत-प्रभावी कृषि पद्धति माना जाता है जिसमें रोजगार और ग्रामीण विकास में वृद्धि की संभावना है।

प्राकृतिक खेती का परिदृश्य

हमारे देश के कई राज्य पहले से ही प्राकृतिक खेती को अपना रहे हैं और सफल मॉडल विकसित कर चूके हैं। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश गुजरात, उत्तर प्रदेश और केरल अग्रणी राज्यों में शामिल है। वर्तमान में प्राकृतिक कृषि प्रणालियों की स्वीकृति और अपनाने की प्रक्रिया प्रारंभिक चरण में है और धीरे-धीरे देश के अन्य राज्यों में कृषक समुदाय के बीच स्वीकार्यता प्राप्त कर रही हैं। वर्तमान में देश के अंतर्गत लगभग 10 लाख हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र प्राकृतिक खेती के अंतर्गत आता है।

राष्ट्रीय मिशन: भारत सरकार ने प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती मिशन (National Mission on Natural Farming) जैसी योजनाएँ चला रही है।

लाभ: यह किसानों की आय की बढ़ाती है, मिट्टी की उर्वरता को बहाल करती है और पर्यावरण को स्वस्थ रखती है।

चुनौतिया: किसानों में सीमित जागरूकता, जैविक आदानों (इनपुट) तक पहुँच की कमी और सहायक नीतियों की आवश्यकता कुछ चुनौतियाँ है। शुरूआत में उपज कम होने की संभावना, विपणन की कई चुनौतिां और सही मार्गदर्शन की कमी भी प्रमुख चुनौतियों में से एक है।

भविष्य: किसानों की अपनी स्थिरता और जन समुदाय की स्वास्थ्य लाभों के कारण प्राकृतिक खेती का महत्व बढ़ रहा है।

राज्यों की भूमिका: आंध्रप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और गुजरात जैसे कई राज्यों में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

किसानों का रूझान: देश में कई किसान धीरे-धीरे रासायनिक खेती को छोड़कर प्राकृतिक खेती अपना रहे हैं।

प्राकृतिक खेती का दायरा

विश्व भर में प्राकृतिक खेती के कई कारगर मॉडल मौजूद है, परन्तु भारत में शून्य वजट प्राकृतिक खेती सबसे लोकप्रिय मॉडल है। प्राकृतिक खेती मिट्टी की उर्वरता और पर्यावरणीय स्वास्थ्य में सुधार के साथ-साथ ग्रीनहाउस गैंस उत्सर्जन को कम करने और किसानों की आय में वृद्धि का वादा करती है। व्यापक रूप से प्राकृतिक खेती को आने वाली पीढ़ियों के लिए पृथ्वी को बचाने की एक प्रमुख रणनीति माना जा सकता है। इसमें विभिन्न कृषि पद्धतियों का प्रबंधन करने और इस प्रकार मिट्टी और पौधों में वायुमंडलीय कार्बन को संचित करके उसे पौधों के लिए उपलब्ध कराने की क्षमता है।

निष्कर्ष

* प्राकृतिक खेती एक स्थायी एवं लागत प्रभावी कृषि पद्धति है जो किसानों और पर्यावरण दोनों के लिए लाभकारी है।
* यह मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करती है, जैव विविधता को बढ़ावा देती है तथा बिना संश्लेषित (सिंथेटिक) रसायनों के सुरक्षित एवं पौष्टिक खाद्य उत्पादन सुनिश्चित करती है।
* सरकार के सहयोग एवं किसानों में बढ़ती जागरूकता के साथ भारत में प्राकृतिक खेती का भविष्य उज्ज्वल है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

तेल निष्काशन मशीन अपनाने में बाधाएं और सहयोगी तंत्र की भूमिका

डॉ. दिनेश रजक (सह प्राध्यापक)
डॉ. विशाल कुमार (सह प्राध्यापक)
डॉ. देवेन्द्र कुमार (प्राध्यापक)
प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियन्त्रिकी विभाग,
कृषि अभियंत्रण एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
डॉ.रा.प्र.कें.कृ.वि. पूसा, समस्तीपुर, (बिहार)

परिचय: तेल निष्कर्षण मशीनरी का व्यापक स्तर पर अपनाना कई चुनौतियों से घिरा है। मशीनों की उच्च प्रारंभिक लागत, तकनीकी ज्ञान की कमी और सीमित रखरखाव सेवाएँ सामान्य बाधाएँ हैं। इसके अलावा, दूरस्थ क्षेत्रों के किसान बिजली की उपलब्धता या परिवहन की कठिनाइयों से भी जूझ सकते हैं। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए सरकार, एनजीओ और निजी क्षेत्र की विभिन्न सहायता प्रणालियाँ विकसित की गई हैं, जिनमें शामिल हैं:

1. सब्सिडी या अनुदान: तकनीक तक पहुँच की कुंजी: तेल निष्कर्षण मशीनरी की उच्च लागत छोटे किसानों के लिए सबसे बड़ी बाधा है। अधिकांश आधुनिक तेल प्रेस–द्ग1द्दठ्ठ छोटे पैमाने के मॉडल–सैकड़ों या हज़ारों डॉलर तक के हो सकते हैं। सीमित पूँजी वाले किसानों के लिए, जिनके पास सुलभ ऋण विकल्प नहीं होते, यह कीमत अक्सर उनकी पहुँच से बाहर होती है। इस चुनौती से निपटने के लिए सरकारों, एनजीओ और अंतरराष्ट्रीय विकास संगठनों द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी और अनुदान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये वित्तीय प्रोत्साहन किसानों के बोझ को कम करते हैं और उन्हें उस मशीनरी में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं जो उनकी आय क्षमता को बदल सकती है।

2. प्रदान की जाने वाली सहायता के प्रकार

i. पूँजीगत लागत सब्सिडी (Capital Cost Subsidies): सरकार या दान संस्था मशीन की लागत का एक हिस्सा वहन करती है। उदाहरण के लिए, 1,000 की मशीन पर 50% सब्सिडी मिलने पर किसान को केवल 500 का भुगतान करना होगा।

ii. मैचिंग ग्रांट (Matching Grants): किसान एक निश्चित हिस्सा (जैसे 40-60%) योगदान देते हैं और शेष राशि अनुदान से मिलती है। यह मॉडल स्वामित्व और ज़िम्मेदारी की भावना को बढ़ाता है।

iii. सहकारी समितियों के लिए स्टार्टअप अनुदान: सहकारी समितियों और महिला समूहों को सामूहिक रूप से मशीनरी खरीदने, प्रसंस्करण इकाइयाँ स्थापित करने और पैकेजिंग व विपणन में निवेश करने हेतु अनुदान दिए जाते हैं।

iv. पायलट और प्रदर्शन परियोजनाएँ: कुछ क्षेत्रों में सरकारें पायलट समुदायों को मुफ्त में तेल निष्कर्षण मशीनें उपलब्ध कराती हैं ताकि लाभ प्रदर्शित किए जा सकें। सफल पायलट प्रोजेक्ट्स अक्सर व्यापक अपनाने और वित्तपोषण की ओर ले जाते हैं।

1. ग्रामीण विकास योजनाओं के साथ एकीकरण: मशीनरी सब्सिडी अक्सर व्यापक कृषि विकास पहलों–जैसे ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम या महिला सशक्तिकरण योजनाओं–के साथ जोड़ी जाती हैं, जिससे वे अधिक सुलभ हो जाती हैं।

2. मशीन संचालन और रखरखाव पर प्रशिक्षण कार्यक्रम: तेल निष्कर्षण मशीनरी को सफलतापूर्वक अपनाना केवल खरीद तक ही सीमित नहीं है। किसानों को यह भी आना चाहिए कि मशीनों को कुशलता से कैसे चलाना है, उनका सही तरीके से रखरखाव कैसे करना है और सामान्य समस्याओं का समाधान कैसे करना है। पर्याप्त प्रशिक्षण के बिना, सब्सिडी या अनुदान से प्राप्त उपकरण भी खराब हो सकते हैं या अनुपयोगी रह सकते हैं। यही कारण है कि मशीन संचालन और रखरखाव पर प्रशिक्षण कार्यक्रम किसी भी मशीनीकरण पहल के आवश्यक घटक हैं।

प्रशिक्षण का महत्व

i. दक्षता में सुधार: प्रशिक्षित किसान मशीनों को अधिकतम क्षमता पर चला सकते हैं, जिससे अधिक तेल उत्पादन और न्यूनतम बर्बादी सुनिश्चित होती है।

ii. उपकरण की आयु में वृद्धि: नियमित रखरखाव मशीनों की आयु बढ़ाता है और किसानों के निवेश की रक्षा करता है।

iii. सुरक्षा की गारंटी: मशीनों में गतिशील हिस्से और कभी-कभी उच्च तापमान शामिल होते हैं। प्रशिक्षण से दुर्घटना का जोखिम घटता है।

iv. ज्ञान के माध्यम से सशक्तिकरण: तकनीकी प्रशिक्षण आत्मविश्वास बढ़ाता है, विशेषकर महिलाओं और युवाओं में, जिससे वे मशीनरी का स्वामित्व ले सकते हैं और स्थानीय सेवा प्रदाता या मरम्मत विशेषज्ञ बन सकते हैं।

प्रशिक्षण में सामान्यत: क्या शामिल होता है?

मूल संचालन: मशीन को सेटअप करने, चालू करने और बंद करने की चरण-दर-चरण जानकारी।

रखरखाव प्रथाएँ: सफाई की दिनचर्या, चिकनाई (lubrication), पुर्जों को बदलने का समय और घिसाव के प्रारंभिक संकेतों की पहचान।

सामान्य समस्याओं का समाधान: कम तेल उत्पादन, मशीन का अधिक गर्म होना या मोटर संबंधी समस्याओं के कारणों की पहचान।

भंडारण और स्पेयर पार्ट्स: ऑफ-सीज़न के दौरान उचित भंडारण के तरीके और स्पेयर पार्ट्स कहाँ/कैसे प्राप्त करें।

रिकॉर्ड कीपिंग: किसानों को वित्तीय और संचालन संबंधी रिकॉर्ड रखने का भी प्रशिक्षण दिया जा सकता है ताकि वे अपने तेल प्रसंस्करण व्यवसाय को बेहतर ढंग से प्रबंधित कर सकें।

प्रशिक्षण प्रदान करने की संस्था

i. सरकारी कृषि विभाग: अक्सर ग्रामीण विकास अभियानों के हिस्से के रूप में विस्तार कार्यक्रम या कार्यशालाएँ आयोजित करते हैं।

ii. एनजीओ और अंतरराष्ट्रीय एजेंसियाँ: FAO, GIZ, और USAID जैसी संस्थाएँ स्थानीय समूहों के साथ मिलकर व्यावहारिक तकनीकी प्रशिक्षण देती हैं।

iii. मशीनरी आपूर्तिकर्ता: प्रतिष्ठित निर्माता और डीलर खरीद पैकेज के हिस्से के रूप में मुफ्त या कम लागत पर प्रशिक्षण देते हैं।

iv. किसान सहकारी समितियाँ और सहकर्मी शिक्षण: कई क्षेत्रों में प्रशिक्षित किसान दूसरों को प्रशिक्षित करते हैं, जिससे एक स्थानीय ज्ञान नेटवर्क बनता है।

3. मोबाइल प्रसंस्करण इकाइयाँ: जो गाँव-गाँव जाकर कई समुदायों को सेवा प्रदान कारन

दूरस्थ या संसाधन-विहीन ग्रामीण क्षेत्रों में, तेल निष्कर्षण मशीनरी का स्वामित्व या पहुँच छोटे किसानों के लिए चुनौतीपूर्ण बनी रहती है। मोबाइल प्रसंस्करण इकाइयाँ–वाहन या ट्रेलर जिनमें तेल निष्कर्षण मशीनें लगी होती हैं–एक व्यावहारिक और नवोन्मेषी समाधान प्रस्तुत करती हैं। ये इकाइयाँ गाँव-गाँव घूमकर उन किसानों को मौके पर ही तेल प्रसंस्करण सेवाएँ देती हैं, जो स्थायी मशीनरी नहीं खरीद सकते या उपयोग नहीं कर सकते।

मोबाइल इकाइयों के लाभ

i. कम-लागत वाली पहुँच: किसान प्रति किलोग्राम प्रसंस्कृत बीज के लिए केवल मामूली शुल्क चुकाते हैं। और छोटे उत्पादन वाले किसानों के लिए किफायती।

ii. अवसंरचना की कमी को पाटना: उन गाँवों के लिए आदर्श जहाँ बिजली या सड़कें नहीं हैं और स्थायी मशीनरी लगाना संभव नहीं है। एक ही क्षेत्र में कई समुदायों को सेवा दे सकती हैं।

iii. कटाई के बाद नुकसान में कमी: मौके पर समय पर प्रसंस्करण से खराबी रोकती है और बीज की गुणवत्ता बनाए रखती है।

iv. हाशिए पर समूहों का सशक्तिकरण: महिला समूह या युवा सहकारी समितियाँ अक्सर इकाइयों का संचालन करती हैं, जिससे रोजगार पैदा होता है।

1. विस्तार और लचीलापन: सेवा प्रदाता मौसमी माँग या फसल चक्र के आधार पर मार्ग और कवरेज समायोजित कर सकते हैं। इकाइयों में समय-समय पर नए फीचर जोड़कर विस्तार किया जा सकता है।

निष्कर्ष: तेल निष्काशन तकनीक अधिक सुलभ और किफायती होती जा रही है और सहयोगी तंत्र मजबूत हो रहे हैं, अधिक किसान तेल निष्कर्षण मशीनरी अपनाने की ओर अग्रसर होंगे। यह न केवल व्यक्तिगत आजीविका को सुधारेगा बल्कि व्यापक ग्रामीण आर्थिक विकास और खाद्य सुरक्षा में भी योगदान देगा। अंततः, तेल निष्कर्षण तकनीक में निवेश करना खेती समुदायों को सशक्त बनाने और सतत कृषि विकास सुनिश्चित करने का व्यावहारिक और प्रभावी तरीका है। खेती का भविष्य केवल फसल उगाने में नहीं, बल्कि उन्हें प्रसंस्कृत कर मूल्य संवर्धन में निहित है–और इस परिवर्तन में तेल निष्कर्षण मशीनरी एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तराखण्ड

क्रैब एप्पल (जंगली सेब): पारिस्थितिक दृष्टि से एक बहुउपयोगी एवं महत्वपूर्ण वृक्ष

शालिनी नेगी, शुभम कंडवाल, अजय हेमदान
(शोधार्थी) वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली उत्तराखंड औद्यानिकी, एवम वानिकी विश्वविद्यालय भरसार, पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखंड)

क्रैब एप्पल (जंगली सेब) एक महत्त्वपूर्ण जंगली फल प्रजाति है, जो भारत के उत्तरी राज्यों, विशेषकर हिमालयी क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। इसके फल पकने पर गहरे लाल रंग के हो जाते हैं। स्वाद में ये फल थोड़े खट्टे होते हैं, किंतु अत्यंत स्वादिष्ट होते हैं। क्रैब एप्पल के फलों का मूल्य संवर्धन करके, पौधों की नर्सरी तैयार करके तथा रूटस्टॉक ब्रीडिंग के माध्यम से उन्नत एवं नई रूटस्टॉक किस्मों का विकास कर भविष्य में किसानों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।

परिचय: क्रैब एप्पल, जिसे सामान्यतः जंगली सेब के नाम से भी जाना जाता है, रोसैसी कुल का एक छोटा पर्णपाती वृक्ष है। यह सेब के वंश से संबंधित है और अपने छोटे तीखे तथा आकर्षक फलों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। क्रैब एप्पल उत्तरी समशीतोष्ण क्षेत्रों विशेष रूप से यूरोप, एशिया और उत्तरी अमेरिका का मूल निवासी है। ऐसा माना जाता है कि क्रैब एप्पल आधुनिक सेब के प्रमुख जंगली पूर्वजों में से एक है। प्रारंभिक काल में इसके छोटे एवं खट्टे फलों का उपयोग मुख्यतः औषधीय और व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए किया जाता था। इसके फल सामान्यतः 1 से 2 इंच (2.5 से 5.0 सेमी) व्यास के होते हैं, जो आकार में छोटे, कठोर एवं खट्टे होते हैं। फलों का रंग किस्म के अनुसार पीला, लाल, हरा अथवा गहरा बैंगनी हो सकता है। इसकी पत्तियाँ अंडाकार, नुकीली तथा दाँतेदार किनारों वाली होती हैं। वसंत और ग्रीष्म ऋतु में हरे रंग की, जबकि शरद ऋतु में पीली, नारंगी या लाल हो जाती हैं। वृक्ष की ऊँचाई प्रायः 10 से 25 फीट तक होती है, शाखाएँ चारों ओर फैली हुई होती हैं तथा वृक्ष का छत्र (कैनोपी) प्रायः गोलाकार होता है, जो इसे सजावटी दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बनाता है। अपनी अनुकूलन क्षमता, सौंदर्यात्मक गुणों एवं बहुउपयोगिता के कारण क्रैब एप्पल समशीतोष्ण बागवानी एवं पारिस्थितिक तंत्र में एक विशिष्ट स्थान रखता है।

पोषण मूल्य : क्रैब एप्पल के फल पोषण की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी माने जाते हैं। इनमें विटामिन- सी की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है, जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त, क्रैब एप्पल के फलों में डायटरी फाइबर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो पाचन क्रिया को सुधारने तथा आंतों को स्वस्थ्य बनाए रखने में सहायक होता है। क्रैब एप्पल प्राकृतिक कार्बोहाइड्रेट, अल्प मात्रा में प्रोटीन एवं वसा का स्रोत है। साथ ही, इसमें पोटैशियम, कैल्शियम और लौह (आयरन) जैसे खनिज तत्व पाए जाते हैं, जो हृदय स्वास्थ्य, हड्डियों की मजबूती एवं रक्त निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जलवायु एवं मृदा : क्रैब एप्पल के लिए समशीतोष्ण जलवायु अनुकूल पाई जाती है, जहाँ सर्दियाँ ठंडी तथा ग्रीष्म ऋतु हल्की होती है। यह वृक्ष अत्यधिक शीत सहनशील होता है और तीव्र पाले को भी सहन कर सकता है, जिससे यह उच्च पर्वतीय एवं शीत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त माना जाता है। क्रैब एप्पल विभिन्न प्रकार की मृदाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, किंतु जैविक पदार्थों से भरपूर, अच्छी जल निकास

वाली दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। यह हल्की अम्लीय मिट्टी में अच्छी वृद्धि करता है।

प्रवर्धन: क्रैब एप्पल का प्रवर्धन बीज एवं कायिक दोनों विधियों द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा प्रवर्धन विशेष रूप से रूटस्टॉक उत्पादन के लिए प्रचलित है, हालांकि बीजों में सुप्तावस्था पाई जाती है। बेहतर अंकुरण के लिए बीजों को 4 से 5 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 60 से 90 दिनों तक शीत स्तरीकरण (कोल्ड स्ट्रेटिफिकेशन) की आवश्यकता होती है। वास्तविक गुणों को बनाए रखने एवं समान वृद्धि हेतु कायिक विधियाँ (टी-बडिंग, चिप बडिंग, टंग ग्राफ्टिंग तथा क्लेफ्ट ग्राफ्टिंग) अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं।

औद्यानिकी के क्षेत्र में उपयोग एवं महत्व

1.रूटस्टॉक एवं परागणकता: क्रैब एप्पल का उपयोग सेब हेतु रूटस्टॉक के रूप में, बागानों में परागणकर्ता वृक्ष के रूप में व्यापक रूप से किया जाता है, जिससे फल-स्थापन एवं उपज में वृद्धि होती है।

2. वन्यजीव संरक्षण: फल पक्षियों जैसे (रॉबिन, सीडर वैक्सविंग) आदि के लिए महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत हैं, जबकि फूल मधुमक्खियों एवं तितलियों को आकर्षित कर जैव विविधता को बढ़ावा देते हैं।

3.खाद्य एवं प्रसंस्करण उपयोग: क्रैब एप्पल के फलों में उच्च पेक्टिन की मात्रा पाई जाती है, जिसके कारण इनका उपयोग जैम, जेली प्रिजर्व, साइडर, निर्माण, सॉस एवं पाई (मीठे सेब के साथ मिश्रण) निर्माण में किया जाता है।

4. औषधीय उपयोग: परंपरागत चिकित्सा में इसके पत्ते और छाल का उपयोग सूजन एवं पाचन संबंधी समस्याओं के उपचार किया जाता रहा हैं।

5. मृदा संरक्षण एवं लकड़ी उपयोग: मजबूत जड़ प्रणाली के कारण यह ढलानों पर भूमि कटाव रोकने में सहायक है। इसकी लकड़ी कठोर एवं सघन होने के कारण नक्काशी, हस्तशिल्प एवं छोटे फर्नीचर निर्माण में उपयोगी है।

6.सजावटी उपयोग: सुंदर फूल, रंगीन फल एवं शरद ऋतु में आकर्षक इसका पर्णरंग इसे उद्यानों, पार्कों एवं सड़कों के किनारे रोपण के लिए लोकप्रिय बनाता हैं। इसका लघु रूप एवं छोटे फलों के कारण क्रैब एप्पल का उपयोग बोन्साई निर्माण हेतु भी किया जाता है, जिससे बोन्साई और अधिक आकर्षक बनती हैं।

निष्कर्ष: क्रैब एप्पल एक बहुउपयोगी, सहनशील एवं पारिस्थितिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति है। सेब सुधार, बागानों में परागण, पर्यावरण संरक्षण एवं सजावटी बागवानी में इसकी भूमिका इसे समशीतोष्ण फल उत्पादन प्रणालियों का एक अनिवार्य घटक बनाती है। यह उद्यानिकी दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं बहुउपयोगी वृक्ष है। इसके रूटस्टॉक उपयोग, जैम-जेली निर्माण तथा बोन्साई उत्पादन के माध्यम से पर्वतीय क्षेत्रों के किसान अपनी आर्थिक स्थिति को और अधिक सुदृढ़ बना सकते हैं।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हिमाचल प्रदेश

जैविक खेती बनाम प्राकृतिक खेती–क्या बेहतर?

अखिलेश शर्मा, दीपा शर्मा, अनुप्रिया, अक्षय राणा, वसुन्धरा नेगी उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर (हिमाचल प्रदेश)

धर्मेन्द्र कुमार केवीके चम्बा (हिमाचल प्रदेश)

रेनू कपूर क्षेत्रीय उद्यानिकी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केंद्र, जसूर, कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में खेती की टिकाऊ प्रणालियाँ लगातार चर्चा का विषय रही हैं। रसायनों पर निर्भर आधुनिक खेती से जुड़े स्वास्थ्य और पर्यावरणीय जोखिमों ने किसानों व वैज्ञानिकों को वैकल्पिक प्रणालियों की ओर देखने के लिए प्रेरित किया है। इसी कड़ी में दो प्रमुख पद्धतियाँ–जैविक खेती और प्राकृतिक खेती–तेजी से लोकप्रिय हो रही हैं। दोनों ही कृषि को रसायन-मुक्त बनाने का लक्ष्य रखती हैं, परंतु इनके कार्य-तंत्र, लागत, उपज और दीर्घकालिक प्रभावों में कई महत्वपूर्ण अंतर हैं। तो क्या बेहतर है? आइए समझते हैं।

जैविक खेती: वैज्ञानिक मानकों पर आधारित कृषि प्रणाली

जैविक खेती केवल ÷रासायनिक उर्वरकों का बहिष्कार÷ नहीं है, बल्कि यह एक सिस्टम-आधारित पद्धति है जिसमें मिट्टी, पौधों, पशुओं और पर्यावरण के बीच संतुलन पर जोर दिया जाता है।

जैविक खेती के मुख्य सिद्धांत

1.मिट्टी का स्वास्थ्य सर्वोपरि:
मिट्टी को जीवित माध्यम मानकर उसमें जैविक पदार्थ (Organic matter) को बढ़ाया जाता है।

2.रासायनिक अवयवों का परहेज:
उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवारनाशी आदि का उपयोग निषिद्ध।

3.जैव-विविधता का संरक्षण:
फसल चक्र, मिश्रित फसलें, हरित खाद, सहफसलीकरण आदि अनिवार्य।

4.प्रमाणन (Organic Certification):
यह इसे वैश्विक स्तर पर विश्वसनीय बनाता है।

उपयोग में लाए जाने वाले घटक

* गोबर खाद, वर्मी-कम्पोस्ट
* नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, ट्राइकोडर्मा
* बायोपेस्टिसाइड्स
* पालतू पशुओं का गोबर-गोमूत्र आधारित पोषक तत्व

फायदे

* उपज अपेक्षाकृत स्थिर रहती है।
* उत्पाद को प्रीमियम मूल्य मिलता है।
* मिट्टी का जैविक जीवन धीरे-धीरे पुनर्जीवित होता है।

सीमाएँ:

* उत्पादन लागत अधिक।
* प्रमाणन प्रक्रिया जटिल।
* प्रारंभिक वर्षों में उपज कम हो सकती है।

प्राकृतिक खेती: कम लागत में अधिक टिकाऊ कृषि प्राकृतिक खेती विशेषकर शून्य बजट प्राकृतिक खेती (ZBNF) के रूप में पूरे देश में चर्चा का विषय है।

इसका दर्शन "प्रकृति माता स्वयं खेती की प्रक्रिया चलाती है, किसान केवल सहयोगी है" पर आधारित है।

प्राकृतिक खेती के चार स्तंभ (दैनिक भास्कर हस्त)

1.जीवामृत: देसी गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन से बना सूक्ष्मजीव घोल–मिट्टी को जीवन देता है।

2.बीजामृत: बीज उपचार के लिए जैविक घोल, जो रोगों से बचाता है।

3.मल्चिंग: मिट्टी की नमी और सूक्ष्मजीवों को सुरक्षित रखने हेतु जैविक आवरण।

4.वापसा सिद्धांत: मिट्टी में उचित नमी-संतुलन (air + water) बनाना।

मुख्य तत्व:

* जीवामृत, घन-जीवामृत, बीजामृत, अग्निस्त्र जैसे स्थानीय इनपुट।
* भूमि को निरंतर ढँककर रखने की मल्चिंग तकनीक।
* रासायनिक दवाओं/उर्वरकों का शून्य उपयोग।
* कम पानी, कम निवेश और अधिक जैव-विविधता।

फायदे:

* लागत लगभग शून्य–किसान को खरीदना कुछ नहीं पड़ता।
* मिट्टी की संरचना तेजी से सुधरती है।
* छोटे और सीमांत किसानों के लिए उपयुक्त।

सीमाएँ:

* प्रारंभिक वर्षों में उपज अक्सर कम रहती है।
* बड़े वाणिज्यिक पैमाने पर अपनाने में चुनौतियाँ।
* वैज्ञानिक प्रमाण और दीर्घकालिक डेटा अभी सीमित।

दोनों प्रणालियों में मूलभूत अंतर

पहलू	जैविक खेती	प्राकृतिक खेती
बाहरी इनपुट	खरीदने पड़ते हैं (कम्पोस्ट, जैविक उत्पाद)	लगभग सब इनपुट खेत/गाँव से
उपज	स्थिर और अपेक्षाकृत अधिक	शुरुआत में कम, बाद में स्थिर
लागत	मध्यम से अधिक	बहुत कम
मानक/प्रमाणन	उपलब्ध और स्पष्ट	कोई औपचारिक वैश्विक प्रमाणन नहीं
अनुकूलता	वाणिज्यिक और बड़े पैमाने पर	छोटे किसानों के लिए उत्तम
पर्यावरण प्रभाव	सकारात्मक	अत्यधिक सकारात्मक

4. क्या बेहतर है? एक संतुलित दृष्टिकोण

दोनों प्रणालियाँ रसायन-मुक्त खेती की दिशा में महत्वपूर्ण हैं। दोनों पद्धतियाँ श्रेष्ठ हैं, लेकिन अलग-अलग परिस्थितियों के लिए।

जैविक खेती बेहतर है जब

* किसान बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक खेती करे।
* निर्यात या ब्रांडेड जैविक बाजार में प्रवेश चाहता हो।
* दीर्घकालिक स्थिर आय लक्ष्य हो।

प्राकृतिक खेती बेहतर है जब:

* किसान सीमांत भूमि वाला हो और निवेश की क्षमता सीमित हो।
* मिट्टी अत्यधिक खराब हो चुकी हो और पुनर्जीवन आवश्यक हो।
* कसान रसायनों से पूरी तरह मुक्त उत्पादन चाहता हो।

वास्तविक समाधान: दोनों प्रणालियों का समन्वय

आज कई कृषि वैज्ञानिक सुझाव दे रहे हैं कि फसल चक्र, कंपोस्ट और जैव-विविधता (जैविक खेती से) जीवामृत, मल्चिंग और स्थानीय इनपुट (प्राकृतिक खेती से) को मिलाकर एक हाइब्रिड टिकाऊ मॉडल अपनाया जाए। यह मॉडल लागत भी कम करेगा, उपज भी स्थिर रखेगा और पर्यावरण को भी सुरक्षित करेगा। वास्तव में, एक किसान के लिए सर्वोत्तम पद्धति वही है जो उसके संसाधनों, भूमि-स्थिति, जल उपलब्धता, बाजार और ज्ञान के अनुरूप हो। आज कई वैज्ञानिक मिश्रित मॉडल की सलाह दे रहे हैं–जहाँ जैविक सिद्धांतों के साथ प्राकृतिक खेती के घटक अपनाए जाएँ।

निष्कर्ष: टिकाऊ भविष्य की ओर

भारत की कृषि वर्तमान समय में जिन चुनौतियों से गुजर रही है–मिट्टी की उर्वरता में कमी, बढ़ती उत्पादन लागत, जलवायु परिवर्तन और किसानों की आय का ठहराव–उनका समाधान रसायन-आधारित खेती में नहीं, बल्कि अधिक टिकाऊ विकल्पों में छिपा है। इसी कारण जैविक और प्राकृतिक खेती दोनों ही कृषि के भविष्य के दो मजबूत स्तंभ के रूप में उभर रहे हैं। जैविक खेती किसानों को प्रमाणित, उच्च-गुणवत्ता वाले उत्पाद देकर बेहतर बाजार मूल्य दिलाने की क्षमता रखती है, जबकि प्राकृतिक खेती न्यूनतम लागत में मिट्टी के स्वास्थ्य को पुनर्जीवित कर छोटे और सीमांत किसानों के लिए जीवनरेखा साबित होती है। दोनों पद्धतियाँ मिट्टी में जैविक कार्बन बढ़ाती हैं, जल प्रदूषण को रोकती हैं और पर्यावरण को सुरक्षित रखती हैं, इसलिए इनमें प्रतिस्पर्धा नहीं बल्कि पूरकता देखी जानी चाहिए।

भारतीय कृषि का सर्वोत्तम मॉडल वही होगा, जिसमें जैविक खेती की वैज्ञानिकता और प्राकृतिक खेती की सरलता–दोनों का संतुलित समायोजन हो। यह मिश्रित मॉडल न केवल उत्पादन लागत घटाएगा बल्कि खेती को जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक लचीला, टिकाऊ और लाभकारी बनाएगा। अतः भविष्य की कृषि एक ऐसी पद्धति की माँग करती है जो किसान-अनुकूल, पर्यावरण-अनुकूल और पीढ़ी-अनुकूल हो–और यह भूमिका जैविक तथा प्राकृतिक खेती, मिलकर, उत्कृष्ट रूप से निभा सकती हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हिमाचल प्रदेश

रसोई बागवानी : सीमित स्थान में सब्जियां उगाना

सृष्टि, शिवली धीमान, अंजलि कुमारी
पीएच.डी. शोधार्थी, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश-173230

सारांश

शहरीकरण, घटती भूमि, बढ़ती खाद्य कीमतों और खाद्य सुरक्षा संबंधी चिंताओं के कारण रसोई बागवानी, या घरेलू बागवानी, का महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है। इसमें आधुनिक तकनीकों जैसे कंटेनर बागवानी, ऊर्ध्वाधर खेती और बिना मिट्टी की खेती का उपयोग करके पिछवाड़े, छतों, बालकनियों और छतों जैसी छोटी जगहों में सब्जियां और जड़ी-बूटियां उगाना शामिल है। इन नवाचारों से सीमित क्षेत्रों में भी बागवानी संभव हो पाती है।

रसोई बागवानी ताजी, रसायन-मुक्त उपज की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित करती है, साथ ही पोषण को बढ़ावा देती है, घरेलू खर्चों में बचत करती है, स्थिरता को प्रोत्साहित करती है और मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाती है। कुल मिलाकर, यह भारत में शहरी और अर्ध-शहरी खाद्य प्रणालियों को मजबूत करने के लिए एक कम लागत वाला, जलवायु-अनुकूल समाधान प्रदान करती है।

परिचय

किचन गार्डनिंग, छतों, बालकनियों और आंगनों जैसी सीमित शहरी जगहों में सब्जियां, फल और जड़ी-बूटियां उगाने का एक टिकाऊ तरीका है। यह सुरक्षित और ताज़ा उपज सुनिश्चित करके कुपोषण, कीटनाशक अवशेष और बढ़ती कीमतों जैसी समस्याओं का समाधान करता है। एक छोटे पैमाने की, गहन प्रणाली होने के नाते, यह व्यावसायिक उपज के बजाय फसल विविधता, मौसमी योजना और संसाधनों के कुशल उपयोग पर ज़ोर देती है। कॉम्पैक्ट किस्मों, हल्के माध्यमों, बिना मिट्टी वाली विधियों और बढ़ती पोषण जागरूकता के साथ, किचन गार्डनिंग शहरी कृषि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई है, जो लचीली खाद्य प्रणालियों और टिकाऊ जीवन शैली को बढ़ावा देती है।

रसोई में बागवानी का महत्व

रसोई में बागवानी करने से ताज़ी, पोषक तत्वों से भरपूर सब्जियां मिलती हैं जो आहार में विविधता लाती हैं और पोषक तत्वों की कमी को दूर करती हैं, साथ ही कीटनाशकों के अत्यधिक अवशेषों से बचकर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती हैं। इससे सब्जियों पर होने वाला घरेलू खर्च कम होता है, जैविक कचरे के पुनर्चक्रण और खाद्य पदार्थों की ढुलाई में लगने वाले समय को कम करके स्थिरता को बढ़ावा मिलता है और शहरी वातावरण में सूक्ष्म जलवायु में सुधार होता है। इन लाभों के अलावा, बागवानी तनाव कम करने, मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने, पारिवारिक संबंधों को मजबूत करने और पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाने में भी सहायक होती है।

सीमित स्थान में बागवानी हेतु फसल चयन

शहरी क्षेत्रों में सीमित स्थान में सफल रसोई बागवानी के लिए फसल चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

उपयुक्त सब्ज़ी फसलें

पत्तेदार सब्ज़ियां: पालक, मेथी, लेट्यूस, अमरंथस, धनिया

फलदार सब्ज़ियां: टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च, बैंगन

लताएँ और बेलें: लौकी, करेला, खीरा (ऊर्ध्वाधर सहारे का उपयोग करके)

जड़ वाली सब्ज़ियां: मूली, गाजर, चुकंदर (गहरे गमलों में)

दलहन: फ्रेंच बीन, लोबिया, मटर

जड़ी-बूटियां: पुदीना, तुलसी, करी पत्ता, अजमोद

कम समय में तैयार होने वाली, अधिक उपज देने वाली और बार-बार काटी जा सकने वाली फसलों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

स्थान-कुशल उत्पादन तकनीकें

1. **कंटेनर बागवानी:** सीमित स्थानों के लिए कंटेनर बागवानी सबसे आम तरीका है, जिसमें गमलों, ग्रो बैग और पुनर्चक्रित सामग्री का उपयोग किया जाता है। सफलता उचित जल निकासी, उपयुक्त कंटेनर आकार और स्वस्थ विकास के लिए हल्के पोषक तत्वों से भरपूर माध्यम पर निर्भर करती है।

2. **ऊर्ध्वाधर बागवानी:** ऊर्ध्वाधर बागवानी ट्रेलिस, दीवार पर लगे प्लांटर्स या एक के ऊपर एक रखे गमलों का उपयोग करके पौधों को ऊपर की ओर उगाकर सीमित स्थान का अधिकतम उपयोग करती है। यह विशेष रूप से पत्तेदार सब्जियों और कद्दूवर्गीय पौधों के लिए प्रभावी है, जिससे यह छोटे शहरी घरों के लिए एक व्यावहारिक समाधान बन जाता है।

3. **छत और टेरेस बागवानी:** छत बागवानी उचित संरचना, जल निकासी और हल्के माध्यम के साथ अनुपयोगी छत की जगह को उत्पादक हरित क्षेत्रों में बदल देती है। यह ताजी उपज प्रदान करने के साथ-साथ ऊष्मीय इन्सुलेशन, ऊर्जा बचत और टिकाऊ शहरी जीवन को बढ़ावा देती है।

4. **मृदा रहित और हाइड्रोपोनिक प्रणालियाँ:** हाइड्रोपोनिक्स और मृदा रहित प्रणालियाँ तेजी से विकास, संसाधनों का कुशल उपयोग और कम कीट समस्याएँ प्रदान करती हैं। हालाँकि, इनमें अधिक निवेश और तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है, इसलिए सफलता के लिए उचित मार्गदर्शन आवश्यक है।

5. **विकास माध्यम और पोषक तत्व प्रबंधन:** छोटे स्थानों में स्वस्थ पौधों के लिए संतुलित विकास माध्यम आवश्यक है। इष्टतम विकास के लिए यह हल्का, छिद्रयुक्त और पोषक तत्वों से भरपूर होना चाहिए, जिसमें मिट्टी, खाद, कोकोपीट और रेत या परलाइट का मिश्रण हो।

पोषक तत्व एवं जल प्रबंधन: संतुलित पोषक तत्व एवं जल प्रबंधन रसोई बागवानी की सफलता सुनिश्चित करता है। जैविक खाद और कुशल सिंचाई विधियाँ पौधों को स्वस्थ, मिट्टी को उपजाऊ और उत्पादकता को बनाए रखती हैं।

कीट एवं रोग प्रबंधन: रसोई बागानों में खेतों की तुलना में कीटों का प्रकोप कम होता है, लेकिन एकीकृत प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। यांत्रिक निष्कासन, नीम का उपयोग, लाभकारी कीट, फसल चक्र और स्वच्छता जैसी विधियाँ कीटों को कम करती हैं, जबकि रसायनों से परहेज सुरक्षित और पर्यावरण के अनुकूल खाद्य उत्पादन सुनिश्चित करता है।

रसोई बागवानी में चुनौतियाँ: रसोई बागवानी लाभकारी होने के बावजूद, सीमित जानकारी, जल संकट, कीटों, संरचनात्मक समस्याओं और समय की कमी जैसी चुनौतियों का सामना करती है। जागरूकता और उचित तकनीकी मार्गदर्शन से इन चुनौतियों पर काबू पाया जा सकता है।

शहरी स्थिरता में रसोई बागवानी की भूमिका: रसोई बागवानी हरित आवरण बढ़ाकर, उत्सर्जन कम करके, अपशिष्ट पुनर्चक्रण करके और खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देकर सतत शहरी विकास को बढ़ावा देती है। यह पारिस्थितिक संतुलन और संसाधन दक्षता को बढ़ाती है तथा हरित, जलवायु-अनुकूल शहरों के वैश्विक लक्ष्यों के अनुरूप है।

निष्कर्ष

किचन गार्डनिंग सीमित स्थान में सब्जियां उगाने का एक व्यावहारिक, कम लागत वाला और टिकाऊ तरीका है। स्थान-कुशल तकनीकों, उचित फसल चयन, संतुलित पोषण और पर्यावरण के अनुकूल संरक्षण विधियों का उपयोग करके, परिवार पूरे वर्ष ताजी और सुरक्षित उपज प्राप्त कर सकते हैं। पोषण के अलावा, यह पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देता है, पैसे बचाता है और जीवन की गुणवत्ता में सुधार करता है। शहरीकरण, जलवायु परिवर्तन और खाद्य चुनौतियों के संदर्भ में, किचन गार्डनिंग घरेलू खाद्य और पोषण सुरक्षा को मजबूत करने का एक प्रभावी तरीका है, खासकर जब इसे जागरूकता, तकनीकी सहायता और नीतिगत उपायों के माध्यम से बढ़ावा दिया जाता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
नई दिल्ली

प्राकृतिक खेती के अग्रदूत: श्याम बिहारी गुप्ता जी की सफलता की कहानी

आलोक कुमार सिंह राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली- 110012

दिग्विजय सिंह डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, बिहार- 848125

पृष्ठभूमि और प्रारंभिक अनुभव: उत्तर प्रदेश गौ सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं प्रगतिशील प्राकृतिक किसान श्री श्याम बिहारी गुप्ता जी का जन्म 8 जनवरी 1964 को झांसी जनपद (मोंठ तहसील) के ग्राम अमरौख में हुआ। उन्होंने इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा (राजकीय पॉलिटेक्निक, झांसी) प्राप्त किया। पशुपालन और कृषि के प्रति गहरे लगाव के कारण उन्होंने 'किसान समृद्धि विद्यापीठ' की स्थापना की। वर्ष 1994 से 2020 तक उन्होंने देश के लगभग 80% राज्यों का भ्रमण कर प्राकृतिक खेती, गौपालन एवं ग्रामीण जैव-आधारित कृषि मॉडल पर कार्य कर रहे किसानों और संस्थाओं का प्रत्यक्ष अध्ययन किया। इन अनुभवों को उन्होंने योजनाबद्ध रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानांतरित करने हेतु प्रशिक्षण एवं जागरूकता कार्यक्रम चलाए। वर्तमान में उनके पास 20 देसी गौवंश हैं एवं 2.33 एकड़ कृषि भूमि है, जिस पर वह वर्षाजल संचयन, सूक्ष्म सिंचाई (ड्रिप एवं स्प्रिंकलर प्रणाली), गौ-संवर्धन एवं मिश्रित बागवानी जैसी तकनीकों का समन्वित प्रयोग कर 'कृषक आय दोगुनी' मॉडल को व्यवहार में ला रहे हैं। उनके नेतृत्व में आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों में ग्रामीण महिलाएं, युवा एवं लघु किसान प्राकृतिक खेती, ड्रिप सिंचाई, बायोगैस संयंत्र, एवं कृषि-आधारित कुटीर उद्योगों की तकनीकी विधियाँ सीखकर आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं।

गौ-आधारित प्राकृतिक खेती मॉडल: श्याम बिहारी गुप्ता जी का कृषि फॉर्म गौ-आधारित प्राकृतिक खेती का एक उत्कृष्ट और क्रियाशील मॉडल प्रस्तुत करता है। इस प्रणाली में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के स्थान पर देसी गायों से प्राप्त जैविक इनपुट–जैसे गोबर, गौमूत्र, और पंचगव्य का उपयोग किया जाता है, जो मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में संतुलित सुधार लाते हैं। उन्होंने एक सार्वजनिक मंच पर कहा कि "यदि प्रत्येक किसान एक गाय को गोद ले ले, तो उत्तर प्रदेश में निराश्रित गोवंश की समस्या समाप्त की जा सकती है।" गौ-आधारित कृषि विधियाँ मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा तथा लाभकारी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को बढ़ाकर मृदा उर्वरता को पुनर्जीवित करती हैं। इस प्रणाली का एक बहुआयामी सामाजिक-आर्थिक लाभ यह भी है कि इससे ग्रामीण स्तर पर दुग्ध उत्पादन, जैविक खाद निर्माण तथा पंचगव्य-आधारित उत्पादों (जैसे कीटनाशक, उर्वरक, साबुन, दंतमंजन आदि) से संबंधित लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है। इसके परिणाम स्वरूप कृषक और ग्वाला समुदायों के लिए टिकाऊ, स्थानीय व स्वरोजगार-आधारित आय स्रोत विकसित होते हैं। श्याम बिहारी गुप्ता के अनुसार, गोबर और गौमूत्र से निर्मित जैविक खाद न केवल फसल उत्पादन बढ़ाती है, बल्कि मिट्टी की उर्वरता और जैविक संरचना को भी सुदृढ़ करती है। बांदा में आयोजित एक बैठक में उन्होंने किसानों से आह्वान किया कि प्रत्येक किसान कम से कम एक देसी गाय अवश्य पाले, ताकि जैविक इनपुट स्थानीय स्तर पर उपलब्ध हो सकें। उनके मॉडल में गोरक्षा को आत्मनिर्भर इकाई बनाना, बायोगैस संयंत्र स्थापित करना और गौचर भूमि का हरित विकास शामिल है। यह प्रणाली गांवों में रसायनमुक्त, पर्यावरण-अनुकूल और टिकाऊ खेती को एक वैज्ञानिक दिशा प्रदान करती है।

प्रशिक्षण एवं विस्तार कार्य: श्याम बिहारी गुप्ता न केवल स्वयं नवाचारी कृषि मॉडल सीखने में अग्रणी हैं, बल्कि उनके विस्तार व प्रशिक्षण कार्य भी उल्लेखनीय हैं। 'किसान समृद्धि विद्यापीठ' के माध्यम से वे वर्षाजल संचयन, ड्रिप सिंचाई, गौ-आधारित प्राकृतिक खेती, बायोगैस उत्पादन, बागवानी तथा कृषि-कुटीर उद्योगों पर केंद्रित प्रशिक्षण शिविरों का संचालन करते हैं। विगत वर्षों में उन्होंने उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में गौशालाओं को प्रशिक्षण केंद्रों में परिवर्तित किया है। उदाहरणस्वरूप, वाराणसी जिले में उन्होंने यह घोषणा की कि स्थानीय गौशालाओं में किसानों को प्राकृतिक खेती, जैविक खाद निर्माण और बायोगैस तकनीक की विधिवत शिक्षा दी जाएगी, साथ ही गौपालकों को आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाएगी। जिले की 20 से अधिक गौशालाओं को प्रशिक्षण एवं आत्मनिर्भरता के मॉडल के रूप में विकसित कर, उन्होंने वहां स्वयं सहायता समूहों को रोजगारोन्मुख अवसर उपलब्ध कराए हैं।

मिट्टी जैविकी एवं पर्यावरणीय प्रभाव: गौ-आधारित जैविक खेती मिट्टी की जैविकी में बहुपरतीय सकारात्मक परिवर्तन लाती है। गोबर एवं गौमूत्र से तैयार की गई जैविक खाद मिट्टी में कार्बनिक तत्वों की मात्रा बढ़ाती है, जिससे इसके भौतिक गुणों–जैसे जल-धारण क्षमता, वायुसंचार और संरचनात्मक स्थिरता–में सुधार होता है। साथ ही, मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों (जैसे नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले बैक्टीरिया, माइकोराइज़ल फफूंद आदि) की संख्या और सक्रियता बढ़ जाती है, जो पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं। एग्रोस्टार जैसे कृषि तकनीकी संगठनों के अनुसार, गोबर खाद मिट्टी की जैविक संरचना को सुदृढ़ कर पौधों को पोषक तत्वों का स्थायी स्रोत प्रदान करती है। इसके परिणामस्वरूप रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता में उल्लेखनीय कमी आती है और मिट्टी का पोषण संतुलन लंबे समय तक बना रहता है। राजस्थान सहित विभिन्न राज्यों में यह भी रेखांकित किया गया है कि योजनाबद्ध रूप से गौशालाओं की स्थापना एवं पंचगव्य उत्पादों के उपयोग से किसानों को स्थानीय स्तर पर जैविक इनपुट उपलब्ध हो सकते हैं, जिससे कृषि लागत में कमी और आय में वृद्धि संभव है।

सामाजिक योगदान: श्याम बिहारी गुप्ता की उपलब्धि केवल कृषि तक सीमित नहीं है, उनके कार्यों का व्यापक सामाजिक प्रभाव भी है। रसायनमुक्त उत्पादन से स्वस्थ भोजन तक पहुँचाने का उनका प्रयास पूरे समाज के लिए लाभकारी सिद्ध हो रहा है। उन्होंने बताया कि प्राकृतिक खेती से किसानों को स्वस्थ फल-सब्जियाँ उपलब्ध कराने में मदद मिलेगी जिससे किसानों के साथ-साथ उपभोक्ता भी स्वच्छ आहार प्राप्त कर सकेंगे। उनके अभियान एक किसान-एक गाय से ग्रामीणों में गौ-प्रेम, आत्मनिर्भरता और सामुदायिक सहयोग की भावना जागृत हुई है। उनकी पहल से स्वयं सहायता समूहों, ग्रामीण महिलाओं और युवा फसल-बागवानी व जैविक खाद उत्पादन के नए अवसर पा रहे हैं। ग्वाल समुदाय को आत्मविश्वास मिला है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिली है। राज्य सरकार ने भी गौ-पालन और स्वदेशी कृषि के प्रति उनके समर्पण को देखते हुए उन्हें सम्मानित किया है।

गौ-आधारित प्राकृतिक खेती-एकड़भर लागत: लाभ विश्लेषण: गौ-आधारित प्राकृतिक खेती में केमिकल उर्वरक/कीटनाशक का उपयोग नहीं होता, इसलिए इन पर खर्च लगभग शून्य होता है। इसमें बीज के रूप में किसान अपनी ही फसलों के बीज पुनः उपयोग करते हैं।

जीवामृत/गोबर खाद: अमर उजाला की रिपोर्ट के अनुसार, एक एकड़ में जीवामृत बनाने के लिए लगभग 10 किलो गोबर, 5 लीटर गोमूत्र, 1 किलो गुड़, 1 किलो बेसन और 200 लीटर पानी चाहिए। ये सामग्रियाँ समीपवर्ती गौशाला या अपने किसान परिवार से मिल जाती हैं, अतः इनका खर्च नगण्य है।

श्रम लागत: निराई-गुड़ाई एवं जैविक संरक्षण के लिए श्रम की आवश्यकता थोड़ी बढ़ सकती है, लेकिन रासायनिक छिड़काव के चक्र की बचत से कुल श्रम व्यय पारंपरिक खेती के मुकाबले लगभग समान या थोड़ा कम रहता है।

सिंचाई: वर्षा-जल संचयन एवं सूक्ष्म सिंचाई (ड्रिप/स्प्रिंकलर) अपनाने से पानी की बचत होती है। कुल मिलाकर, गौ-आधारित प्राकृतिक खेती से प्रति एकड़ परंपरागत खेती की तुलना में 10-12 हजार तक की लागत बचत होती है।

औसत उपज (बिना रसायन): बुन्देलखंड जैसे क्षेत्रों में गौ-आधारित प्राकृतिक प्रणाली से विविध फसलें उगाई जाती हैं- गेहूं, मक्का, मूंगफली, उड़द, तिल, सरसों, चना, मटर, मसूर, विभिन्न दलहनी/तिलहन और बेलदार सब्ज़ियाँ। अनुभवजन्य आँकड़ों के आधार पर लगभग अनुमानित उपजें इस प्रकार हो सकती हैं: गेहूं 15-20 क्विं./एकड़, सरसों/तिल 5-8 क्विं., मूंग/उड़द 4-6 क्विं., और लौकी/परवल जैसी बेलदार सब्ज़ियाँ कुल मिलाकर 100-150 क्विं. प्रति एकड़ की पैदावार दे सकती हैं। इन उपजों की गुणवत्ता उच्च होने से किसानों को बेहतर बाजार मूल्य मिलता है। उपज रसायनिक खेती के करीब या उसका कुछ बेहतर हो सकती है, क्योंकि मिट्टी की उर्वरता जैविक प्रबंधन से बढ़ती रहती है।

लाभ और पारंपरिक खेती से तुलना: गौ आधारित प्राकृतिक खेती में कुल लागत कम और कुल आय अधिक होती है। परंपरागत रासायनिक खेती में उर्वरक, कीटनाशक तथा बीज पर भारी खर्च होता है, जबकि प्राकृतिक खेती में ये खर्च बच जाते हैं। दूसरी ओर, जैविक उपजों की गुणवत्ता बेहतर होने से किसानों को बाजार में प्रीमियम मूल्य मिलता है। साथ ही गौवस्तु से मिलने वाले उत्पादों (गोमूत्र, गोबर खाद, पैंचगव्य उत्पाद, बायोगैस) से अतिरिक्त आमदनी भी हो जाती है। इन सबके कारण किसानों का शुद्ध लाभ प्राकृतिक खेती में पारंपरिक खेती की तुलना में कई गुना बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए, यदि एक किसान की पारंपरिक खेती में प्रति एकड़ खर्च और आमदनी क्रमशः रु.30,000 और रु.60,000 है (शुद्ध लाभ रु.30,000), तो गौ आधारित प्राकृतिक खेती में उसी भूमि से खर्च रु.20,000, आमदनी रु. 75,000 (शुद्ध लाभ रु.55,000) तक हो सकता है।

एकड़ पर वार्षिक अनुमान: श्याम बिहारी गुप्ता के अपने 2.33 एकड़ फार्म (जिस पर उन्होंने गौ-आधारित प्राकृतिक खेती अपनाई है) के लिए सालाना कुल आय-मुनाफे का अनुमान इस प्रकार है। प्राकृतिक खेती में सभी फसलों का संयुक्त सकल उत्पादन तथा जैविक उत्पादों से आने वाली आय मिलाकर लगभग 2-2.5 लाख रुपये हो सकती है, जबकि खर्च मात्र 40-50 हजार रुपये आएंगे। इस तरह इस पर शुद्ध लाभ लगभग रु.1.5-2.0 लाख वार्षिक होता है। इसके मुकाबले पारंपरिक खेती में इसी जमीन पर सिर्फ फसल बेचकर करीब रु. 1.4-1.6 लाख की आमदनी और रु. 0.6-0.7 लाख व्यय होने पर शुद्ध लाभ रु. 0.8-0.9 लाख होता।

20 21 22 23 मार्च 2026

अंबेडकर ग्राउंड, रतलाम मध्यप्रदेश | Ambedkar Ground, Ratlam, Madhya Pradesh

MADHYA BHARAT
Agri Expo
AND SOLAR,
MILLETS FESTIVAL

LARGEST AND MOST SUCCESSFUL INTERNATIONAL AGRICULTURE EXHIBITION OF MADHYA PRADESH

INTERNATIONAL EXHIBITION & CONFERENCE ON ORGANIC AGRICULTURE AND NATURAL PRODUCTS, HORTICULTURE, DAIRY, FOOD PROCESSING, SOLAR AND MILLETS PRODUCTS.

ORGANISERS
Balaji Event & Exhibition

CO-ORGANISERS
KRIPALU BALAJI REALINFRA PVT. LTD

SUPPORTED BY

MEDIA PARTNERS
KRASHI JAGRAN
Kisaan Helpline

MADHYA BHARAT
Agri Expo
AND SOLAR,
MILLETS FESTIVAL

कृपया संपर्क करें

+91 7771020371/7771020354 | Email : madhyabharatagriexpo@gmail.com

Madhyabharat Agriexpo | madhyabharatagriexpo | Madhyabharat Agriexpo

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

फरवरी -2026

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना, ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर (मोबा. 9425101132, 0751-4070802)